भारत सरकार शिक्षा मंत्रालय की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : १९७३

Maharaja Ajeet Singh Aum Unka Yug

मूल्य : १५.००

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
ए-२६/२, विद्यालय मार्ग,
तिलक नगर, जयपुर-४

मुद्रक :
ओरियन्टल प्रिन्टर्स,
वाऊ ठाकुर का रास्ता, जयपुर-१

प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए 'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग' की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत १९६९ में पांच हिन्दी भाषी प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गयी।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी हिन्दी में विश्वविद्यालय स्तर के उत्कृष्ट ग्रन्थ-निर्माण में राजस्थान के प्रतिष्ठित विद्वानों तथा अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर रही है और मानविकी तथा विज्ञान के प्रायः सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट पाठ्य-ग्रन्थों का निर्माण करवा रही है। अकादमी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अन्त तक दो सौ से अधिक ग्रन्थ प्रकाशित कर सकेगी, ऐसी हम आशा करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवायी गई है। हमें आशा है कि यह अपने विषय में उत्कृष्ट योगदान करेगी। इस पुस्तक की समीक्षा के लिए अकादमी डॉ गोपीनाथ शर्मा, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के प्रति आभारी है।

(चन्दनमल वैद)
अध्यक्ष

(गौरीशंकर सत्येन्द्र)
निदेशक

प्राक्कथन

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में राजपूतों का एक अनूठा ही स्थान रहा है। एक ओर तो कर्नल टॉड ने अपनी वीर गाथाओं द्वारा राजपूतों का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उसके आधार पर वीरता और बलिदान में उनके समान भारत में और कोई जाति थी ही नहीं दूसरी ओर ग्यारहवी और बारहवीं शताब्दी मे जिस सुगमता और तीव्रता से तुर्क आक्रमणकारियों ने भारत में सफलता प्राप्त की, वह हमें आश्चर्यचकित कर देती है। यह विरोधाभास आज तक पहेली बना हुआ है। फिर दिल्ली में तुर्कों का राज्य स्थापित हो जाने के बाद लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों तक तुर्क अफ़ग़ान एवं मुग़ल शासक राजस्थान पर अधिकार जमाने का प्रयास करते रहे, परन्तु उन्हें निरन्तर असफलता मिलती रही। वही राजपूत जो ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी में भारत में तुर्कों का प्रवेश रोकने में पूर्णतया असफल रहे, अगले साढ़े तीन सौ वर्षों तक दिल्ली सल्तनत और अफ़ग़ान एवं मुग़ल साम्राज्य के विस्तार को रोकने में सफल सिद्ध हुए, यह पहेली की दूसरी कड़ी है। तत्पश्चात् सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मुग़ल शासकों ने इस विरोधी शक्ति को किस प्रकार अपनी सहायक शक्ति बना ली और इसके बल पर कैसे एक अपूर्व विशाल साम्राज्य की स्थापना की, यह उस पहेली की तीसरी कड़ी है। राजपूतों के इतिहास की इन उलझी गुत्थियों के कारण हमारा मध्यकालीन इतिहास अभी तक पूर्ण प्रकाश में नहीं आ सका है।

राजपूतों के इतिहास पर प्रकाश डालने का जो प्रयास महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा और पंडित विश्वेश्वर नाथ रेउ ने किया, वह प्रशंसनीय है; परन्तु उनके ग्रन्थ इतिहास की आधुनिक मान्यताओं के अनुकूल नहीं हैं। राज्याश्रय में लिखे गए इन इतिहासों से भी वही ध्वनि निकलती है जो मुग़ल काल के राजकीय इतिहासों से निकलती है। हमारी स्वतन्त्रता के पश्चात् राजपूत राज्यों के विलयन के बाद उनके पुस्तकालयों, संग्रहालयों एवं राजकीय पुरालेखागार में संग्रहीत प्राचीन ग्रन्थों, सनदों, पत्रों तथा अन्य सरकारी काग़ज़ों को शोध कार्य के लिए उपलब्ध कराने की जो चेष्टा की गई है, उससे प्रेरित होकर इस दिशा में कुछ इतिहास प्रेमियों ने प्रयास आरम्भ किया है। विभिन्न राजपूत राज्यों के इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थ अब धीरे-धीरे प्रकाशित होने लगे हैं। परन्तु अभी बहुत कुछ अछूता पड़ा है।

प्रयाग विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में सन् १९५० ई० में इस क्षेत्र में कार्य आरम्भ करने की एक योजना बनी। जिसके अन्तर्गत विभिन्न राजपूत राज्यों के मध्यकालीन इतिहास को सुविधाजनक खण्डों में विभाजित कर उनका

अध्ययन करने, और तत्पश्चात् उन सब के आधार पर राजपूतों के मध्यकालीन इतिहास पर प्रकाश डालने की चेष्टा आरम्भ हुई। मिर्जा राजा जयसिंह पर एक शोध-प्रबन्ध सन् १९५३ ई० में ही पूरा हो चुका था। परन्तु अर्थाभाव के कारण योजना की प्रगति धीमी रही। शोध-छात्रों के व्यक्तिगत प्रयास के फलस्वरूप जोधपुर राज्य के मुगलकालीन इतिहास को पूरा करने का प्रयास अंशतः सफल हो रहा है। महाराजा जसवन्तसिंह पर एक शोध-प्रबन्ध चार वर्ष पूर्व पूरा हो चुका है। यह शोध-प्रबन्ध उसी कार्य को आगे बढ़ाने का अकिंचन प्रयास है।

जोधपुर राज्य के इतिहास में महाराजा अजीतसिंह का राज्यकाल विशेष महत्त्व रखता है। इनके जीवन का उत्थान एवं पतन एक रुचिकर विषय है। जसवन्तसिंह के निःसन्तान मरने के उपरान्त जोधपुर में जो समस्या उठ खड़ी हुई, और औरंगजेब ने उसे सुलझाने के जो प्रयत्न किये, उसका आलोचनात्मक अध्ययन आवश्यक था। राठौड़ सरदारों तथा राजपूत शासकों के पारस्परिक सम्बन्धों की समस्या तथा अजीतसिंह का अपने बाल्यकाल के संरक्षक दुर्गादास के साथ किया गया व्यवहार सूक्ष्म अध्ययन की मांग करता था। अजीतसिंह तथा सवाई जयसिंह के पारस्परिक सम्बन्धों में जो उतार-चढ़ाव हुए तथा अजीतसिंह ने मुगल राजनीति में सक्रिय भाग लेकर उस पर अपना जो गहरा प्रभाव डाला, उसका सम्यक् अध्ययन भी आवश्यक था। अजीतसिंह के दुःखद अन्त के कारणों का विवेचन जोधपुर राज्य के इतिहास की महत्त्वपूर्ण समस्या थी। इसके साथ ही इस काल में जोधपुर राज्य की प्रशासनिक, सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति को भी प्रकाश में लाना आवश्यक था। इस शोध ग्रन्थ में लगभग सभी प्राप्य फ़ारसी तथा राजस्थानी ग्रन्थों के आधार पर इन समस्याओं को निष्पक्ष रूप से सुलझाने का प्रयास किया गया है।

इस शोध ग्रन्थ के लिये राजकीय पुरालेखागार बीकानेर, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी जोधपुर, पुस्तक-प्रकाश जोधपुर, सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी जोधपुर, जोधपुर पुरालेखागार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद, तथा प्रयाग विश्वविद्यालय लाइब्रेरी से सामग्री एकत्र की गई है। इन सभी पुस्तकालयों के अधिकारियों के प्रति मैं विशेष अनुगृहीत हूँ।

अपने निर्देशक डा. चन्द्रभूषण त्रिपाठी (रीडर, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्व-विद्यालय) की मैं चिरऋणी हूँ, जिन्होंने विषय के चुनाव से लेकर अन्त तक सदैव मेरा पथ-प्रदर्शन किया। उनकी असीम अनुकम्पा के बिना यह कार्य पूर्ण होना सम्भव न था। इनके साथ ही साथ इतिहास विभाग के अध्यक्ष श्री ओ० पी० भटनागर तथा अन्य सभी गुरुजनों ने समय-समय पर मेरी कठिनाइयों को दूर करके मेरे उत्साह को जिस प्रकार सम्वर्द्धित किया, उसके लिये मैं उन सबकी अनुगृहीत हूँ। राजकीय पुरालेखागार के निदेशक स्वर्गीय श्री नाथूराम खड़गावत के प्रति मैं बहुत आभारी हूँ। उन्होंने न केवल बीकानेर में मेरे निवास की समुचित व्यवस्था की वरन् समय-समय पर मेरी सम

स्याओं का समाधान भी किया। राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी के श्री नारायणसिंह भाटी की भी मैं विशेष कृतज्ञ हूँ जिन्होंने उदारतापूर्वक अपने पुस्तकालय की नामावली में न लिखे गये हस्तलिखित ग्रन्थों के अध्ययन की मुझे सुविधा दी और अपने संग्रह में से महाराजा अजीतसिंह के चित्र के उपयोग की भी अनुमति सहर्ष प्रदान की। जोधपुर के श्री बालमुकुन्द जोशी ने मुझे अपनी व्यक्तिगत ख्यात के अध्ययन की सुविधा दी। इनके अतिरिक्त जोधपुर में श्री पुरुषोत्तम लाल मेनारिया ने समय-समय पर मेरी समस्याओं को सुलझाकर जो सहायता की, उसे मैं कभी नहीं भूल सकती।

अन्त में, मैं अपने पूज्य माता-पिता श्रीमती रामप्यारी वेदी तथा डा. अमरनाथ वेदी, भाई जितेन्द्र, सत्येन्द्र तथा देवेन्द्र एवं भाभी कमला व निशि का उल्लेख किये बिना नहीं रह सकती जिनके सहयोग एवं आशीर्वाद के बिना इस शोध-ग्रन्थ की पूर्णता असम्भव थी। इसका प्रकाशन मेरे पति श्री देशमित्र जी (लेक्चरर दयालसिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय) की प्रेरणा एवं मेरी सास श्रीमती कृष्णा देवी तथा ससुर श्री अतरचन्द जी के सहयोग से ही हो सका है।

दिनांक १५ नवम्बर, १९७३ मीरा मित्र

विषय-सूची

संक्षिप्त-संकेत

अहवाल—अहवाल-उल-ख़वाकीन ।
आईन—आईन-ए-अकबरी ।
आदाब—आदाब-ए-आलमगीरी ।
आसोपा—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास ।
इबरतनामा—ले० सैयद मुहम्मद कासिम हुसैनी लाहौरी ।
इम्पीरियल—इम्पीरियल गैज़ेटियर ।
इरादत ख़ाँ—तज़किरा इरादत ख़ाँ ।
इरविन— लेटर मुग़ल्स ।
उमराये—उमराये हनूद ।
ओझा—राजपूताने का इतिहास (पाँचो भाग) ।
ओहदा— ओहदा वही नं. १ ।
कामराज—इबरतनामा ।
कामवर—तज़किरात-उस्सलातीन-ए-चग़तई ।
कविराजा – कविराजा मुरारिदान री ख्यात ।
ख़फ़ी ख़ाँ—मुन्तखब-उल-लुबाब ।
खोज—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज ।
खोज (देवी)—राजपूताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज व उनकी सूची ।
ख्यात—जोधपुर राज्य की ख्यात ।
गहलोत (मारवाड़)—मारवाड़ राज्य का इतिहास ।
गहलोत (राजपूताने)—राजपूताने का इतिहास ।
गैरोला—भारतीय–चित्रकला ।
गोपीनाथ—राजस्थानी पेन्टिग्ज़ एण्ड मुग़ल इम्पैक्ट, लेखक गोपीनाथ शर्मा ।
ग्लोरीज़—ग्लोरीज़ आव् मारवाड़ एण्ड ग्लोरियस राठौरस् ।
जयसिंह—लाइफ़ एण्ड टाइम्स आव् मिर्जा राजा जयसिंह ।
जसवन्तसिंह—लाइफ़ एण्ड टाइम्स आव् महाराजा जसवन्तसिंह ।
जुनी—पुस्तक-प्रकाश री जुनीवही में लिखियो तीरा री वीगत ।
टाड—एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज़ आव् राजस्थान ।
डिंगल—डिंगल में वीर रस ।
डि साहि—डिंगल साहित्य।
दस्तूर—दस्तूर री वही ।
दानेश्वर—राठोड़ दानेश्वर-ग्रन्थ-मुक्तावली ।

दिलकुशा—नुस्ख़ा-ए-दिलकुशा ।
देवीप्रसाद—औरंगज़ेबनामा ।
पंचोली —पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ ।
पिंगल—राजस्थान का पिंगल साहित्य ।
पूर्व—पूर्व-आधुनिक-राजस्थान ।
प्राचीन राजवंश—भारत के प्राचीन राजवंश ।
फ़ारूकी— औरंगज़ेब एण्ड हिज़ टाइम्ज़ ।
फ़ुतूहात — फ़ुतूहात-ए-आलमगीरी ।
फ्रायर—न्यू एकाउन्ट आव् ईस्ट इण्डिया एण्ड पर्शिया वीइन्ग नाइन ईयरस
ट्रैवल्स ।
वहादुर—वहादुरशाहनामा ।
वहादुरशाह—लाइफ़ एण्ड टाइम्स आव् वहादुरशाह प्रथम ।
बाम्बे गैज़े—गैज़ेटियर आव् दि बाम्बे प्रेसिडेन्सी ।
मनूची—स्टोरिया डो मोगोर ।
मआसिर—मआसिर-उल-उमरा ।
मारवाड़—मारवाड़ एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स ।
मिश्र—मिश्र-बन्धु-विनोद
मीरात—मीरात-ए-अहमदी ।
मुस्ताद ख़ाँ—मआसीर-ए-आलमगीरी ।
मूँदियाड़—मूँदियाड़ री ख्यात ।
मूल—मारवाड़ का मूल इतिहास ।
मेवाड़—मेवाड़ एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स ।
रतलाम – रतलाम का प्रथम राज्य ।
राज, गैज़े—राजपूताना गैज़ेटियर ।
राज भाषा—राजस्थानी भाषा और साहित्य ले० मोतीलाल मेनारिया ।
राज. साहि.—राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा ।
राठौड़ा—राठौड़ा री ख्यात ।
रिपोर्ट—सर्च रिपोर्ट्स ।
रुस्तम अली—तारीख़-ए-हिन्दी ।
रेउ—मारवाड़ का इतिहास ।
लालस—राजस्थानी सबद कोस ।
वंश—वंशभास्कर ।
वाक़या—वाक़या सरकार अजमेर व रणथम्भोर ।
वार्ता—जसवन्तसिंघ री वार्ता व अजीतसिंघ री वार्ता ।
वारिद—मीरात-उल-वारिदात ।
विजय—राजस्थानी-चित्रकला ।

विवरण—हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण।

वीर—वीर विनोद।

शिवदास—मुनव्वर-उल-कलाम।

शिवसिंह—शिवसिंह-सरोज।

शर्मा—राजस्थानी पेन्टिंग्ज एण्ड देयर इमपैक्ट आन सोसायटी एण्ड क

लेखक गोपीनाथ शर्मा।

शर्मा (एडमिनिस्ट्रेशन)—मुगल गवर्नमेन्ट एन्ड एडमिनिस्ट्रेशन।

शर्मा (स्टडीज)—स्टडीज इन मिडीवल इण्डियन हिस्ट्री।

सरकार—हिस्ट्री आव् औरंगजेब।

सत्य—राजस्थानी पेन्टिंग्ज लेखक सत्य प्रकाश।

सरन—प्राविन्शियल गवर्नमेन्ट आव् दि मुगल्स।

स्काट—औरंगजेब्स सक्सेसर्स।

सीयर—सीयर-उल-मुताखरीन।

कुछ अन्य शब्द—

रा० प्रा० वि० प्र०—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

रा० पु० बी०—राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर।

रा० शो० सं० चौ०—राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर।

विषय-प्रवेश

सन् १६७८ ई० में रानस्थान

भारतवर्ष में २३ अंश ३ कला से ३० अंश १२ कला उत्तर अक्षांश तथा ६९ अंश ३० कला से ७८ अंश १७ कला पूर्व देशान्तर[1] के बीच के विस्तृत प्रदेश पर बहुत समय पहले से ही राजपूतों का प्रभुत्त्व रहा है। इस प्रदेश में विभिन्न छोटे-बड़े राज्य थे, जिन पर भिन्न-भिन्न राजपूत वंशों का अधिकार था। इन सभी राज्यों कि अपने-अपने नाम थे; परन्तु समग्र रूप से यह राज्य बादशाह अकबर के शासन काल से पूर्व कभी भी एक नाम से नहीं पुकारा गया। सन् १५८० ई० में अकबर ने प्रान्तीय शासन का संगठन करते हुए इन राज्यों के कुछ भागों को संगठित करके 'अजमेर-सूबा' नाम दिया।[2]

उल्लिखित प्रदेश के प्रथम इतिहासकार कर्नल टॉड ने इसे सर्वप्रथम 'रायथान' अथवा 'रजवाड़ा' नाम से अभिहित किया। यह नाम विभिन्न राजाओं अथवा उनके राज्यों के स्थान का सूचक है। कालान्तर में अंग्रेजों ने सम्पूर्ण प्रदेश में राजपूत शासकों का आधिपत्य देख कर इसे 'राजपूताना' नाम दिया। धीरे-धीरे यही नाम इस प्रदेश के लिये प्रचलित हो गया।[3]

राजपूताना के पश्चिम व उत्तर के भाग में जैसलमेर, जोधपुर तथा बीकानेर, उत्तर-पूर्व के भाग में शेखावटी व अलवर तथा पूर्व-दक्षिण के भाग में जयपुर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, बूँदी, कोटा व झालावाड़ के प्रदेश हैं। प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर व उदयपुर के प्रदेश राजस्थान के दक्षिणी भाग में हैं, सिरोही का प्रदेश दक्षिण-पश्चिम में और अजमेर मेरवाड़ा, किशनगढ़, शाहपुरा तथा टोंक के प्रदेश मध्य में स्थित हैं।[4]

महाराजा जसवन्तसिंह के अन्तिम दिनों में सन् १६७८ ई० में राजपूताने में मारवाड़ राज्य के अतिरिक्त बीकानेर, जैसलमेर, सिरोही, उदयपुर, डूँगरपुर, प्रताप-गढ़, बाँसवाड़ा, बूँदी, आम्बेर, किशनगढ़ व रतलाम के राज्य प्रमुख थे। इन राज्यों में विभिन्न वंशों के राजपूत शासक राज्य कर रहे थे। जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़

---

१. इम्पीरियल भाग २१, ८२-३, ओझा. भाग १, ३, जसवन्तसिंह १।

२. आईन, भाग २, १२९ व २७३: सरन १२३-८; पूर्व ६७-८; जयसिंह १३; जसवन्तसिंह ६।

३. टॉड भाग १, १; ओझा भाग १, १-२: पूर्व-६७-८ टि; जयसिंह १३, जसवन्तसिंह १।

४. इम्पीरियल-भाग २१, ८३: ओझा भाग १, ४।

और रतलाम में राठौड़, उदयपुर, डूंगरपुर, प्रतापगढ़ तथा बाँसवाड़ा में सीसोदिया, बूँदी व सिरोही में चौहान, आम्बेर में कछवाहा तथा जैसलमेर में भाटी वंश के राजपूतों का प्रभुत्व था।[5]

राजस्थान की उत्तरी सीमा पर मारवाड़ राज्य के ठीक उत्तर में स्थित बीकानेर राज्य पर इन दिनों महाराजा अनूपसिंह का शासन था। उसके पिता राव कर्णसिंह को सन् १६६७ ई० में बादशाह औरंगजेब ने चांदा व देवगढ़ के विरोधी राजाओं को दबाने के लिये दिलेर खाँ के साथ नियुक्त किया था; परन्तु उसकी दिलेर खाँ से पट न सकी। कर्णसिंह मुगल सेनापति की अवज्ञा करने लगा तथा उसके सैनिक लूटमार करने पर उतारू हो गये। उसके इस विरोधी व्यवहार से मुगल-सम्राट् असन्तुष्ट हो गया और उसने दण्ड स्वरूप रावकर्ण को गद्दी से हटाकर उसके पुत्र अनूपसिंह को दो हजार जात डेढ़ हजार सवार का मनसब और 'राव' की पदवी देकर २७ अगस्त, सन् १६६७ ई० को बीकानेर का राज्याधिकार सौंप दिया। अनूपसिंह ने आजीवन दक्षिण में रह कर मरहठों एवं गोलकुण्डा के विरुद्ध लगभग सभी युद्धों में जिस तत्परता और वीरता के साथ मुगल साम्राज्य की सेवा की, उससे प्रभावित होकर औरंगजेब ने सन् १६७५ ई० में उसे 'महाराजा' की पदवी देकर सम्मानित किया। सन् १६७७-८ ई० में दक्षिण के सूबेदार बहादुर खाँ ने उसे औरंगाबाद की देख-रेख का कार्य सौंपा था। उसकी अनुपस्थिति में बीकानेर का शासन यद्यपि विश्वस्त सरदारों के हाथ में रहा, तथापि गम्भीर समस्याओं के समाधान के लिये वह दक्षिण में ही निर्देश भेजा करता था। उसका विवाह मेवाड़ के राणा राजसिंह की बहिन के साथ हुआ था और इन दोनों राजघरानों के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे थे। मारवाड़ के शासक जसवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त १६७९ ई० उसके पुत्र अजीतसिंह के अधिकार का अनूपसिंह ने समर्थन किया था, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जसवन्तसिंह तथा अनूपसिंह के पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे होंगे।[6]

मारवाड़ राज्य के उत्तर-पश्चिम में, राजस्थान की पश्चिमी सीमा-पर स्थित जैसलमेर राज्य पर पिछले उन्तीस वर्षों से (सन् १६५० ई० से) भाटी वंश का महारावल अमरसिंह राज्य कर रहा था। उससे तीन पीढ़ी पूर्व के शासक महारावल मनोहरदास की पुत्री का विवाह सन् १६३३ ई० में मारवाड़ के महाराजा जसवन्तसिंह के साथ हुआ था। महारावल मनोहरदास के उत्तराधिकारी भाटी रामचंद्र के दुराचरण एवं अयोग्यता से जैसलमेर के सरदार असन्तुष्ट थे और उन्होंने रामचन्द्र के चचेरे भाई सबलसिंह को आमन्त्रित किया। तब सबलसिंह ने जसवन्तसिंह से सहायता माँगी और उसके सहयोग से जैसलमेर पर अधिकार कर लिया। इस उपकार के

---

5. ओझा भाग १, २।
6. बीकानेर (हिन्दी) इ० ओझा भाग ४ खण्ड १, २४४, २५८-२६०, २६३; पूर्व १२४-५; टॉड भाग ३, १४९।

बदले में सबलसिंह ने पोकरण का प्रदेश, जोकि राव चन्द्रसेन के समय से (सन् १५७६ ई० से) जैसलमेर के भाटी शासकों के अधिकार में था, जसवन्तसिंह को वापस कर दिया।[७] सन् १६४६ ई० में उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अमरसिंह जैसलमेर का शासक हुआ। उसने पश्चिमी-सीमा पर बलोचियों का सफलता पूर्वक दमन करके तथा उत्तर–पश्चिम में चन्ना राजपूतों[८] से भविष्य में विरोध न करने का लिखित आश्वासन लेकर अपने राज्य को सुदृढ़ किया। सन् १६५६ ई० में उसने पोकरण पर पुनः अधिकार करने का भी प्रयत्न किया, परन्तु महाराजा जसवन्तसिंह ने राठौड़ सबलसिंह तथा मुहणोत नैणसी के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेजकर उनका पीछा किया और जैसलमेर राज्य की सीमा में घुस कर लूटमार आरम्भ कर दी। तब बीकानेर के राव कर्ण ने इन दोनों राज्यों में मेल कराया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस युद्ध के बाद दोनों राज्यों में आपस में तनातनी चलती रही। अमरसिंह की महत्त्वाकांक्षा के फलस्वरूप जैसलमेर का बीकानेर से भी संघर्ष हुआ। जैसलमेर राज्य की पूर्वी-सीमा पर बीकानेर के कांधलोत जाति के राठौड़ अक्सर उपद्रव किया करते थे। उन्हें दबाने के लिए अमरसिंह के आदेशानुसार जब बीकमपुर के अधिकारियों ने उन पर आक्रमण किया और बीकानेर की पश्चिमी-सीमा पर स्थित झज्झू नामक स्थान को लूट लिया, तब बीकानेर के शासक अनूपसिंह ने कांधलोतों को पूरी शक्ति के साथ जैसलमेर पर आक्रमण करने का आदेश दिया। परन्तु रावल अमरसिंह ने उनके आक्रमण से पूर्व ही बीकानेर के सीमा प्रान्तों को लूटना आरंभ कर दिया था। फलतः इन दोनों राज्यों में संघर्ष चलता रहा। अमरसिंह ने पूगल[९] तथा अपने राज्य के दक्षिणी भाग में स्थित कोटड़ा व बाड़मेर के बाड़मेरा राठौड़ों पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इस प्रकार जैसलमेर राज्य की शक्ति इस समय काफी बढ़ गई थी।[१०]

राजपूताना के दक्षिण–पश्चिम में, मारवाड़ राज्य के ठीक दक्षिण में स्थित सिरोही नामक राज्य पर पिछले लगभग चार पांच वर्षों से (सम्भवतः सन् १६७४ ई० से)[११] राव वैरीसाल शासन कर रहा था। राव वैरीसाल एवं उसके पूर्ववर्ती

---

७. गहलोत राजपूताने भाग १, ६७४–६, रेउ. भाग १, १५७, २१७-८, जसवन्तसिंह ३६, ५८–६।

८. टॉड (भाग १, २१०) ने लिखा है कि चन्ना राजपूतों का उपद्रव उत्तर-पूर्व में हुआ था। चूंकि पश्चिम में बलोची उपद्रव कर रहे थे अतः उन्हीं के निकटवर्ती स्थान पर उपद्रव होना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। इसी कारण चन्ना राजपूतों का उत्तर-पश्चिम में होना स्वीकार किया गया है।

९. पूगल जैसलमेर के उत्तर में तथा बीकानेर व मुल्तान के मध्य में स्थित है।

१०. गहलोत राजपूताने, भाग १, ६७६-८; टॉड भाग २, २१०–१; रेउ भाग १, २३१ टि; जसवन्तसिंह १०६–७।

११. राव अखैराज की मृत्यु सन् १६७३ ई० में हुई थी। उसके बाद कुछ समय के लिए उदयसिंह शासक रहा, तब वैरीसाल शासक हुआ। (राज. गैजे. २४३)।

शासक उदयसिंह का राज्य-काल विशेष महत्त्वपूर्ण न था। इनसे पूर्व राव अखैराज के समय में सिरोही में चांदा तथा उसके पुत्र अमरसिंह[१२] के विद्रोहों के कारण आन्तरिक अशान्ति बनी रही। इस कारण अखैराज ने पड़ौस के अन्य सशक्त राज्यों से अच्छा सम्बन्ध बनाये रखकर अपनी बुद्धिमता का परिचय दिया। मेवाड़ के राणा जगतसिंह ने एक बार किसी कारणवश अप्रसन्न होकर सिरोही में सेना भेज कर लूट–मार करवाई तथा कुछ प्रदेशों पर अधिकार भी कर लिया, तो अखैराज ने उससे संधि कर ली। ३० मार्च, सन् १६५६ ई० को उसने अपनी कन्या आनंद-कुंवर का विवाह मारवाड़ के शासक जसवन्तसिंह के साथ कर दिया। इस प्रकार सिरोही व मारवाड़ के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे। फिर भी गृह–कलह एवं आन्तरिक विद्रोहों के कारण सिरोही राज्य विशेष उन्नति न कर सका।[१३]

राजस्थान के दक्षिण में तथा मारवाड़ के दक्षिण-पूर्व में स्थित राजपूतों के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण राज्य उदयपुर पर राणा जगतसिंह की मृत्यु के उपरान्त सन् सन् १६५२ ई० से उसका ज्येष्ठ पुत्र राजसिंह शासन कर रहा था। राजसिंह दिखावे के लिए मुगल साम्राज्य के साथ अच्छे सम्बन्ध रखते हुए भी हृदय से सदैव उसका विरोधी था। अपने युवराज को बार-बार मुगल दरबार में भेजने पर भी जब वह पुर, मांडल और बदनोर के परगने वापस न पा सका तब शाहजहाँ और दारा का विरोधी हो गया। सन् १६५७ ई० के उत्तराधिकार-युद्ध में राजपूत शासकों में केवल राजसिंह ही ऐसा शासक था जिसने औरंगजेब के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रक्खा। औरंगज़ेब ने उससे पत्र व्यवहार करना आरम्भ कर दिया था और भावी युद्ध में उसकी सहायता माँगी थी। इस सहयोग के बदले में शासनाधिकार मिल जाने पर उसने बदनोर तथा मांडल के परगने राणा को देना स्वीकार किया था। परन्तु राजसिंह ने धरमत के युद्ध में किसी प्रकार की सैनिक सहायता दी हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। इस युद्ध में औरंगज़ेब की सफलता पर राणा ने अपना दूत भेज कर उसे शुभकामनाएँ भेजीं। कुछ महीनों के बाद राणा का पुत्र सुल्तानसिंह तथा भाई अरिसिंह सलीमपुर नामक स्थान पर औरंगज़ेब से मिले और उन्होंने राणा की ओर से उसे सिंहासनारूढ़ होने पर बधाई दी। औरंगज़ेब ने भी ७ अगस्त, सन् १६५८ ई० को राणा के मनसब में वृद्धि करके बदनौर व मांडल के परगने उसे लौटा दिए और साथ ही उसे यह भी आदेश दिया कि वह अपने निकटवर्ती

१२. राव अखैराज के पिता राजसिंह के प्रधानमंत्री पृथ्वीराज के पुत्र का नाम चांदा था। पृथ्वीराज का प्रभुत्व राजसिंह के समय में बहुत बढ़ गया था और उसने अवसर पाकर राजा का वध करवा दिया था, बालक अखैराज को भी कठिनाई से बचाया जा सका। जब अखैराज शासक हुआ तो उसने पृथ्वीराज को मरवा कर अपने पिता की हत्या का बदला लिया। फलतः पृथ्वीराज के पुत्र चांदा व पौत्र अमरसिंह राज्य में निरन्तर उपद्रव करते रहे।

१३. राज. गैजे २४२-३; जसवन्तसिंह १०७।

डूंगरपुर, प्रतापगढ़ व बांसवाड़ा के राज्यों पर अपना अधिकार करले। जब राणा ने इन राज्यों पर अपनी सेनाएँ भेजीं तो, चूँकि वहाँ के शासकों के पास उसका सामना करने के लिए पर्याप्त सैनिकशक्ति नहीं थी, अतः उन्होंने मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करली। परन्तु वे मन ही मन राणा से अप्रसन्न हो गए और इस प्रकार इन राज्यों से राणा के सम्बन्ध बिगड़ गए। चूँकि मुगल सम्राट् से राजसिंह के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण थे, फलतः जब दारा ने उसे पत्र लिखकर सहायता का अनुरोध किया तो उसने कुछ ध्यान नहीं दिया। कहा जाता है कि किशनगढ़ की राजकुमारी चारुमती से बादशाह स्वयं विवाह करने का इच्छुक था और जब सन् १६६० ई० में राणा राजसिंह ने उससे विवाह कर लिया तो वह अप्रसन्न हो गया और उसने गयासपुर व बसाड़ नामक दो परगने उदयपुर से निकाल कर देवलिया के शासक महारावत हरिसिंह को दे दिए। कुछ इतिहासकारों का मत है कि जब औरंगज़ेब ने कुछ धर्म विरोधी आज्ञाएं प्रसारित कीं और मन्दिरों को ध्वंस करने का आदेश दिया तो राणा ने कई मन्दिरों की मूर्तियों को अपने राज्य में प्रश्रय देकर हिन्दू धर्म की रक्षा की। फलतः राणा व बादशाह के सम्बन्ध बिगड़ गए। परन्तु उक्त घटनाओं के बाद भी राणा का पुत्र लालसिंह बादशाह से कई बार मिला और अरिसिंह बिना किसी रुकावट के श्राद्ध के लिए गया नामक तीर्थस्थान को गया। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १६७८ ई० के आसपास मुगल सम्राट् और राणा के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया। जोधपुर राज्य के साथ भी उसका मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध था। सन् १६७६ ई० में जब राणा ने राजसमुद्र नामक तालाब की प्रतिष्ठा की तो उसने महाराजा जसवन्तसिंह को काबुल में हाथी, घोड़े व वस्त्र भेजे। सन् १६७८ ई० में जब जसवन्तसिंह की मृत्यु हुई तब उसके बाद उसके नवजात पुत्र अजीतसिंह को राणा ने अपने राज्य में आश्रय दिया। यह उसके मैत्रीपूर्ण व्यवहार की पुष्टि करते हैं।[१४]

राजपूताने के दक्षिणी भाग में डूंगरपुर, प्रतापगढ़ और बाँसवाड़ा के राज्य थे। मेवाड़ राज्य के दक्षिण की ओर स्थित डूंगरपुर राज्य का शासन पिछले सत्रह वर्षों से (सन् १६६१ ई० से) महारावल जसवन्तसिंह के हाथ में था। सन् १६५८ ई० में जब औरंगजेब से अधिकार पाकर राणा राजसिंह ने डूंगरपुर पर आक्रमण किया था तो जसवन्तसिंह के पिता महारावल गिरिधरदास ने मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करली थी। पिता की मृत्यु के उपरान्त जसवन्तसिंह ने भी अपने पिता की ही नीति का अनुसरण किया और मेवाड़ से अच्छा सम्बन्ध रक्खा। अन्य राज्यों से भी उसके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे।[१५]

---

१४. मेवाड़ १५६-१६३; ओझा भाग २, खंड १, ५३४-५४२ व ५४६-७; गहलोत राजपूताने भाग १, २५०-५; पूर्व ११०-२, ११२, ११५, ११८, १२४ व १३०; जसवन्तसिंह १४१।

१५. ओझा भाग ३, खंड १, ११३-७; गहलोत राजपूताने भाग १, ४१२-३।

डूंगरपुर से पूर्व की ओर देवलिया-प्रतापगढ़ का राज्य था, जहाँ महारावल हरिसिंह की मृत्यु के उपरान्त सन् १६७३ ई० से उसका ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह शासन कर रहा था। उसके पिता ने सन् १६३३ ई० में बादशाह शाहजहाँ से प्रतापगढ़ का अधिकार प्राप्त किया था और शाही सेना के सहयोग से ही जब वह अपने राज्य की ओर गया तो राणा जगतसिंह ने चुपचाप अपनी सेना वहाँ से हटा ली। सन् १६५८ ई० में औरंगजेब ने पुनः यह राज्य मेवाड़ के अधीन कर दिया। हरिसिंह इससे बहुत अप्रसन्न हुआ परन्तु राणा का विरोध करने की शक्ति उसके पास नहीं थी, अतः वह चुप रहा। केवल दो ही वर्ष बाद बादशाह ने ग्यासपुर व बसाड़ नामक दो परगने उसे वापस कर दिए। इस प्रकार मेवाड़ व प्रतापगढ़ के शासकों के पारस्परिक सम्बन्ध कभी सौहार्दपूर्ण न हो सके और यह स्थिति प्रतापसिंह के शासन-काल में भी ज्यों की त्यों बनी रही। परन्तु जोधपुर, जयपुर व बीकानेर के शासकों से प्रतापसिंह ने अच्छे सम्बन्ध रक्खे। उसके समय में प्रतापगढ़ राज्य की शक्ति एवं समृद्धि में पर्याप्त वृद्धि हुई।[१६]

प्रतापगढ़ राज्य के पश्चिम में राजपूताने के बिल्कुल दक्षिण में स्थित बाँसवाड़ा राज्य पर सन् १६६० ई. से महारावल कुशलसिंह शासन कर रहा था। प्रतापगढ़ राज्य की ही भाँति बाँसवाड़ा राज्य भी कभी मेवाड़ के अधीन रहा और कभी स्वतन्त्र। सन् १६५९ ई. में जब औरंगजेब से शाही अधिकार पाकर राणा राजसिंह ने बाँसवाड़ा पर आक्रमण किया तो महारावल ने दो लाख रुपया, एक हाथी, एक हथिनी, व दस गाँव देकर सन्धि कर ली। परन्तु उसके उत्तराधिकारी कुशलसिंह ने मेवाड़ के प्रभुत्व की उपेक्षा करना आरम्भ कर दिया। उसे दबाने के लिये राणा ने सन् १६७४ ई. में एक सेना भेजी। कुशलसिंह इस सेना का सामना न कर सका और बाध्य होकर उसे मेवाड़ की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। मेवाड़ से मुक्ति पाने के लिए उसने धीरे-धीरे बादशाह को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया और सुअवसर की प्रतीक्षा करता रहा। सन् १६७९ ई. में अवसर पाते ही उसने औरंगजेब से बाँसवाड़े का अधिकार प्राप्त कर लिया। मेवाड़ राज्य से सर्वैव तनावपूर्ण स्थिति बनी रहने के कारण इस राज्य की विशेष उन्नति न हो सकी।[१७]

मेवाड़ के पूर्व में स्थित बूंदी के हाड़ा वंशी शासकों ने आम्बेर के कछवाहों की भाँति अकबर के समय से ही मुगल साम्राज्य के साथ मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इन राजाओं ने निरन्तर मुगलों की सेवा कर सम्मान प्राप्त किया और अपने राज्य के गौरव को बढ़ाया। बूंदी में पिछले बीस वर्षों से (सन् १६५८ ई. से) भावसिंह शासन कर रहा था। उसके पिता राव छत्रसाल ने औरंगजेब के साथ दक्षिण में रह कर विभिन्न युद्धों में अपनी वीरता एवं स्वामिभक्ति का परिचय दिया

---

१६. ओझा भाग ३, खंड ३, १३१, १४३-४, १५४, १५५-८ व १७७; गहलोत राजपूताने भाग १. ५२२-४।

१७—ओझा भाग ३. खंड १, ९४-६ व १०४-५; गहलोत राजपूताने भाग १, ४६८-७१

था। शाहजहाँ के अन्तिम दिनों में जब उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए संघर्ष प्रारम्भ हुआ तो छत्रसाल न केवल औरंगजेब की अवज्ञा करके शाहजहाँ के पास चला आया वरन् उसने औरंगजेब के विरुद्ध दारा को सक्रिय सहयोग भी दिया और सामूगढ़ के युद्ध में मई, सन् १६५८ ई. में दारा की ओर से युद्ध करते हुए उसकी मृत्यु हो गई। छत्रसाल के इस विरोधी आचरण के कारण औरंगजेब ने उसके उत्तराधिकारी भावसिंह को स्वीकार नहीं किया और शिवपुर के गौड़ राजा आत्माराम को बूँदी पर आक्रमण करने का आदेश दिया। परन्तु बूँदी के सरदारों ने परस्पर मंत्रणा करके आत्माराम का विरोध किया और उसको न केवल बूँदी से ही भागना पड़ा वरन् शिवपुर में भी उसका पीछा किया गया और वह भागकर औरंगजेब की शरण में चला गया। उसकी असफलता का समाचार पाकर बादशाह ने भावसिंह को बूँदी का शासक स्वीकार कर लिया। सन् १६६७ ई. में उसे मुअज्जम के साथ दक्षिण भेजा गया, जहाँ उसने कई युद्धों में वीरतापूर्वक भाग लिया और जसवन्तसिंह की मृत्यु के केवल तीन चार वर्ष उपरान्त औरंगाबाद में सन् १६८२ ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसकी एक बहिन कर्मावती का विवाह छत्रसाल के जीवन-काल में ही सन् १६३७ ई. के लगभग महाराजा जसवन्तसिंह से हुआ था।[18]

मारवाड़ राज्य के उत्तर-पूर्व में राजस्थान की पूर्वी सीमा पर स्थित कछवाहों का आम्बेर राज्य इस समय तक यथेष्ट ख्याति प्राप्त कर चुका था। मुगल सत्ता की छाया में धीरे-धीरे पनपते हुए इस राज्य को भगवन्तदास, मानसिंह तथा मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने इतना समृद्ध एवं शक्तिशाली बना दिया था कि वह अन्य राजपूत घरानों की ईर्ष्या का कारण बन चुका था। परन्तु इसके चरमोत्कर्ष के दिन लगभग पूरे हो चले थे। मिर्ज़ा राजा जयसिंह के अन्तिम दो वर्ष दक्षिण-युद्ध में बीते जहाँ उसे अपने कोष से एक करोड़ से अधिक रुपया लगाकर भी केवल सामरिक विफलता, निराशा तथा मुगल सम्राट् औरंगजेब का असन्तोष ही मिल सका। अपनी असफलता के गहरे धक्के को वह सहन न कर सका और सन् १६६७ ई. में उसकी मृत्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारी रामसिंह पर शिवाजी को आगरे के बन्दीगृह से भगाने का पहिले ही सन्देह हो चुका था। फलतः आम्बेर पर दुर्दिन के बादल मंडराने लगे थे, वैभव व समृद्धि का स्वर्णयुग समाप्त हो चुका था। यद्यपि रामसिंह को चार हजार जात तीन हजार सवार का मनसब मिला हुआ था फिर भी मुगल राजनीति में आम्बेर धीरे-धीरे अपना महत्त्व खो रहा था। रामसिंह का जीवन अपने राज्य से दूर तथा मुगल राजधानी से दूर आसाम तथा अफ़गानिस्तान जैसे सुदूरवर्ती प्रदेशों में ही बीता। आम्बेर की इस हीनावस्था से इसके प्रतिद्वन्द्वी जोधपुर के शासक महाराजा जसवन्तसिंह को अपना प्रभाव बढ़ाने का अच्छा अवसर मिला था, परन्तु इस अवसर से वह

---

१८. टॉड भाग २, ३८८–३६०; जसवन्तसिंह, ३६।

कोई विशेष लाभ न उठा सका। सम्भवतः वह भी मुगल सम्राट् औरंगजेब का सन्देह-भाजन हो चुका था। आम्बेर का भविष्य पूर्णतया अंधकार में था।[१९]

मारवाड़ के पूर्व, राजपूताना के मध्य में स्थित किशनगढ़ नामक छोटे से राज्य पर पिछले बीस वर्षों से (सन् १६५८ ई. से) महाराजा मानसिंह शासन कर रहा था। अपने पिता रूपसिंह की ही भाँति मानसिंह भी आजीवन मुगलों का सहयोगी बना रहा। औरंगजेब ने सन् १६५८ ई. में अपने सिंहासनारोहण के समय उसे तीन हजार जात, तीन हजार सवार का मनसब दिया था। उसने दक्षिण के विभिन्न युद्धों में भाग लेकर मुगल साम्राज्य की यथाशक्ति सेवा की थी।[२०]

राजपूताने की सीमा से बाहर मालवा के पूर्व में रतलाम नामक छोटा-सा एक और राजपूत राज्य था। सन् १६५८ ई. में वहाँ के शासक रतनसिंह की मृत्यु हो जाने के बाद वहाँ उसका पुत्र रामसिंह शासन कर रहा था। सन् १६५९ ई. में जब अवध सूबे के अन्तर्गत बैसवाड़ा प्रदेश में बैस राजपूतों ने उपद्रव किया तो बादशाह ने बहादुरखाँ के नेतृत्व में एक बड़ी सेना उधर भेजी। रामसिंह भी इस सेना में नियुक्त था। उसके बाद सन् १६६४ से १६६७ ई. तक उसने दक्षिण में रहकर मरहठों तथा बीजापुर के विरुद्ध किए गए विभिन्न शाही आक्रमणों में भाग लिया। सन् १६७८ ई. में वह पुनः शाहजादा मुअज्जम के साथ दक्षिण की ओर गया और जब बादशाह का मेवाड़ से युद्ध छिड़ गया तो शाही आज्ञा पाकर शाहजादे के साथ ही वह दक्षिण से लौटा। जोधपुर का महाराजा जसवन्तसिंह उसका मामा था।[२१] अतः उसकी मृत्यु के बाद रामसिंह ने औरंगजेब के पास अपने वकील से प्रार्थना करवाई कि शिशु राजकुमार अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य दे दिया जाए। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मारवाड़ एवं रतलाम के शासकों के पारस्परिक सम्बन्ध काफी घनिष्ठ थे।[२२]

इस प्रकार महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय लगभग सभी राजपूत राज्यों से मारवाड़ राज्य के सम्बन्ध अच्छे थे। इन राज्यों में से बूंदी, सिरोही व रतलाम के राजवंशों के साथ जसवन्तसिंह का पारिवारिक सम्बन्ध था। उदयपुर के राणा राजसिंह ने जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी को शरण देकर तथा बीकानेर के अनूपसिंह ने अजीतसिंह को राज्य देने के लिए बादशाह से

---

१९. दुर्गे, ११२७–२८; टॉड भाग २, २८८।

२०. दुर्गे, ११३; राठौड़ रत्नवंश, ३०३–५।

२१. रामसिंह के दादा महेशदास का विवाह राजा जोधपुर के शासक मोटाराजा उदयसिंह की बेटी से हुआ था। इस सम्बन्ध के अनुसार उदयसिंह का पौत्र गजसिंह व महेशदास आपस में मौसेरे भाई थे। चूँकि महेशदास आयु में कुछ छोटे थे, अतः उनका पुत्र रतनसिंह, गजसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह का छोटा भाई लगता था (रतलाम, १६ व १९)। इस प्रकार जसवन्तसिंह रतनसिंह के पुत्र रामसिंह का मामा था।

२२. रतलाम १२२–१२३, दुर्गे, ११७; राठौड़ रत्नवंश ३१५।

प्रार्थना करके जोधपुर राज्य के प्रति अपनी सद्भावना का परिचय दिया। शेष राज्यों में से डूंगरपुर, प्रतापगढ़ व बांसवाड़ा के राज्यों के साथ भी मारवाड़ राज्य के सम्बन्ध अच्छे थे। केवल जैसलमेर के साथ जसवन्तसिंह की तनातनी हो गई थी। सन् १६५९ ई. में जब जैसलमेर के रावल अमरसिंह ने पोकरण छीनने का प्रयास किया था, उस समय से इन दोनों राज्यों में मेल न हो सका था।

सन् १६७८ ई. तक लगभग सभी राजपूत शासक मुगल सम्राट् की शक्ति एवं सामर्थ्य से परिचित हो चुके थे और उन्हें विदित हो गया था कि मुगल साम्राज्य से अच्छे सम्बन्ध बनाए रखना ही उनके राज्य के लिए हितकर है। फलतः बिना किसी विशेष कारण के वे औरंगजेब से अपना सम्बन्ध नहीं बिगाड़ना चाहते थे। उदयपुर के राणा राजसिंह एवं बादशाह में उत्तराधिकार युद्ध के समय से ही मैत्री थी। बीकानेर में औरंगजेब ने पिता को हटाकर पुत्र को शासक बनाया था, फलतः अनूपसिंह ने दक्षिण में रहकर निरन्तर मुगल साम्राज्य की सेवा की। बूंदी में औरंगजेब ने यद्यपि नियमित उत्तराधिकार का उल्लंघन करने का प्रयत्न किया परन्तु वह सफल न हो सका और उसने वास्तविक उत्तराधिकारी को ही शासक स्वीकार कर लिया। तब बूंदी के शासक भावसिंह ने भी, किशनगढ़ के राजा मानसिंह तथा रतलाम के राजा रामसिंह की भांति दक्षिण के युद्धों में शाही सेना की ओर से अपूर्व वीरता दिखाई, और जयपुर के रामसिंह ने आसाम व अफ़गानिस्तान में रहकर मुगल साम्राज्य की सेवा की। अन्य राज्यों ने भी औरंगज़ेब के साथ मैत्री-पूर्ण सम्बन्ध रखा।

प्रशासनिक दृष्टि से कुछ राजपूत राज्य पिछली लगभग एक शताब्दी से मुगल साम्राज्य के अंग माने जाते थे। अकबर ने सन् १५८० ई. में उन्हें संगठित करके अजमेर सूबे का निर्माण किया था। परन्तु इन राज्यों की स्थिति साम्राज्य के अन्य प्रदेशों से नितान्त भिन्न थी। साम्राज्य का एक अंग होते हुए भी ये अपने आन्तरिक प्रशासन में पूर्ण स्वतन्त्र थे। मुगल-दरबार से निकट सम्पर्क रहने के कारण इन राज्यों की शासन-व्यवस्था पर मुगल शासन प्रणाली का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। लगभग सभी राज्यों में उसी प्रकार के कर्मचारी नियुक्त होने लगे थे, जिस प्रकार मुगल शासन पद्धति में हुआ करते थे। शासक व सामन्त के पारस्परिक सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन हो गया था और पहले की सी भाईचारे की भावना उतनी नहीं रही थी।[२३]

व्यापार व वाणिज्य की दृष्टि से राजपूताना महत्त्वपूर्ण था। खनिज पदार्थों में तांबा प्रचुर मात्रा में मिलता था। इसी कारण नागौर व रणथम्भोर में टकसालें थीं। तांबे के अतिरिक्त लोहा, चांदी, अभ्रक, जस्ता व सीसा थोड़ी बहुत मात्रा में पाया जाता था। नमक राजस्थान की प्रमुख व्यापारिक वस्तु थी। नमक के उत्पादन

---

२३. प्रशासन सम्बन्धी विस्तार के लिए देखिए अध्याय ६, खंड १।

के लिए [illegible] प्रमुख बन्दरगाह थे। [illegible] जाते थे। इस कारण [illegible] मुगल सम्राट् द्वारा फरमान [illegible] काफी लम्बे [illegible] बाजार खुल जाते थे। इस प्रकार [illegible] मिलता रहता था।[24]

सन् [illegible] परिवर्तित हो गए थे। अकबर के समय से [illegible] मुगल सम्राट् व शाहजादों [illegible] के राजवंशों की कन्याएँ मुगल हरम [illegible] सम्बन्धों के कारण राजपूत [illegible] राजाओं की तरह उनके [illegible] मुगल सेना में नियुक्त किया गया। उन्हें राज्य में विभिन्न पदों पर नियुक्त किया गया, उनको मनसब दिए गए तथा अन्य सुविधाएँ भी दी गईं। अकबर ने अपने दरबार [illegible] नियुक्त किए थे। इससे राजपूतों के सामाजिक जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। मुगल-दरबार उनका आदर्श बन गया था। वे उसी का अनुकरण करते थे। फारसी भाषा का मुगल-दरबार के पत्रों में अधिकाधिक प्रयोग होने लगा था। इतना ही नहीं, राजकीय वेश-भूषा तथा आचार-विचार पर भी मुगल प्रभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा था।[25]

साहित्य के क्षेत्र में यद्यपि [illegible] नरहरिदास ने भक्ति प्रधान रचनाओं द्वारा धार्मिक साहित्य की परम्परा को बनाए रखा तथापि शान्ति एवं समृद्धि के कारण ऐश्वर्य एवं विलास की प्रवृत्ति को बल मिलने लगा था। फलतः साहित्य में भी अलंकरण की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। मतिराम का 'ललित-ललाम', जसवन्तसिंह का '[illegible]-भूषण', कुलपति मिश्र का 'रस-रहस्य' इस प्रवृत्ति की द्योतक अद्वितीय रचनाएं [illegible] जसवन्तसिंह के आश्रय में रहकर नवीन कवि ने 'नेहनिधान' व 'शृंगार शतक' [illegible] निधान ने 'जसवन्तविलास' नामक ग्रन्थों की रचना की। राजदरबार में संस्कृत भाषा के ग्रन्थों का लेखन हुआ। दयालदास कृत 'राणा रासो' तथा मानकवि कृत 'राजविलास' के द्वारा वीर काव्य रचना के पुनः आरम्भ का आभास मिलता है। 'राजप्रशस्ति' नामक प्रसिद्ध महाकाव्य भी इसी काल की कृति है। दलपति मिश्र ने 'जसवंत-उद्योत' नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा। इसी समय मुहणोत नैणसी ने 'ख्यात' की रचना की, जो ऐतिहासिक दृष्टि से अद्वितीय है।[26]

---

२४. आईन, भाग २,१२८-३०; मोरलैण्ड इण्डिया एट दि डैथ ऑफ अकबर, १४७, १४६; सरन, १३९; ओझा भाग ४, खंड १, ५; जयसिंह, २०; जसवन्तसिंह ८।

२५. पूर्व, ४३; जयसिंह, २१-२; जसवन्तसिंह, ८-६।

२६. पूर्व, १२३-५; जसवन्तसिंह, १६६-७।

औरंगजेब कला-प्रेमी सम्राट् न था। अतः कलाकारों को मुगल-दरबार में प्रश्रय मिलना समाप्त हो गया। मुगल-दरबार का आश्रय खोकर वे अन्यत्र राज्याश्रय ढूंढने लगे। राजस्थान के नरेशों ने इन कलाकारों को आश्रय प्रदान किया। अधिकतर राजपूत शासक इस काल में अपनी राजधानियों से दूर रहे। फिर भी इस काल के प्राप्य स्थापत्य एवं चित्रकला के नमूनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रशासनिक एवं सामाजिक क्षेत्रों की भांति इन क्षेत्रों पर भी मुगल-शैली का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। स्थानीय शैली पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुई, परन्तु दोनों में सुन्दर समन्वय स्थापित हो गया था।[२७]

---

२७. पूर्व, १३५ जसवन्तसिंह; १८८ व १९१।

२

जसवन्तसिंह की मृत्यु : अजीतसिंह का जन्म : औरंगज़ेब की प्रतिक्रिया

(सन् १६७८ ई० से सन् १६७९)

(क) जसवन्तसिंह की मृत्यु : अजीतसिंह का जन्म :-सन् (१६७८-९ ई०)

मारवाड़ राज्य के राठौड़ शासकों ने मुगल सम्राट् अकबर के समय से निरन्तर मुगलों की सेवा में रहकर अपने राज्य को पर्याप्त सुदृढ़ बना लिया था। मई, सन् १६३८ में महाराजा गजसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसका द्वितीय पुत्र जसवन्तसिंह जोधपुर का शासक हुआ। जोधपुर के पूर्ववर्ती शासक मोटा राजा उदयसिंह की पुत्री का विवाह जहाँगीर से हुआ था इस प्रकार जसवन्तसिंह शाहजहाँ के ममेरे भाई का पुत्र था। इस पारिवारिक सम्बन्ध के कारण तथा सम्भवतः आम्बेर के विरुद्ध जोधपुर की शक्ति बढ़ाकर दोनों राज्यों में प्रतिद्वन्द्विता बढ़ाने के विचार से शाहजहाँ जसवन्तसिंह पर असीम अनुकम्पा रखता था। जसवन्तसिंह के मनसब में निरन्तर वृद्धि होती गई और उसके बीस वर्षों के शासनकाल में केवल [illegible]२ वर्ष की अवस्था में ही सन् १६५८ ई० में उसका मनसब चार हजार जात चार [illegible]र सवार से बढ़कर सात हजार जात सात हजार सवार पाँच हजार सवार अस्पा से अस्पा हो गया, जोकि अन्य सभी राजपूत राजाओं के मनसब से अधिक था। धरमत के युद्ध में औरंगजेब के विरुद्ध युद्ध करने, दारा के लिए रुझान की भावना रखने तथा खजुवा के युद्ध में शुजा के साथ मिलकर औरंगजेब को हानि पहुँचाने का विचार रखने के संदेह से औरंगजेब अपने शासनारम्भ में जसवन्तसिंह से प्रसन्न न था। परन्तु वह राजपूतों से झगड़ा नहीं मोल लेना चाहता था, अतः सन् १६५९ ई० में उसने जसवंतसिंह को उसका पुराना मनसब देकर गुजरात जैसे महत्त्वपूर्ण सूबे पर नियुक्त किया, जहाँ उसने तीन वर्ष तक (सन् १६५९ से १६६१ ई०) सफलतापूर्वक शासन किया। इसके उपरान्त भी वह आजीवन मुगल-साम्राज्य की सेवा करता रहा। वह सन् १६६२ ई० से १६६५ ई० तक तथा सन् १६६६ ई० से सन् १६७१ तक दो बार दक्षिण में तथा सन् १६७१-२ ई० में कुछ समय के लिए गुजरात में सैनिक एवं प्रशासनिक कार्यों में रत रहा। २१ मई सन् १६७१ ई० को उसकी नियुक्ति जमरूद की थानेदारी पर की गई, जहाँ उसने सुरक्षा एवं व्यवस्था

का समुचित प्रबन्ध करके अपनी योग्यता का परिचय दिया। परन्तु २२ फरवरी सन् १६७६ ई० को अपने एकमात्र जीवित पुत्र महाराजकुमार जगतसिंह की मृत्यु के गहरे धक्के को वह सहन नहीं कर सका।[1] अपने राज्य के भविष्य की चिन्ता लिये हुए ही केवल ५२ वर्ष की अवस्था में बृहस्पतिवार, २८ नवम्बर सन् १६७८ ई० (पौष बदि १०, संवत् १७३५) को पेशावर में उसकी मृत्यु हो गई।[2]

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय उसकी दो रानियां तथा कुछ उपपत्नियां पेशावर में उपस्थित थीं। रानी जादम[3] (जादमण अथवा ज़ादवाणी) तथा रानी नरूकी गर्भवती थी। रानी जादम को चार मास का गर्भ था तथा रानी नरूकी को छः मास का।[4] जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार सुनकर जब इन दोनों रानियों ने सती होने की तैयारी आरम्भ की तो राठौड़ सरदार चिन्तित हो उठे क्योंकि महाराजा की मृत्यु के समय उसका कोई भी उत्तराधिकारी जीवित न था।[5] उसके दोनों पुत्रों--पृथ्वीसिंह तथा जगतसिंह—की मृत्यु क्रमशः सन् १६६७ ई० तथा सन्

---

१. विस्तार के लिये डॉ० एन० सी० राय की अप्रकाशित थीसिस 'लाइफ एण्ड टाइम्स ऑव महाराजा जसवन्तसिंह' देखिये।

२. पंचोली २४ब व १५४ब; राजरूपक १७; ख्यात भाग १, २५६; भाग २, १; मूंदियाड़ १७४; फौजचन्द १; बांकीदास ३३; वीर भाग २, ८२७; कविराजा ६६३; जोधपुर रै राठौड़ां री ख्यात ६ब; रेउ भाग १, २४१; ओझा भाग ४ खंड १, ४६७; मारवाड़ ११०; जसवन्तसिंह १४३।

विशेष विवरण के लिये देखिये परिशिष्ट 'क'।

३. रानी जादम का पीहर का नाम जसकँवर था। वह करौली के राजा छत्रमणि के छोटे पुत्र राजकुमार भूपाल की पुत्री थी। यही जोधपुर के भावी महाराजा अजीतसिंह की मां थी। (वाक़या २१७; जूनी ६१; गरड़े की ख्यात ३२४; सरकार (हिन्दी) २१७; गहलोत भाग १, ६०५)।

ओझा (भाग ४ खंड १, ४६७) ने रानी जादम को छत्रमणि की पुत्री कहा है, जो स्वीकार नहीं किया जा सकता।

४. पंचोली १५४ब व १६८अ; ख्यात भाग २, १६; जूनी ६२; अजितोदय सर्ग ६ श्लोक १०; अजितविलास २०७ब; जोधपुर रै राठौड़ां री ख्यात ६ब; वार्ता ३२ब।

प्राथमिक ग्रन्थों में केवल राजरूपक (२०) ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसके अनुसार रानी जादम की गर्भावस्था के सात मास व्यतीत हो चुके थे। टॉड (भाग २, ४४) ने भी इसका समर्थन किया है। परन्तु पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ, ख्यात, जूनी बही, अजितोदय व अजितविलास आदि लगभग सभी समकालीन ग्रन्थ यही लिखते हैं कि रानी जादम को चार मास का गर्भ था, अतः इसी मत को स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है।

५. केवल खफ़ी खां (मुन्तखब-उल-लुबाब भाग २, २५६); भीमसेन बुरहानपुरी (दिलकुशा भाग १, १६४); मनूची (भाग ३, २३३) व फ्रायर (१६०-१) ने स्वीकार किया है कि जसवन्तसिंह दो नाबालिग पुत्रों को छोड़कर मरा था। परन्तु चूंकि अन्य सभी इतिहासकारों ने स्पष्ट रूप से जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों के जन्म का उल्लेख किया है अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

दिसम्बर (माघ १ कृष्णा ११) को पहुँचा।[१४] इससे पूर्व ही वहाँ उपस्थित राठौड़ सूरजमल, राठौड़ रणछोड़दास, चन्द्रसेण, उदयसिंह, प्रतापसिंह, श्यामसिंह, विट्ठलदास, मोहकमसिंह, राठौड़ दुर्गादास, भारमल, चन्द्रभाण द्वारकादासोत, भंडारी भीव गिरधरदासोत, भंडारी सूरजमल नाहरदासोत, राठौड़ महासिंह, राठौड़ सबलसिंह, किशनसिंहोत, गौड़ सग्रामसिंह, कछवाहा नारायणदास भाखरोत, राठौड़ जुझारसिंह, राजसिंहोत, पंचोली हरकिशन, रघुनाथ, जगन्नाथ, धांधल उदयकरण, खीची मुकुन्ददास, गूजर लक्ष्मण, पंचोली दुर्गादास, हरीदास, पंचायणदास आदि सरदारों ने परस्पर विचार-विमर्श करके बादशाह से मैत्री-सम्बन्ध बनाये रखने का निश्चय किया और सैफुल्ला खाँ तथा काजी और वाकयानवीस आदि मुगल अधिकारियों को बुलाकर समस्त सम्पत्ति दिखा दी और शाही मुहरें लगवा लीं। महाराजा के घोड़ों व ऊँटों को भी दाग दिया गया। फ़रमान व दस्तक पाते ही वे पेशावर से प्रस्थान की तैयारी करने लगे।[१५]

उस समय काबुल के सूबेदार अमीर खाँ का भाई लाखा खाँ दिल्ली में था। उसे जब यह समाचार मिला कि बादशाह ने राठौड़ सरदारों को पेशावर से दिल्ली आने की अनुमति दे दी है तो वह कुछ चिन्तित हुआ। उसने मुगल सम्राट से प्रार्थना की कि अभी तक उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अफ़गानों का विद्रोह पूर्ण रूप से शान्त नहीं हुआ है, और ऐसी परिस्थिति में राठौड़ सरदारों एवं सैनिकों को वापस बुला लेने से मुगलों की सैनिक शक्ति क्षीण हो जायेगी जिसके फलस्वरूप सम्भव है वहाँ की समस्या और भी गम्भीर हो उठे। परिस्पिति पर विचार कर औरंगजेब ने अपना दस्तक वापस लाने के लिए एक दूत भेजा, परन्तु उसे यह भी स्पष्ट निर्देश कर दिया गया कि यदि दस्तक राठौड़ों के पास पहुँच गई हो तब तो उसे वापस न लिया जाय, पर यदि अभी तक न मिली हो तो उसे वापस मंगा लिया जाय। उसका उद्देश्य यह था कि यदि राठौड़ वहाँ रुक जायँ तो अच्छा ही है, उनके मन में किसी प्रकार का क्षोभ या आशंका उत्पन्न कर उनको वहाँ रोकना वह उचित न समझता था। परन्तु उसके आदेश का पूर्ण रूप से पालन नहीं किया गया। १ जनवरी सन् १६७९ ई० (माघ वदि १४, सम्वत् १७३५) को जिस

---

१४. पंचोली १६१ब।

यह फरमान व दस्तक राठौड़ों को किस दिन मिला इस विषय में मतभेद है। ख्यात (भाग २, ९) व जुनी (६२) में इस घटना का उल्लेख २८ दिसम्बर (माघ वदि १०) को तथा पानेश्वर (१७२-३) में २५ दिसम्बर (माघ वदि ७) को किया गया है। वास्तव में औरंगजेब ने इस दूत को भेजने के बाद जल्दी ही दूसरा दूत दस्तक वापस लाने के लिये भेजा था। सभी ग्रन्थों में दूसरे दूत के पेशावर पहुँचने की तिथि २ जनवरी (माघ वदि १४) ही स्वीकार की गई है। पहले भेजा गया दूत अवश्य ही इससे एकाध दिन पूर्व आया होगा, इसी कारण ३१ दिसम्बर को फ़रमान व दस्तक पहुँचना स्वीकार किया गया है।

१५. पंचोली १५४ब; ख्यात भाग २, १; ओझा भाग ४, खंड २, ४७७-८।

समय राठौड़-दल आगे बढ़ने की तैयारी कर रहा था। शाही दूत ने वहाँ पहुंच कर उनसे अटक पार करने की दस्तक वापस ले ली।[१६] इस दूत ने सम्भवतः अपनी स्वामिभक्ति और कार्य तत्परता दिखाने के उद्देश्य से ही ऐसा कदम उठाया था। शाही आज्ञा का उल्लघंन करने के नाते उसे क्या दण्ड मिला अथवा दण्ड मिला भी या नहीं, उससे प्रमुख समस्या पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। औरंगजेब जिस परिस्थिति को बचाना चाहता था वह इस राजदूत की विवेकहीनता से अकस्मात् उठ खड़ी हुई। महाराजा जसवन्तसिंह के परिवार एवं अन्य सहयोगियों को पेशावर में रोकने का उसका कोई विचार नहीं था। उनको वापस आने की आज्ञा ही नहीं, बल्कि मार्ग-व्यय के लिए बीस हजार रुपया भी भेजा गया था। काबुल की विषम परिस्थिति के नाते ही उसने लाखा खाँ के सुझाव को स्वीकार किया था, फिर भी राठौड़ों को किसी भी प्रकार असन्तुष्ट कर उन्हें पेशावर में रोकने का उसका बिल्कुल भी इरादा नहीं था। स्पष्ट है कि वह उस समय राठौड़ों के सन्तोष एवं सहयोग को अधिक महत्व दे रहा था।

इधर दस्तक वापस लिये जाने से राठौड़ों के हृदय में सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था। उत्तराधिकारी के अभाव में स्वदेश से सैकड़ों मील दूर रोके जाने से वे शंकित हो उठे। केवल पांच दिन उपरान्त मंगलवार ७ जनवरी (माघ सुदि ५) को जब जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार पाकर अमीर खां पेशावर आया तो राठौड़ों ने उसका स्वागत किया व दिल्ली के लिये प्रस्थान करने की अनुमति चाही। परन्तु अमीर खां को सम्भवतः सारी परिस्थिति का ज्ञान नहीं था, और उसने शाही आदेश के बिना उन्हें अनुमति देना उचित नहीं समझा।[१७] इससे राठौड़ों का और भी सशंक हो जाना स्वाभाविक था।

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय पंचोली हरराय उसकी ओर से जमरूद की देखभाल कर रहा था। महाराजा की मृत्यु का समाचार पाकर उसने ढाई हजार सवारों के साथ पेशावर के लिये प्रस्थान किया, जहां वह बृहस्पतिवार ९ जनवरी (माघ सुदि ८) को पहुंचा।[१८]

जब बादशाह को पता चला कि उसका दूत राठौडों के पास से दस्तक वापस लेकर आया है तो उसने रोहितासगढ़ के फौजदार नवाज बेग[१९] को आदेश भेजा कि

---

१६. पंचोली १६१ ब; ख्यात भाग २, ६।

१७. पंचोली १६२ ब।

ख्यात (भाग २, ६) में लिखा है कि अमीर खाँ २८ दिसम्बर (माघ बदि १०) को पेशावर पहुँचा था। लेकिन यह तिथि ठीक प्रतीत नहीं होती, क्योंकि राठौडों ने उससे प्रस्थान करने की अनुमति माँगी थी अतएव यह स्वीकार करना अधिक समीचीन जान पड़ता है कि वह शाही दस्तक वापस लिये जाने के बाद पेशावर पहुँचा था।

१८. पंचोली १६२ ब; ख्यात भाग २, ६।

१९. राजस्थानी ग्रन्थों में इसका नाम निवाज बेग लिखा गया है।

वह राठौड़ों को साथ लेकर दिल्ली आए। यह आज्ञा उसके पास शुक्रवार, ११ जनवरी (माघ सुदि १०) को पहुँची। उसने अमीर खाँ से राठौड़ों को अटक पार जाने देने के लिए स्वीकृति माँगी परन्तु अमीर खाँ को इस प्रकार का आदेश अभी तक नहीं मिला था, इसलिए उसने नवाज़ वेग की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। तब नवाज़ वेग ने राठौड़ सरदारों को यह सुझाव दिया कि वे अमीर खाँ को समझा बुझा कर उससे दस्तक प्राप्त करें। राठौड़ों ने रविवार, १२ जनवरी (माघ सुदि ११) को नवाब अमीर खाँ से भेंट की और उनके अग्रणी राठौड़ संग्रामसिंह[२०] ने निवेदन किया कि राठौड़ों के पास अन्नाभाव है, ऐसी दशा में यदि उन्हें दस्तक न मिली तो वे निश्चय ही उपद्रव करेंगे और उन्हें अनुशासन में रखना कठिन हो जाएगा। फिर अनुशासन भंग करने का आरोप हम पर लगेगा। अतः उचित यही है कि राठौड़ों को प्रस्थान करने की अनुमति शीघ्र दे दी जाय। सोमवार, १३ जनवरी (माघ सुदि १२) को जब यह लोग पुनः अमीर खाँ से मिले, तब उसने उन्हें अटक पार करने की दस्तक दे दी। इस प्रकार राठौड़ों ने अगले दिन १४ जनवरी (माघ सुदि १३) को पेशावर से प्रस्थान किया।[२१]

राठौड़ों ने पहला पड़ाव केवल आधे कोस की दूरी पर डाला। अगले दिन बुधवार, १५ जनवरी (माघ सुदि १४) को अमीर खाँ ने सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए राठौड़ों के पास शराब व अन्य भोजन सामग्री भेजी। बृहस्पतिवार, १६ जनवरी (माघ सुदि १५) को भोजनोपरान्त पाँच कोस की यात्रा करके राठौड़ खानेदौराँ की

---

२०. ख्यात में संग्रामसिंह के स्थान पर स्यामसिंह नाम लिखा है; परन्तु संग्रामसिंह ही इस समय प्रमुख सरदार था।

२१. पंचोली १६२ब, १६३अ व १६३ब; ख्यात भाग २, ९ व १०।

फुतूहात (७३ब); जुनी (६२) दानेश्वर (१७३); एवं अभयविलास (१०अ) में शाही आज्ञा मिल जाने के बाद राठौड़ों का यात्रारम्भ करना स्वीकार किया गया है।

मुन्तखब-उल-लुबाब (भाग २, २५९); अजितोदय (सर्ग ४, श्लोक ३९); वीर (भाग २, ८२८) में लिखा है कि राठौड़ों ने बिना आज्ञा प्राप्त किये यात्रारम्भ कर दिया था। चूंकि उनके पास अटक पार करने की दस्तक नहीं थी, अतः वहाँ पहुँचने पर मीर-वहर ने उन्हें रोका। इस पर राठौड़ों ने शाही अधिकारियों से युद्ध किया और मीर वहर व उसके कुछ साथियों को घायल करके बलपूर्वक अटक नदी को पार किया। मुहम्मद सैयद अहमद (उमराए ९८); फ़ारूकी (२११-२ व २२३); रेउ (भाग १, २४८); ओझा (भाग ४. खंड २, ४७८); गहलोत (मारवाड़ १५७) आसोपा (मूल १६२) आदि आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसी मत का समर्थन किया है। परन्तु इस मत को स्वीकार करना ठीक नहीं है, क्योंकि पंचोली ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि अटक पार करने के लिये नावों का प्रबन्ध करने में स्थानीय दारोगा ने राठौड़ों को सहायता दी थी और नदी पार कर लेने के बाद अटक का फौजदार भी राठौड़ सरदारों से मिला था। इस बात की पुष्टि जोधपुर राज्य की ख्यात और अन्य ग्रन्थों से भी होती है।

टॉड (भाग २, ४४) ने लिखा है कि राठौड़ों ने अजीतसिंह के जन्म के उपरान्त अपनी यात्रारम्भ की थी जो बिल्कुल गलत है।

सराय में रुके। कुछ सामग्री एवं घोड़ों पर शाही मुहर न लग पाई थी, अतः राठौड़ दुर्गादास, पंचोली, हरिकिशन, तथा रघुनाथ यहीं रुक गए। शेष सरदारों ने यात्रा जारी रक्खी तथा नौशेरा[२२] होते हुए शनिवार, १८ जनवरी (फालगुन वदि 2) को आंकोड़ा नामक स्थान पर पहुंचे।

अगले दो दिन १९ व २० जनवरी (फाल्गुन वदि ३ व ४) अटक पार करने के लिए नावों के प्रबन्ध में व्यतीत हुए। स्थानीय दारोगा की सहायता से जब समुचित प्रबन्ध हो गया तो मंगलवार २१ जनवरी (फाल्गुन वदि ४) को राठौड़ों ने अटक पार करके नदी के दूसरी ओर खेमे डाल दिए। यहीं पर अटक का फ़ौजदार भी राठौड़ों से मिलने आया यहाँ से बुधवार, २२ जनवरी (फाल्गुन वदि ५) को सांहणी जोगीदास द्वारा जोधपुर के सरदारों के पास यह सन्देश भेजा गया कि वे औरंगज़ेब का विरोध न करें और उससे अच्छे सम्बन्ध बनाए रखें।

अटक से चलकर यात्रा करता हुआ यह दल रविवार, २६ जनवरी (फाल्गुन वदि ९) को हसन अब्दाल पहुँचा। रोहितासगढ़ का फ़ौजदार भी शाही आज्ञानुसार राठौड़ों के साथ यात्रा कर रहा था। इस पड़ाव पर उसके पास हस्बुलहुक्म आया कि वह राठौड़ सूरजमल को लेकर आगे आ जाएं। उसके स्थान पर राठौड़-दल को राजधानी तक पहुँचाने के लिए अजमेरी खां की नियुक्ति की गई। हसन अब्दाल में ही जोधपुर से राघोदास वापस आया और उसने जोधपुर में रानी चन्द्रावत के साथ स्वर्गीय महाराजा की बीस उपस्त्रियों के सती होने का समाचार दिया। साथ ही उसने राज्य में स्थान-स्थान पर होने वाले विरोध का भी विवरण दिया। इसी दिन राजगुरु पुरोहित गांगजे, कल्याण दास कायस्थ, पंचोली जयसिंह सादूलोत तथा राठौड़ सादूलोत गहलोत को महाराजा जसवन्तसिंह की अस्थियाँ प्रवाहित करने के लिए हरिद्वार भेजा गया।[२३]

सोमवार, २७ जनवरी (फाल्गुन वदि १०) को हसन अब्दाल से चलकर राठौड़ों ने काला पाणी पार किया और सात कोस की यात्रा करके खरबूजा की सराय में रुके।[२४] यहां से चलकर रावलपिण्डी होते हुए ये लोग रविवार, २ फरवरी (फाल्गुन सुदि २) को गाखड़ के तालाब पर रुके, जहाँ उन्हें बादशाह का दूसरा फ़रमान मिला जिसमें उसने राठौड़ों को पुनः सांत्वना दी थी। अगले पड़ाव रोहितासगढ़ पर दुर्गादास तथा रघुनाथ भी आ पहुँचे। अब केवल पंचोली हरिकिशन पीछे रह गया था। दो दिन तक वर्षा के कारण यात्रा स्थगित रही।

---

२२. राजस्थानी ग्रन्थों में इस स्थान का नाम 'नवसैर' अथवा 'नवेसहर' लिखा है।

२३. पंचोली १६३ ब से १६६ अ; ख्यात भाग २, १०; जुनी ६२; दानेश्वर १७२-३, १८५-६।

२४. पंचोली. १६६ अ; ख्यात भाग २, १०; दानेश्वर १८६। इन ख्यातों में लिखा है कि मार्ग में ही नवाज बेग की पालकी के कहारों द्वारा कुछ कटु वचन कहे जाने पर वह अप्रसन्न होकर काला पांणी पर ही रुक गया था। मंगलवार, २८ जनवरी (फाल्गुन वदि ११) को जब पंचोली जयकरण उसे मना न सका तो अगले दिन राठौड़ संग्रामसिंह उसे मनाकर लाया और उसने उसे अपने शिविर में ही रक्खा।

दिया जिसका नाम अजीतसिंह रक्खा गया।[२९] कुछ घड़ी के उपरान्त रानी नरुकी ने भी एक पुत्र को जन्म दिया, जो दलथम्भन के नाम से पुकारा गया।[३०]

इन दोनों राजकुमारों के जन्म से राठौड़ों के हर्ष का पारावार न रहा। राघोदास, गोवर्धन तथा तुलसी नामक पत्रवाहकों को अगले ही दिन बृहस्पतिवार, २० फरवरी (चैत्र बदि ५) को यह समाचार पहुँचाने के लिए जोधपुर भेजा गया। बादशाह के पास उपस्थित वकील श्यामदास को सन्देश भेजा गया कि वह दो सौ मुहरें भेंट करके बादशाह को दोनों राजकुमारों के जन्म का समाचार दे दे। नवाब अमीर खाँ तथा राजा रामसिंह के पास भी सन्देशवाहक भेजकर यह समाचार पहुँचाया गया।[३१] वज़ीर असद खाँ, बख्शी सरबुलन्द खाँ आदि विभिन्न शाही अधिकारियों के लिए भी उपयुक्त उपहार भेजे गए।[३२] इसी दिन पेशावर से मिर्ज़ा अजमेरी खाँ राठोड़ों के पास आ पहुँचा। इसे बादशाह ने राठौड़ों को दिल्ली लाने के लिए नवाज़ बेग के स्थान पर नियुक्त किया था।[३३]

---

२९. पंचोली १६८ अ; ख्यात भाग २, १ व १९; राजरूपक. २६; अजितोदय. सर्ग ६२ श्लोक १–१०; जुनी. ६१-२; मूंदियाड़. १७४; आजित चरित्र सर्ग ७ श्लोक ६; फौजचन्द १; दानेश्वर १७२ व १८६; अजितविलास. २०८ ब; वीर–भाग २, ८२८; राठौड़ाँ-१; रेउ–भाग १, २४८; ओझा-भाग ४ खंड २, ४७८; रतलाम-२२२; मूल-१६२; फारूकी. २११-;२ गहलोत. मारवाड़) १५६; मारवाड़ ११९।

विशेष विवरण के लिये देखिये परिशिष्ट 'ख'।

३०. ख्यात-भाग २, १९; पंचोली. १६८ अ; जुनी६१ ; मूंदियाड, १७५; अजितोदय. सर्ग ६ श्लोक १५; दानेश्वर. १७२ व १८२; अजितविलास २०८ ब; वीर. भाग २, ८२८; जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात. ६ ब. मुस्ताद खाँ. १०७; फ़ुतूहात. ७३ ब; देवीप्रसाद. ८४; सरकार ३, ३२९; रेउ. भाग १, २४८, ओझा. भाग ४ खंड २, ४७८।

३१. पंचोली १६८ ब व १७० ब; ख्यात. भाग २, १९-२०; जुनी-६३; दानेश्वर. १८७ अजित-विलास. २०८ ब; आसोपा. २३६।

अजितोदय (सर्ग ६, श्लोक १८) में जोधपुर भेजे जाने वाले दूत का नाम हरिकिशन लिखा है। अजितविलास (२०८ ब) के अनुसार इसी समय इन राठौड़ सरदारों ने जोधपुर में उपस्थित् सरदारों को एक पत्र भी लिखा जिसमें बताया कि वे लोग दिल्ली की ओर जा रहे हैं और उन्हें भी दिल्ली पहुंचने की राय दी। साकी मुस्ताद खाँ (१०९) ने यह लिखा है कि राठौड़ सरदारों ने बादशाह को समाचार देने के साथ-साथ बड़े राजकुमार को मनसब व जोधपुर का राज्य देने की प्रार्थना भी की थी। परन्तु इन मतों की पुष्टि अन्यत्र कहीं नहीं होती।

३२. पंचोली (१६८ अ) ने तथा जुनी (६३) में विभिन्न अधिकारियों को भेंट भेजने का उल्लेख इस प्रकार है :—

५०,००० रु० सरबुलन्द खाँ; २५,००० रु० असद खाँ; ४०,००० रु० कावली खाँ; २,००० रु० दाराब खाँ; २०,००० रु० इनायत खाँ; ७,००० रु० काजी; २०० रु० निहाल बेग।

३३. पंचोली. १६८ ब।

का भी मुहूर्त था, अतः इस उत्सव के उपलक्ष में होने वाला भोज स्थगित कर दिया गया तथा सात-आठ घड़ी दिन शेष रहने पर राठौड़ों ने सतीबाग[३९] के पास पहुंच कर पड़ाव डाला। यहीं पर 'दसौठन' के उपलक्ष्य में दावत हुई, जिसमें राजकुमारों के लिये भी थाल परोसे गये और उन थालों के पीछे यथाविधि सरदार बैठे। ब्राह्मणों बनियों तथा काम करने वाले व्यक्तियों को उनकी स्थिति के अनुसार गेहूँ, चावल, दाल आदि खाद्यान्न दिये गये, जिसे 'पेटिये' कहा जाता था। राठौड़ संग्रामसिंह की अस्वस्थता के कारण अगले दो दिन तक सब लोग इसी स्थान पर रुके रहे।[४०]

मंगलवार, ४ मार्च (चैत्र सुदि २) को पुनः यात्रा आरम्भ हुई। प्रतिदिन आठ-नौ कोस की यात्रा करते हुए यह लोग रविवार, ९ मार्च (चैत्र सुदि ८) को नूरमहल[४१] की सराय में रुके : अगले दिन १० मार्च (चैत्र सुदि ९) को इसी स्थान पर देशरावा नामक उत्सव हुआ।[४२] इस अवसर पर सरदारों ने राजकुमारों के दर्शन किये। इसी समय से राठौड़ों ने ज्येष्ठ महाराजकुमार अजीतसिंह को महाराजा जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी स्वीकार करके यथोचित सम्मान देना प्रारम्भ कर दिया था। इस दिन सभी सरदारों ने उसके पाँव छुए तथा मुहरें व रुपया भेंट किया। शाही अधिकारी नवाज़ बेग व अजमेरी खाँ भी उससे मिले। इसी दिन भोज भी हुआ जिसमें सभी सरदार अपने-अपने निर्धारित स्थान पर बैठे। सायंकाल पुनः दरबार लगाया गया, परन्तु इस समय अजीतसिंह को बाहर नहीं लाया गया। इस वक्त नौबत बजाई गई, घोड़े की पूजा की गई तथा चार भैंसों की बलि दी गई।[४३]

यहाँ से चलकर राठौड़ फलौर होते हुए बुधवार, १२ मार्च (चैत्र सुदि ११) को लुधियाना पहुँचे।[४४] यहीं पर उन्हें बुधवार, ५ मार्च (चैत्र सुदि ३) का अजमेर से लिखा गया एक हस्बुलहुक्म मिला जिसमें लिखा था कि मुगल सम्राट अजमेर से दिल्ली की ओर प्रस्थान कर रहा है, अतः वे लोग भी यथाशीघ्र दिल्ली पहुँचें।

---

३९. ख्यात (भाग २, २०) में इस स्थान का नाम ततीबाघ बताया गया है परन्तु पंचोली द्वारा उल्लिखित नाम को ही स्वीकार किया गया है।

४०. पंचोली १९९ अ; ख्यात-भाग २, २०-१।

४१. पंचोली (१९९ अ) ने इसका उल्लेख नूरमोहर नाम से किया है; परन्तु ठीक शब्द नूरमहल ही है।

४२. दानेश्वर (१८७) में यह उत्सव एक दिन पूर्व होना लिखा है। राठौड़ों के यहाँ चैत्र सुदि १ से ९ तक नवरात्रि की पूजा होती है और चैत्र सुदि १० को चैती दशहरा मनाया जाता है। यहाँ इसी चैती दशहरा का उल्लेख है।

४३. पंचोली १९९ अ; ख्यात. भाग २, २०-१; दानेश्वर. १८७।

४४. इस स्थान का उल्लेख लेभांणा नाम से किया गया है, . .

वहाँ पर महाराजा जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी को नाम, मनसब व राज्य देकर सम्मानित किया जायेगा।[४५]

दूसरे दिन बृहस्पतिवार, १३ मार्च (चैत्र सुदि १२) को दुराहे की सराय पर अजमेरी खां को बादशाह की आज्ञा मिली कि वह राठौड़ों को छोड़कर दिल्ली चला आये। अजमेरी खां के विदा होते समय अजीतसिंह को बाहर लाया गया और उसकी ओर से खां को भेंट स्वरूप पाँच सौ रुपये नकद तथा दो घोड़ों के स्थान पर उनके मूल्य स्वरूप दो सौ रुपये और दिये गये। उनकी यात्रा पूर्ववत् चलती रही। १७ मार्च (चैत्र सुदि १५) को अलुरणा की सराय में एक हस्बुलहुक्म द्वारा उन्हें विदित हुआ कि वकील श्यामदास द्वारा राजकुमारों के जन्म के उपलक्ष में भेंट की गई दो सौ मुहरें बादशाह ने स्वीकार करली हैं।[४६]

इसके उपरान्त इन्होंने अम्बाला, शाहाबाद, कुरुक्षेत्र थानेसर व कसाल होते हुए सोनीपत (सुंनपत) नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला। नवाज बेग अभी तक राठौड़ों के साथ-साथ यात्रा कर रहा था, सोनीपत से उसे आगे भेज दिया गया। इसके उपरान्त २ अप्रेल (वैशाख सुदि 2) को मनोहरपुर नामक स्थान पर एक व्यक्ति जोधपुर से आया जिसने यह सन्देश दिया कि जोधपुर से भी कई राठौड़ सरदार दिल्ली की ओर आ रहे हैं और वे १५ अप्रेल (वैशाख सुदि १४) तक वहाँ पहुँच जायेंगे। अगले दिन ३ अप्रेल (वैशाख सुदि ३) तथा पुनः ४ अप्रेल (वैशाख सुदि ४) को कुछ राठौड़ सरदार दिल्ली जाकर बख्शी सरबुलन्द खाँ से मिले।[४७]

---

४५. पंचोली १६९ ब; ख्यात-भाग २,९१; राजरूपक-२७; जुनी. ६३; दानेश्वर. १८७; सूरजप्रकाश भाग २,२५; वीर-भाग २,८२८; मनूची भाग ३,२३३; ओझा-भाग ४, खंड २,४८०; मेवाड़ १६६; आसोपा २३७; गहलोत (मारवाड़) १५७।

साकी मुस्ताद खां (१०९) के अनुसार बादशाह ने राजकुमारों को दरबार में बुलाया था और यह भी संदेश भेजा था कि जब वे बड़े हो जायेंगे तो उन्हें मनसब व राज्य दे दिया जायेगा। अधुनिक इतिहासकार फारूकी (२१४–५) तथा रामकर्ण आसोपा (मूल. १९२) ने भी इस मत का समर्थन किया है। फ़ारूकी का विचार है कि औरंगजेब के मन में यह सन्देह था कि दोनों नवजात बच्चे स्वर्गीय महाराजा के वास्तविक बच्चे नहीं है, राजपूतों ने किन्हो दो बच्चों को राजकुमार घोषित कर दिया है। अतः सत्यता जानने के लिये उसने राज परिवार और राठोड सरदारों को दिल्ली बुलाया था।

यह जगजीवन (अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक ५२) का मत है कि बादशाह जब अजमेर से दिल्ली की ओर लौट रहा था तो मार्ग में इस राठोड़-दल से उसकी भेंट हुई और वह उन्हें अपने साथ दिल्ली ले गया। परन्तु समस्त यात्रा विवरण को देखते हुये इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आसोपा (२३७) का मत है कि बादशाह ने राजकुमारों को मुसलमान बनाने का निश्चय करने के बाद दिल्ली बुलाया था; परन्तु इसकी पुष्टि किसी फ़ारसी अथवा राजस्थानी के आधार ग्रन्थ से नहीं होती।

४६. पंचोली. १६९ ब १७० अ; ख्यात–भाग २,२१।

४७. पंचोली १७० अ ब, १७३ अ; ख्यात-भाग २,२२; जुनी ६३।

राठौड़ों ने ५ अप्रेल (वैशाख सुदि ५) को इस अन्तिम पड़ाव से चलकर दिल्ली में प्रवेश किया और जसवन्तपुरा में महाराजा जसवन्तसिंह की हवेली में पड़ाव डाला।[४८]

(ख) औरंगजेब की प्रतिक्रिया:—(सन् १६७८-६ ई०)

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार लेकर राघोदास रविवार १५ दिसम्बर, सन् १६७८ ई० (पौष सुदि १३) संवत्-१७३५ को सायंकाल मेड़ता पहुँचा।[४९] उसने पंचोली केसरीसिंह तथा भंडारी रघुनाथ को जसवन्तसिंह की दुःखद मृत्यु का समाचार सुनाया तथा पेशावर में उपस्थित राठौड़ सरदारों का पत्र दिया। इन दोनों ही सरदारों ने अगले ही दिन १६ दिसम्बर (पौष सुदि १४) को प्रातःकाल जोधपुर पहुँचकर जब जसवन्तसिंह के रनिवास को यह समाचार दिया, तब रामपुरे के राव अमरसिंह की बेटी रानी चन्द्रावत तथा स्वर्गीय महाराजा की बीस उपस्त्रियां राजा की पगड़ी के साथ मंडोर में सती हुईं। परन्तु बूँदी के राव भावसिंह की बहिन हाड़ी रानी कर्मावती को राठौड़ सरदारों ने सती नहीं होने दिया और उसी की सलाह से भावी कार्यक्रम की योजना आरम्भ हुई।[५०] रानी व राठौड़ सरदारों ने राघोदास द्वारा लाए गए पत्र पर विचार किया, जिसमें रानियों के प्रसव तक शान्ति की नीति का ही पालन करने की राय दी गई थी। हाड़ी रानी

---

४८. फुतूहात ७४ ब; पंचोली १७३ अ; ख्यात-भाग २,२२; आसोपा २३७।

सर जदुनाथ सरकार (भाग ३,३२९) ने लिखा है कि जसवन्तसिंह का परिवार जून के अन्त में दिल्ली पहुँचा था, जो ठीक नहीं है।

कुछ ग्रन्थों में लिखा है कि राठौड़ों पर दिल्ली पहुँचते ही पहरा लगा दिया गया था (फुतूहात ७४ ब; मुन्तखब-उल-लुबाब, खफी खां भाग २,२५९; अजितोदय सर्ग ६ श्लोक ७७; वार्ता ३२ ब; उमराए ८८; मेवाड़ १६६; मूल १८३ प्राचीन राजवंश २०६-७)। परन्तु यह घटना कुछ महीने बाद की है।

राठौड़ों की पेशावर से दिल्ली तक की यात्रा के लिये देखिये परिशिष्ट 'ग'।

४९. ख्यात (भाग २,१) व जुनी (६३) के अनुसार जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार जोधपुर में रविवार १ दिसम्बर (पौष वदि १३) को पहुँचा। महाराजा की मृत्यु २८ नवम्बर को हुई थी। अतः सन्देशवाहक का केवल तीन दिन में पेशावर से जोधपुर पहुँचना उस समय सम्भव नहीं था। सम्भवतः लिपिक की भूल से 'सुदि' के स्थान पर 'वदि' लिखा गया है।

५०. पंचोली २४ अ व १७० ब; ख्यात-भाग २,१; जुनी ६३; राजरूपक १८-९ अजितोदय सर्ग ५ श्लोक १; मूंदियाड़ १७४; अजितविलास २०८ अ; कविराजा ६१४; जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात ६ ब; वाकया ७४, ७७,७८।

यह जगजीवन (अजितोदय-सर्ग ५ श्लोक ११-३); टॉड (भाग २,४४) तथा आसोपा (२२७) ने केवल रानी चन्द्रावत के सती होने का उल्लेख किया है। वाकया (८०) में रानी के साथ बाईस उपस्त्रियों के सती होना वर्णित है। परन्तु लगभग सभी ख्याते व राजस्थानी ग्रन्थ रानी व बीस उपस्त्रियों के सती होने का उल्लेख करते हैं, अतः इस मत को स्वीकार किया गया है।

व उनके सहयोगी राठौड़ सरदार भी इसी नीति से सहमत थे। तदर्थ रानी ने सभी राठौड़ों को पूर्ववत् काम करते रहने की आज्ञा दी। इन्हीं दिनों भंडारी रघुनाथ, राठौड़ रूपसिंह तथा पंचोली केसरीसिंह आदि प्रमुख राठौड़ सरदारों को बादशाह का एक फरमान मिला, जिसमें उसने लिखा था कि वे लोग पूर्ववत् अपने-अपने पदों पर कार्य करें, उन्हें उनकी सेवाओं के लिए अनुकूल मनसब दिया जाएगा। सरदारों ने पूर्व निश्चय के अनुसार प्रत्युत्तर में लिखा कि वे बादशाह के सेवक हैं, उन्हें जो भी कार्य सौंपा जाएगा वे करेंगे। बादशाह उनकी सेवाओं के लिए जो कुछ भी देना चाहें, स्वर्गीय महाराजा के भावी राजकुमार को ही दें।[५१]

लेकिन जोधपुर में शान्ति एवं सुव्यवस्था बनी न रह सकी।[५२] सम्भवतः इस अव्यवस्था का कारण यह था कि एक ओर तो जोधपुर में यह समाचार पहुँच गया था कि औरंगजेब ने स्वर्गीय महाराजा की पेशावर की सम्पत्ति का निरीक्षण करके उस पर शाही मुहर लगाने की आज्ञा दे दी है। साथ ही जोधपुर की सम्पत्ति पर भी शाही अधिकार हो जाएगा, इसकी पूर्ण आशंका थी।

उधर दिल्ली में बादशाह औरंगजेब को महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार सन् १६७८ ई. के दिसम्बर के पूर्वार्द्ध में मिला। मृत्यु के समय जसवन्तसिंह सात हजार जात सात हजार सवार पांच हजार दो अस्पा से अस्पा का मनसबदार था। तदनुसार जोधपुर राज्य में तथा बाहर भी एक बड़ी जागीर उसके वेतन में निश्चित थी। मुगल साम्राज्य के प्रचलित नियमानुसार औरंगजेब ने तत्काल ही पेशावर के शाही कर्मचारियों को आज्ञा दी कि वे महाराजा की सम्पत्ति का निरीक्षण करके उस पर शाही मुहर लगा दें।[५३]

उधर औरंगजेब ने अजमेर के सूबेदार इफ्तिखार खां[५४] को एक फ़रमान भेजा

---

५१. वाकया. ७८; पंचोली १६२ अ ब।

आसोपा (४३८) के अनुसार पेशावर से जो पत्र आया था उस में लिखा था कि ऊपर से मित्रता दिखाते हुए गुप्त रूप से सैन्य संगठन किया जाय। इसी कारण राठौड़ों ने इसी समय से जोधपुर में एकत्रित होना आरम्भ कर दिया था। परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी आधार ग्रन्थ से नहीं होती।

५२. पंचोली १६२ ब तथा १६५ अब; वाकया ७८, ८०, ८१, ९८, १०५, १०७, ११०, १३१, १३६, १४१ व १५४।

५३. मुगल शासन में किसी सामन्त का मृत्यु पर उसका उत्तराधिकारी वंशानुगत रूप से जागीर प्राप्त नहीं कर सकता था। जागीर का स्वामित्व तत्काल ही बादशाह के अधिकार में चला जाता था और यह केवल उसी की इच्छा पर निर्भर था कि वह उसके वंशजों को कितनी जागीर दे। (अतहर अली ६३-७)।

५४. मीरात (फारसी) भाग १, २७७; अतहरअली ६७।

अजितोदय (सर्ग ५, श्लोक २९) में सूबेदार का नाम इख्तियार खां लिखा हुआ है परन्तु यह ठीक नहीं है। ८ जुलाई सन् १६७८ ई. से ८ मार्च १६७९ ई. तक अजमेर का सूबेदार इफ्तिखार खां ही था। (मुस्ताद खां १०२ व १०७)।

जिसमें उसे यह आज्ञा दी कि वह स्वर्गीय महाराजा की जागीर का प्रबन्ध करे। बादशाह की आज्ञा पाकर इफ्तिखार खाँ ने अजमेर के कानूनगो राजरूप व चार अन्य व्यक्तियों के द्वारा राठोड़ सरदारों के लिए एक पत्र जोधपुर भेजा जिसमें उसने यह सूचित किया कि वह जोधपुर व मेड़ता पर शाही अधिकार करने के लिए उस ओर प्रस्थान करने वाला है, साथ ही उसने यह भी आश्वासन दिया कि राठौड़ों पर शाही कृपा पूर्ववत् बनी रहेगी, वे किसी प्रकार की शंका न करें। कुछ दिन उपरान्त उसने पुनः मुहम्मद कायम कम्बू के द्वारा राठौड़ों को उसी आशय का एक दूसरा पत्र तथा मौखिक सन्देश भी भेजा। इसके अतिरिक्त इफ्तिखार खाँ ने शाही आज्ञानुसार अजमेर के अमीन मुहम्मद कायम तथा किरोड़ी इस्लाम मुहम्मद को आज्ञा दी कि वे स्वर्गीय महाराजा के अधिकृत परगनों पर अपने गुमाश्ते भेज कर जो वसूली शेष हो, उसे तुरन्त ही पूरी करलें। इफ्तिखार खाँ ने स्वयं भी अजमेर से जोधपुर के लिए प्रस्थान किया और मार्ग में २७ दिसम्बर (माघ वदि ६) को मेड़ता शहर के बाहर एक बाग में स्थित तालाब पर रुका। यहां पर जोधा रामसिंह व ऊदावत किशनसिंह ने छः सौ सवारों के साथ आकर उसका स्वागत किया।[५५]

जोधपुर में उपस्थित राठौड़ों ने इफ्तिखार खाँ से मिलकर बातचीत करने का निश्चय किया। इस कार्य का नेतृत्व पंचोली केसरीसिंह को सौंपा गया वह मंगलवार, २४ दिसम्बर (२० जिलकाद १०८९ हि.) को जोधपुर से रवाना हुआ। भाटी रघुनाथ सिंह तथा राठौड़रूपसिंह आदि अन्य बीस सरदारों ने भी अपनी-अपनी सेनाएं बुलाईं और अगले ही दिन बुधवार, २५ दिसम्बर (२१ जिलकाद) को उन्होंने मेड़ता जाने का निश्चय किया। इफ्तिखार खाँ को भी केसरीसिंह के मेड़ता आने का समाचार स्वयं पंचोली केसरीसिंह के पत्र तथा राजरूप कानूनगो और मुहम्मद कायम कम्बू के पत्रों द्वारा मिल गया था, अतः वह जोधपुर की ओर न बढ़कर मेड़ता में ही रुका रहा।[५६]

पंचोली केसरीसिंह, राठौड़ रूपसिंह तथा भाटी रघुनाथसिंह मेड़ता पहुँच कर इफ्तिखार खाँ से मिले। भेंट के समय उन्होंने जोधपुर राज्य के खालसा किए जाने पर दुःख प्रकट किया और कहा कि चूंकि जोधपुर राठौड़ों का वतन है और स्वर्गीय महाराजा का परिवार भी वहीं हैं, अतः वहाँ शाही अधिकार हो जाने से राठौड़ों की

---

५५. वाकया ७४, ७५, ७६, ७८, ७९; अजितोदय-सर्ग ५, श्लोक २६-३०; ख्यात भाग २, २; जुनी ६३; दस्तूर १४२।

राजविलास (१०८-११०) में अजमेर के सूबेदार का उल्लेख नहीं है; केवल बादशाह द्वारा दूत भेजकर राठौड़ों से राज्य, धन व सम्पत्ति माँगने तथा राठौड़ों द्वारा अभिमान पूर्वक इन्कार करने की चर्चा है।

५६. वाकया. ७९, ८० व ८१।

मानहानि होगी।[५७] इसलिए जोधपुर पर शाही अधिकार न किया जाय। उन्होंने बार-बार केवल जोधपुर की मांग की और कहा कि शेष मारवाड़ में से अन्य जो भी परगने उन्हें दिए जाएंगे, वे उसे स्वीकार करेंगे तथा जिस कार्य पर उनकी नियुक्ति की जाएगी, उसे पूरा करेंगे। इन्हीं दिनों रानी हाड़ी का भी एक पत्र इफ्तिखार खाँ को प्राप्त हुआ, जिसमें रानी ने अत्यन्त नम्रता पूर्वक जोधपुर की मांग की थी और यहां तक लिखा था कि उसे जोधपुर के बदले में सोजत व जैतारण के परगने वापस देने में कोई-आपत्ति नहीं है।

इफ्तिखार खां ने जब जसन्वतसिंह की सम्पत्ति के विषय में पूछताछ की तो राठौड़ सरदारों ने दो-तीन दिन पश्चात् समस्त सम्पत्ति की सूची देने का वचन दिया।[५८] बहियों का अध्ययन करके समस्त विवरण तैयार किया गया तथा समस्त सम्पत्ति की सूची बना कर इफ्तिखार खां को सौंप दी गई। इसके अनुसार जोधपुर में जसन्वतसिंह की सम्पत्ति में केवल ११६ मुहरें, २१८०० रुपये नकद तथा १९ हाथी थे। इसके अतिरिक्त राठोड़ों ने कुछ अन्य वस्तुओं का मूल्य निश्चित करके सूचित करने का आश्वासन दिया था। यह राशि जसवन्तसिंह की विस्तृत जागीरों को देखते हुए बहुत कम थी। अतः इफ्तिखार खाँ राठोड़ों के विवरण पर सहसा विश्वास न कर सका। उसे सन्देह हुआ कि राठोड़ों द्वारा दिया गया विवरण अपूर्ण है। इस पर राठोड़ों ने अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिए जोधपुर व अन्य किलों की तलाशी देना स्वीकार कर लिया।[५८]

इफ्तिखारखाँ को अपने उद्देश्य की पूर्ति में विशेष सफलता न मिल सकी। वह जोधपुर तक न जाकर मेड़ता ही रुका रहा। इधर जोधपुर में धीरे-धीरे राठोड़ सैनिक एकत्र हो रहे थे। दिसम्बर सन् १६७८ ई. (जिल्काद १०८९ ई) में जोधपुर में लगभग तीन हजार राजपूत सैनिक थे, परन्तु अगले दो महिनों में उनकी संख्या पाँच-छः हजार हो गई। इसी प्रकार जनवरी, १६७९ ई. तक मेड़ता में लगभग पाँच-छः हजार राजपूत सैनिक एकत्र हो गए थे। इफ्तिखार खाँ ने यह देखकर अपनी

---

५७. वाकया. ८२, ८३, ८५, ८६, ९६, ९९ व १२३।

५८. वाकया. ९४; अजितोदय सर्ग ५ श्लोक ३०–३६; जुनी ६३। वाकया के अनुसार इफ्तिखार खाँ ने जब-जब जोधपुर जाने का विचार किया, राठौड़ सरदारों ने उसे रोक दिया और कहा कि यदि वह जोधपुर गया तो वहां के राठौड़ अप्रसन्न हो जायेंगे और अव्यवस्था फैल जायेगी।

अजितोदय में लिखा है कि इफ्तिखार खाँ राठोड़ों की तैयारी देखकर आगे बढ़ने का साहस न कर सका था।

शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ की। वह प्रतिदिन तीन सौ प्यादे और तीन सौ सवार भर्ती करने लगा। इस प्रकार स्थिति दिन प्रतिदिन गम्भीर होती गई।[५६]

इसी बीच बादशाह को जब स्वर्गीय महाराजा की सम्पत्ति का विवरण विदित हुआ तो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ, क्योंकि जसवन्तसिंह के एक सेवक ख्वाजा फरासत ने उसे बताया था कि जोधपुर के राज्य-कोष में सत्तावन हजार रुपया पूर्व संग्रह का हैं और जसवन्तसिंह ने अपने समय में भी पर्याप्त धन संग्रह किया है। राठौड़ों द्वारा दिए गए विवरण की सम्पत्ति उसके अनुपात में बहुत कम थी। अतः औरंगजेब ने सैयद अब्दुल्लाखाँ को दो सौ सवार देकर जोधपुर के किले का निरीक्षण करने और वहाँ की सम्पत्ति का पता लगाने के लिए नियुक्त किया।[६०]

इधर जोधपुर में निरन्तर अव्यवस्था फैलती जा रही थी; यत्र-तत्र उपद्रव हो रहे थे। ऐसी परिस्थिति में वहाँ शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये शाही अधिकारियों को भेजना आवश्यक हो गया। औरंगजेब के पास इसके अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता नहीं था। अतः उसने १३ जनवरी (१० जिल्हिज) को ताहिर खाँ को

---

५६. वाकया, ८०, ८२, ८३ ८५, ८६ आदि ६१, ६५, १०६, ११७-६, १४५-६।

इस समय मारवाड़ में निम्नलिखित प्रमुख राठौड़ सरदार उपस्थित थे।

१. पंचोली केसरीसिंह	२. भाटी रघुनाथसिंह सुरताणोत
३. ऊदावत रूपसिंह प्रयागदासोत	४. ऊदावत राजसिंह बलरामोत
५. ऊदावत नरसिंह दयाल दासोत	६. भाटी रामसिंह कुंभावत
७. ऊदावत किशनसिंह प्रयागदासोत	८. झालो भावसिंह रायसिंहोत
९. राठौड़ दूदो राजसिंहोत	१०. चांपावत अजबसिंह राजसिंहोत
११. चांपावत कान्ह गिरधर दासोत	१२. भाटी किशोरदास महेशदासोत
१३. भाटी अर्जुन (अरजन) जगन्नाथोत	१४. चांपावत सांवतसिंह जोगीदासोत
१५. चांपावत हरनाथ गिरधरदासोत	१६. भंडारी जीवराज जगन्नाथोत
१७. उगरो सांवलदासोत	१८. चांपावत सोनग विट्ठलदासोत
१९. मेड़तिया आनन्दसिंह भीवोत	२०. जोधा मुकुन्ददास सादूलोत मालदोत
२१. कूपावत सबलसिंह दलपतोत	२२. ऊहड़ भगवानदास सुन्दरदासोत
२३. ऊहड़ भगवानदास का छोटा भाई	२४. सांहणी दांणीदास रतनसिंहोत
२५. राठौड़ रामसिंह मोहकमसिंहोत	२६. ऊदावत सूरजमल भीवांत
२७ प्रोहित अखेराज दलपतोत	२८. व्यास पुष्करण द्रोणाचार्य (द्रोणाचारण) नाथावत जगन्नाथोत
२९. राठौड़ प्रतापसिंह पृथ्वीराजोत करमसोत	३०. सोवायत खोजो फरासत
३१. मुहणोत खींवसी	३२. खीची मानकरण
३३. धांधल पृथ्वीराज	३४. गेहलोत हरदास
३५. पड़िहार रतन	

६०. पंचोली १६२ अ; ख्यात-भाग २, २-३; जुनी ६३; दानेश्वर १८३; वाकया ८७।

ख्यात व जुनी के अनुसार बादशाह ने अब्दुल्ला खाँ के साथ केवल पचास सवार भेजे थे। लेकिन जोधपुर में चूंकि उपद्रव हो रहे थे अतः इतने कम सवारों को वहां भेजना ठीक नहीं जान पड़ता। इसी कारण पंचोली द्वारा उल्लिखित संख्या को ही स्वीकार किया गया है।

ने किला देखा। अगले दिन बृहस्पतिवार, २३ जनवरी (फाल्गुन बदि ६) को वह जोधपुर से मेड़ता के लिये चल पड़ा।[६४]

अब्दुल्ला खाँ ने बादशाह को सूचना की कि राजपूत पूरी तरह सुसज्जित हैं तथा उन्होंने साँभर व डीडवाना पर आक्रमण करने की योजना बनाई है। बादशाह को यह भी सूचना मिली थी कि मारवाड़ में बीस हजार राजपूत सैनिक एकत्र हो चुके हैं और उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इधर इफ्तिखार खाँ तथा अब्दुल्ला खाँ ने समाचार भेजा था कि राठौड़ उन्हें अधिकार नहीं सौंप रहे हैं। फलतः बादशाह ने स्वयं अजमेर जाकर स्थिति संभालने का निश्चय किया। सैन्य-संगठन के लिये उसने मुलतान से शाहजादा अकबर, आगरा से शायस्ता खाँ गुजरात से मुहम्मद अली खाँ, तथा उज्जैन से असद खाँ को बुलवाया। खाने जहाँ बहादुर, हसनअली खाँ आदि बड़े-बड़े सरदारों की भी नियुक्ति जोधपुर जाने वाली सेना में की गई। इसी समय जसवन्तसिंह के बड़े भाई अमरसिंह के पोते इन्द्रसिंह को भी दक्षिण से आने की आज्ञा दी गई। २४ जनवरी को औरंगजेब ने दिल्ली से अजमेर के लिये प्रस्थान किया।[६५] उसने मार्ग से ही खाँनेजहाँ बहादुर को अन्य बड़े-बड़े

---

६४. वाक़या (११२-३ व ११५-६) में इस घटना का कुछ भिन्न वर्णन मिलता है। इसमें लिखा है कि केसरीसिंह ने जोधपुर से एक कोस पूर्व ही अब्दुल्ला से वहीं रुकने का अनुरोध किया और कहा कि वह स्वयं जोधपुर जाकर रानी हाड़ी से किला दिखाने के लिये अनुमति लेकर शीघ्र वापस आ जायेगा। लेकिन अब्दुल्ला खाँ ने केसरीसिंह के लौटने की प्रतीक्षा नहीं की और २३ जनवरी (२० जिल्हिज) को आगे बढ़ा। वह केवल आधा ही कोस चल सका था कि राजपूतों ने उसे भगा दिया और वह भागकर लुणवाल नामक स्थान पर आकर रुका। उधर केसरीसिंह ने रानी हाड़ी से अब्दुल्ला खाँ को किला दिखाने की अनुमति प्राप्त कर ली और जोधपुर से वापस लौटा और अब्दुल्ला खाँ को साथ ले गया। अब्दुल्ला खां को केवल चार सैनिकों के साथ किला दिखाया गया। रानी हाड़ी ने उसे खिलअत दी और रात्रि में ही वह लुणवाल लौट आया और अगले दिन २४ जनवरी (२१ जिल्हिज) को वापस चल दिया। परन्तु इस मत की पुष्टि अन्यत्र कहीं नहीं होती अतः इसे स्वीकार नहीं किया गया है।

६५. पंचोली. १६७ अ :

औरंगजेब की यात्रारम्भ करने की तिथि के विषय में विभिन्न इतिहासकारों में मतभेद है। मआसीर-ए-आलमगीरी (मुस्ताद खां १७६) में लिखा है कि बादशाह ने बृहस्पतिवार, ९ जनवरी (६ जिल्हिज) को दिल्ली से अजमेर के लिये प्रस्थान किया था। सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब भाग, ३, ३२६) व डा. गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़ १६६) इत्यादि आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसी तिथि को मान्यता दी है। परन्तु मआसीर-ए-आलमगीरी से स्पष्ट है कि बादशाह ने जोधपुर के शासन के लिये अधिकारियों को नियुक्त करने के उपरान्त दिल्ली से प्रस्थान किया था। अतः उसकी यात्रा १३ जनवरी से पूर्व आरम्भ नहीं हो सकती। इसलिये उक्त तिथि को स्वीकार करना उचित प्रतीत नहीं होता।

सरदारों के साथ ७ फरवरी (६ मुहर्रम १०९० हि०) को मारवाड़ पर अधिकार करने के लिये भेजा। बुधवार १९ फरवरी सन् १६७९ ई० (१८ मुहर्रम, १०९० हि०=चैत्र वदि ४, संवत् १७३६) को औरंगजेब अजमेर पहुँचा। उससे दो दिन पूर्व किशनगढ़ के पड़ाव पर १७ फरवरी (१६ मुहर्रम) को वजीर असद खाँ भी आ पहुँचा था। शुक्रवार, २८ फरवरी (२७ मुहर्रम) को शायस्ता खाँ अजमेर आया और सोमवार, १० मार्च (७ सफ़र) को शाहजादा अकबर भी मुल्तान से चलकर अजमेर आ पहुँचा[६६]।

मुगल सम्राट के ससैन्य आने का समाचार सुनकर भाटी रघुनाथसिंह ने उसके विरुद्ध तैयारी करने के विचार से मेड़ता से लगभग एक हजार सवार जोधपुर भेजे। परन्तु रानी हाड़ी ने उसे शाही आज्ञा में रहने के लिये लिखा और जोधपुर में एकत्रित सेना को भी तितर-बितर कर दिया। होली के अवसर पर अधिकांश राजपूत अपने-अपने घर चले गये, हाडी रानी ने उन्हें भी रोकने का कोई प्रयास नहीं किया। फलस्वरूप जोधपुर में केवल पांच सौ व्यक्ति किले में तथा एक हजार के लगभग शहर में उपस्थित थे[६७]।

राठोड़ सरदारों ने इस समय भी इफ्तिखार खाँ से अपना सम्बन्ध पूर्ववत् रक्खा और वे असद खाँ से भी पत्र-व्यवहार किया करते थे। इफ्तिखार खाँ ने उन्हें सलाह दी कि वे स्वयं बादशाह से मिलकर बातचीत करें। राठोड़ों ने परस्पर विचार विमर्श करके उसकी बात स्वीकार कर ली और राम भाटी तथा राठोड़ नरसिंहदास को इस कार्य के लिये नियुक्त किया। उनके साथ दूदा राजसिंहोत, हरी सांवलदासोत, ऊदावत राजसिंह बलरामोत तथा रूपसिंह व उसके भाई किशनसिंह एवं अन्य दो सौ सवारों को भेजा गया[६८]।

कुछ ही दिन बाद इफ्तिखार खाँ ने राठोड़ों को यह भी बताया कि औरंगजेब केवल उतने समय के लिये जोधपुर का प्रबन्ध करना चाहता है जब तक जसवन्तसिंह की दोनों गर्भवती रानियों में से कोई भी किसी उत्तराधिकारी को जन्म नहीं दे देती। यह जानकर राठोड़ सरदारों ने जोधपुर में शाही अधिकारियों की नियुक्ति के लिये अपनी स्वीकृति दे दी और कुछ समय के लिये इन्द्रसिंह को भी राजा मानना स्वीकार कर लिया। राठोड़ों की स्वीकृति पाकर, इफ्तिखार खाँ ने मंगलवार ११ फरवरी (१० मुहर्रम) को मुहम्मद रहीम कोतवाल तथा मुहम्मद हादी किरोड़ी को जोधपुर

६६. मुस्ताद खां १०७; ख्यात-भाग २, ३; पंचोली १६७ ब; दानेश्वर १८३; रेउ-भाग १, २५१; ओझा-भाग ४, खंड २, ४७९-८०।

६७. वाक़या १०३, १५५-६।

६८. वाक़या १४०, १४९ व १५२; अजितोदय-सर्ग ६, श्लोक ३९-४४; दस्तूर १४२; रेउ-भाग १, २५०।

के लिये विदा किया। पंचोली केसरीसिंह ने इन्हें जोधपुर तक पहुंचाने के लिये कुशलसिंह तथा किशनसिंह को साथ भेजा।[६९]

बादशाह से विदा होकर खानेजहां बहादुर, जब जोधपुर की ओर जा रहा था तो मार्ग में उसे रामभाटी व अन्य राठौड़ सरदार मिले जो बादशाह से मिलने के लिये जा रहे थे। उन्हें दिलासा देकर वह अपने साथ वापस ले आया। ये लोग शुक्रवार, २१ फरवरी (चैत्र वदि ६) को मेड़ता पहुंचे। इफ्तिखार खां ने तीन कोस आगे बढ़कर खानेजहां का स्वागत किया।[७०] मेड़ता से चलकर खानेजहां जोधपुर से सोलह कोस दूर पीपाड़ नामक स्थान पर ठहरा। यहां पर केसरीसिंह, रघुनाथसिंह, तथा राजसिंह आदि उससे मिले। इन्हें उसने भी पूरा आश्वासन दिया कि जसवन्तसिंह की रानियों से कोई यदि पुत्र को जन्म देगी, तो राज्य उन्हें लौटा दिया जायेगा। केवल इस मध्यान्तर के लिये वे शान्तिपूर्वक जोधपुर राज्य पर शाही अधिकार हो जाने दें। राठौड़ सरदार इस बात को कुछ दिन पूर्व इफ्तिखार खां के सम्मुख स्वीकार कर चुके थे; अब उन्होंने जो सेना एकत्र की थी उसे हटा देने का आश्वासन दिया। खानेजहां ने भी खिलअत आदि उपहार देकर उनका सम्मान बढ़ाया। तत्पश्चात जब कोतवाल और किरोड़ी जोधपुर पहुंचे तो राठौड़ों ने उन्हें शान्तिपूर्वक अधिकार सौंप दिया।[७१]

बृहस्पतिवार, २७ फरवरी (चैत्र वदि १२) को राघोदास लाहौर से दो राजकुमारों के जन्म का समाचार लेकर जोधपुर से केवल नौ कोस पूर्व की ओर स्थित पालासणी नामक गांव में खानेजहां व उसके साथ के राठौड़ सरदारों के पास पहुँचा। राठौड़ यह समाचार पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुये। खानेजहां, ताहिर खां तथा

---

६९. वाकया १४४–५; १५१ व १५४।

७०. पंचोली १६७ ब तथा १७१ ब; ख्यात भाग २,३; वाकया १५६–७; दस्तूर १४२; अजितोदय सर्ग ५, श्लोक ४५।

७१. पंचोली १६७ ब; ख्यात भाग २, ३-४; राजरूपक २४–५; जुनी ६३; अजितविलास २०८ अ; दानेश्वर १८४; दस्तूर १४२; वाकया १५७, १६२; रेउ–भाग १, २५०।

ख्यात व जुनी के अनुसार, खानेजहां ने कुरान पर हाथ रखकर शपथ खाई थी कि जब जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी का जन्म हो जायेगा तो जोधपुर राज्य वापस दे दिया जायेगा। राजरूपक के अनुसार खानेजहां ने इसी आशय का बादशाह के पंजे का फरमान राठौड़ों को दिखाया था। मूंदियाड़ (१७४-५) के अनुसार राठौड़ सरदार बादशाह से मिले थे और उसने स्वयं उक्त आश्वासन दिया था। परन्तु इन तथ्यों की सत्यता संदिग्ध है।

वाकया १६२ ।

राठौड़ सरदारों ने रायोदास को इस शुभ समाचार लाने के उपलक्ष्य में बहुमूल्य उपहार दिये।[७२]

औरंगजेब को अजमेर में ही बुधवार, २६ फरवरी (२५ मुहर्रम=चैत्र बदि ११) को जोधपुर राज्य के वकील ने सूचना दी कि स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिंह की दो रानियों ने लाहौर पहुँच कर कुछ घड़ी के अन्तर से एक-एक पुत्र को जन्म दिया है।[७३]

औरंगजेब को ख्वाजा फरासत ने ही सम्भवतः यह बताया था कि जसवन्तसिंह की सम्पत्ति जोधपुर व सिवाना के किले में है। जब जोधपुर के किले से कुछ प्राप्त न हो सका, तब उसने खिदमतगुजार खाँ को सिवाना का किलेदार नियुक्त किया और उसे महाराजा की सम्पत्ति का पता लगाने की आज्ञा दी। खिदमतगुजार खाँ शनिवार, १ मार्च (२८ मुहर्रम) को सिवाना पहुँचा, परन्तु उसे वहां केवल थोड़े से पुराने वस्त्र व साधारण वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ भी न मिला। बादशाह को इससे सन्तोष न हुआ। उसे सन्देह था कि राठौड़ों ने जसवन्तसिंह की सम्पत्ति को कहीं

---

७२. पंचोली १६८ अ, १७० ब, १७१ अ; ख्यात-भाग २,४; जुनी ६३-४; अजितोदय सर्ग ६, श्लोक १८-२०; दानेश्वर-१८४; आसोपा २३६।

अजितोदय (सर्ग ६, श्लोक १८–९) में लिखा है कि रायोदास पीपाड़ नामक गांव में खानेजहां व राठौड़ सरदारों से मिला था। परन्तु पीपाड़ जोधपुर से लगभग सोलह कोस दूर है। चूंकि खांनेजहां को बादशाह से विदा हुए लगभग बीस दिन हो गये थे अतः यह स्वीकार करना अधिक उचित जान पड़ता है कि वह जोधपुर के समीप पहुँच चुका था।

पंचोली ने शाही अधिकारियों तथा राठौड़ सरदारों द्वारा रायोदास को भेंट देने का वर्णन इस प्रकार किया है:—

नवाब बहादर खां १ मोहर बादलाई पाग	रा/मोहण	—१ ऊंट
ताहर बेग २ पावंडी ७ रुपये	अणदसिंह भीवसिंहोत	—१ ऊंट
महल से ६० रुपये २ पांवडी	तेजकरण दुर्गादासोत	—१ ऊंट
पं/किसरीसिंह २० रुपये १ मोहर १ ऊंट	ऊहड़ भगवानदासोत	—१ ऊंट
मं/रुघनाथ १०० रुपये १ ऊंट	साँहणी दाणीदास	—१ ऊंट
भाटी राम जी ३०० रुपये सोने की सांकल	बखतसिंह	—१ ऊंट
उदैसिंह चांपावत ३०० रुपये	नरसिंहदास	—१ ऊंट
मीया फरासत १० रुपये २ पाग	रा/रूपसिंह, ऊदावत प्रागदासोत,	
रा/संग्रामसिंह चांपावत १ घोड़ा	झालो भावसिंह, राठौड़ रायसिंह.	
	राठौड़ दूदो ने भी बधाइयां दी।	

जोधपुर राज्य की ख्यात एवं जुनी बही में भी थोड़े बहुत अन्तर के साथ ऐसा ही विवरण मिलता है। अजितोदय में लिखा है कि खाने जहां ने पचास मुहरें, कपड़ा व गहना भेंट दिया था। परन्तु इससे प्रमुख तथ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

७३. मुआसिर आलमगीरी १०३; फुतूहात ७३ ब; ख्यात-भाग २, ५; दानेश्वर-१८४; सरकार-भाग ३, ३६७; रेउ भाग १, २५१; ओझा भाग ४, खंड २, ४८०।

छिपा दिया है । अतः उसने रविवार ६ मार्च (६ सफर) को सैयद अब्दुल्ला खाँ को पुनः सिवाना जाकर वहाँ के किले की नींवें, नई इमारत व जमीन खोदकर महाराजा की सम्पत्ति का पता लगाने की आज्ञा दी । इस कार्य के लिए उसके साथ मुहम्मद अली खाँ नामक राजगीर को भी भेजा गया ।[७४]

इसी बीच ५ मार्च (चैत्र सुदि ३) को लाहौर में उपस्थित राठौड़ सरदारों के लिए एक हस्बुलहुक्म भेजा गया, जिसमें बादशाह ने उन लोगों को सूचित किया कि औरंगजेब स्वयं दिल्ली वापस जा रहा है अतः वे लोग राजकुमारों को लेकर वहीं आवें । दिल्ली में ही राजकुमार को पद, मनसब व राज्य दिया जायेगा ।[७५] जब बादशाह अजमेर से दिल्ली के लिए रवाना होने लगा, उस समय शायस्ता खाँ ने यह प्रस्ताव रखा कि राठौड़ों के नियन्त्रण के लिये अजमेर में किसी उच्चाधिकारी को नियुक्त करना आवश्यक है । उसकी बात स्वीकार करके औरंगजेब ने खानिजहाँ बहादुर को जोधपुर से लौटने पर अजमेर में ही ठहरने की आज्ञा दी । सोमवार, १० मार्च (७ सफर चैत्र सुदि ६) को औरंगजेब ने दिल्ली की ओर कूच किया । प्रथम पड़ाव से ही शायस्ता खाँ को आगरे की सूबेदारी पर भेज दिया गया ।[७६] मार्ग में मंगलवार, १८ मार्च (वैशाख वदि १) को शाही आज्ञानुसार इन्द्रसिंह दक्षिण से आ पहुँचा और उसने बादशाह को एक सौ मुहर तथा एक हजार रुपया भेंट दिया और बुधवार, २ अप्रेल (१ रबी उलअव्वल वैशाख सुदि २) को वह शाही लश्कर के साथ दिल्ली पहुँचा ।[७७] इसी दिन बादशाह ने मारवाड़ में जजिया कर लगाने की घोषणा की ।[७८]

---

७४. अखबारात, लन्दन संग्रह भाग १, २८५-६; वाकया १५६; सरकार भाग ३, ३२७ ।

मुस्ताद खाँ (१०७) ने अब्दुल्ला खाँ की नियुक्ति की तिथि १० मार्च (७ सफर) स्वीकार की है । रेउ (भाग १,२५१) ने भी इसी तिथि का समर्थन किया है । परन्तु शाही कर्मचारियों की नियुक्ति के विषय में चूंकि अखबारात पूरा-पूरा विवरण देते हैं अतः अखबारात में उल्लिखित तिथि को ही स्वीकार किया गया है ।

७५. पीछे देखिये पृ. ।

७६. मुस्ताद खाँ १०८; पंचोली १७२ अ; ख्यात भाग २, ६; दानेश्वर १८४; जुनी ६४; फुतूहात ७४ ब; राजरूपक २५; अजितोदय सर्ग ६, श्लोक ५२; अजितविलास २०८ ब; ओझा भाग ४, खंड २, ४८१ ।

७७. पंचोली १७३ अ; ख्यात भाग २, ६ व २२; राजरूपक २५-६; मुस्ताद खाँ १०८; सरकार भाग ३, ३२८; ओझा भाग ४ खंड २, ४८३; रतलाम २२३ ।

इन्द्रसिंह किस स्थान पर बादशाह से मिला, यह कहना कठिन है । पंचोली ने इस स्थान का नाम रामसर स्वीकार किया है तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में किशनगढ़ का उल्लेख है । आसोपा ने लिखा है कि इन्द्रसिंह मनोहरपुर के पास सीकर में इन्द्रसिंह से मिला था । फारुकी के अनुसार औरंगजेब ११ अप्रेल को दिल्ली पहुँचा था, जो ठीक नहीं है ।

७८. मुस्ताद खाँ १०८; फुतूहात ७४ ब; दानेश्वर १८८; सरकार भाग ३; ३२८; रतलाम २२२; पूर्व १४१; उमराए १६; रेउ भाग १, २५१ ।

यह कहना कठिन है कि जजिया के सम्बन्ध में औरंगजेब की निश्चित आज्ञा क्या थी और उसने किस-किस प्रदेश में जजिया लगाया था। मआसीर-ए-आलमगीरी में लिखा है कि बादशाह ने यह आज्ञा दी कि राजधानी और प्रान्तों की गैर मुस्लिम जनता पर जजिया लगाया जाय। इससे ऐसा प्रतीत होता है, कि जजिया सम्पूर्ण साम्राज्य में लगाया गया था। परन्तु अन्य प्रान्तों में तो क्या, शेष राजपूत राज्यों में भी जजिया वसूला गया हो इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। यदि अन्य राजपूत राज्यों में भी यह करारोपण किया गया होता तो वहाँ विरोध अवश्य होता, परन्तु ऐसा संकेत तत्कालीन इतिहास में कहीं नहीं मिलता। आम्बेर व बीकानेर तथा अन्य राज्यों के शासक पूर्ववत् शाही सेवा में रत रहे। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि या तो बादशाह ने केवल सैद्धान्तिक रूप से सम्पूर्ण साम्राज्य में जजिया लगाया था और उसका व्यावहारिक पालन पहले केवल मारवाड़ में और बाद में मेवाड़ में किया गया। अथवा यह भी सम्भव है, कि मारवाड़ के राठोड़ों के विरोधी आचरण तथा उन्हें दबाने और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए भेजी गई सेना के व्यय को पूरा करने के लिए औरंगजेब ने केवल मारवाड़ में ही जजिया लगाया हो और बाद में जब मेवाड़ ने भी युद्ध में प्रवेश किया और वहाँ भी सेनाएँ भेजनी पड़ीं तो वहाँ भी कर लगा दिया गया।

उधर खानेजहाँ बहादुर अपने चार हजार मुगल सैनिकों को लिए हुए पंचोली केसरीसिंह, भाटी रघुनाथसिंह, राठोड़ नरसिंहदास, राठोड़ राजसिंह तथा ख्वाजा-फरासत के साथ ३ मार्च (चैत्र सुदि १) को जोधपुर पहुँचा और रातानाडा में रुका।[७९] विट्ठलदास का पुत्र चांपावत सोनग खानेजहाँ को जोधपुर का अधिकार सौंपने के पक्ष में नहीं था; अतः वह खानेजहाँ के स्वागतार्थ उपस्थित नहीं हुआ। राठोड़ों ने अत्यन्त अनुनय-विनय से उसकी सहमति प्राप्त की। इतने पर भी जब वह खानेजहाँ से मिला तो उसने उद्दंडता का व्यवहार किया।[८०]

बुधवार, ५ मार्च (चैत्र सुदि ३) को खानेजहाँ बहादुर ने ताहिर खाँ तथा शाही वाक़ानवीस को रामभाटी तथा केसरीसिंह के साथ जोधपुर के किले में भेज दिया। इनके साथ ही रानियों के लिए बादशाह द्वारा भेजे गए तीन सिरोपाव तथा

---

७९. पंचोली १७१ अ व १७२ अ; ख्यात भाग २, ५; जुनी ६३; दस्तूर १४२; अजितोदय सर्ग ६ श्लोक २१; रेउ भाग १, २५०; आसोपा २३६।

अजितोदय के अनुसार खानेजहाँ ने शेखावत के तालाब पर पड़ाव डाला था। रेऊ ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। परन्तु चूँकि अन्य सभी आधार ग्रन्थ रातानाडा में खानेजहाँ के रुकने का उल्लेख करते है, अतः उसे ही स्वीकार किया गया है।

८०. अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक २२ ४२; रेउ भाग १, २५०।

अपनी ओर से महाराजा के सम्बन्धियों के लिए छः तोड़े भेजे। रानी हाडी ने भी इन लोगों के साथ अत्यन्त उदारता का व्यवहार किया।

ताहिर खाँ ने जोधपुर के किले में पहुँचकर वहाँ की सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। उसे वहाँ २१,००० रुपया नकद, २७ तोपें, २००० लोहे के गोले, २००० पत्थर के गोले, ३२ बन्दूकें, धनुष-बाण, महाराजा के गहनों का एक सन्दूक, आदि वस्तुऐं मिलीं। सिन्दूर खाँ ने भण्डार–घर पर शाही मुहर लगा दी।[८१]

रविवार, ६ मार्च (चैत्रसुदि ८) को खाँनेजहाँ बहादुरगढ़ में रुका। उसने बल पूर्वक मुगल शासनाधिकार स्थापित करने के विचार से जोधपुर के कई मन्दिर तुड़वाये। शहर के बाहर पहरेदार नियुक्त किए गये, ताकि बिना आज्ञा के कोई भी व्यक्ति शहर में प्रवेश न कर सके। उसने शहर में मादक वस्तुएँ—विशेषकर भांग व मदिरा-पीने की मनाही कर दी तथा पूरे प्रदेश में चुंगी की दर तथा तोल में एकता स्थापित की। चुंगी की दर दो पैसा प्रति रुपया निश्चित हुई तथा बयालीस पैसों के तौल का एक सेर निश्चित किया गया। ताहिर खां को जोधपुर की फौजदारी व दीवानी दी गई तथा शहर की सुरक्षा के लिए अब्दुर्रहीम को कोतवाल नियुक्त किया गया। अबुल कासिम शुजाई जोधपुर का किरोड़ी तथा शेख अनवर वहाँ का अमीन बनाया गया। कुछ ही दिन बाद जोधपुर की अमीनी भी ताहिर खां को ही सौंप दी गई। इस आशय का फरमान १७ मार्च (१४ सफर) को मुहम्मद आकिल खाँ लेकर आया था। दीनदार खां कायमखानी वाकानवीस तथा हामिद खां काजी नियुक्त हुआ। फलोदी में तीन सौ सवार व एक किरोड़ी तथा पोकरण में दो सौ सवार व एक किरोड़ी भेजा गया। सिवाना के लिए गूजर खां को तीन सौ सवारों के साथ नियुक्त किया गया और सोजत व जैतारण पर भी शाही अधिकार कर लिया गया।

---

८१. ख्यात भाग २, ५–६; जुनी ६४; पंचोली १७१ ब; वाकया १६२, १६५ व १६६; आसोपा २३६।

पंचोली (१७० ब) ने २५ फरवरी (चैत्र वदि १०) को ताहिर खाँ को जोधपुर के किले की ओर भेजना स्वीकार किया है। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जब राजकुमार के जन्म का समाचार लेकर २७ फरवरी (चैत्र वदि १२) को रावीदास आया था, तब ताहिर खाँ खानेजहाँ के साथ ही था।

जोधपुर के किले से प्राप्त हुई वस्तुओं के विषय में विभिन्न ग्रन्थों में [illegible] अन्तर है।

सहयोग दे।[८३] रविवार, १६ मार्च (चैत्र सुदि १४) को लगभग एक हजार सवारों के साथ वह तलहटी के महलों में आ गया। जोधपुरमें राठौड़ सोनग, भाटी राम, झाला-भावासिंह, राठौड़ सूरजमल, राठौड़ प्रतापसिंह, राठौड़ वाघ, राठौड़ सबलसिंह दलपतोत, राठौड़ सबलसिंह खानावत, भंडारी जीवराज, सिंघवी दीपमल आदि प्रमुख राठौड़ सरदारों ने उसकी सहायता करना स्वीकार किया। शासन की सुविधा की दृष्टि से ताहिर खां ने कई नियुक्तियां कीं। जवाहिरमल को उसने अपनी ओर से जोधपुर का फौजदार और मुहम्मद मुहसिन को वागों का दारोगा नियुक्त किया। किले के पूर्वी भाग की मुन्शीगीरी आनन्दरूप को सौंपी गई। राठौड़ सुजानसिंह ने शाही सेवा स्वीकार कर ली थी, अतः उसे जालोर तथा उसके भाई रामसिंह को सांचोर का अधिकार सौंपा गया। अब्दुल हादी को सिवाना का किरोड़ी और सूरतसिंह को वहां का तहसीलदार नियुक्त किया गया। ताहिर खाँ ने शाही प्रभुत्व को प्रदर्शित करने के लिए जोधपुर तथा मेड़ता परगने के कई मन्दिरों को तोड़ा और कुछ मन्दिरों के मार्ग बन्द करवा दिए। इसके अतिरिक्त उसने जोधपुर में कुछ नई मस्जिदें भी बनवाईं। इस प्रकार जोधपुर में पूर्णरूप से शाही अधिकार हो गया।[८४]

औरंगजेब ने अब्दुल्ला खाँ को सिवाना जाकर जसवन्तसिंह की सम्पत्ति की खोज करने की आज्ञा ६ मार्च (६ सफर) को दी थी, अतः वह बुधवार, २६ मार्च

---

८३. वाकया १७१-२।

पंचोली (१७२ ब) के अनुसार ताहिर खाँ १६ मार्च (चैत्र सुदि १४) को रानी से मिला था।

वाकया (१७१-२) में लिखा है कि ताहिर खाँ जब रानी से मिला तो उसने उसे परामर्श दिया कि वह बादशाह को प्रसन्न करने के लिये मन्दिर तुड़वाये। राठौड़ सरदार यह सुनकर क्रोधित हो उठे, परन्तु रानी ने शांतिपूर्वक उत्तर दिया कि यदि बादशाह नवजात शिशु को राज्य देना स्वीकार कर ले तो वह इस बात को भी मानने के लिये तैयार है। ताहिर खाँ ने उसे आश्वासन दिया कि वह उसकी माँग के विषय में खाँनेजहाँ को लिखेगा। यह कहना कठिन है कि उक्त कथन में सत्य का अंश कितना है। परन्तु साधारण रूप से किसी राजपूत रानी से इस प्रकार के उत्तर की आशा नहीं की जा सकती। सम्भव है ताहिर खाँ ने इस प्रकार की सूचना अजमेर में केवल यह प्रदर्शित करने के लिये भेजी हो कि वह जोधपुर में शाही प्रभुत्व स्थापित करने में सफल रहा है और रानी हाड़ी भी उसकी बात को मानने के लिये तत्पर है।

८४. वाकया १६७, १७५, १८२, १६०, २०६-१०, व २१६।

दस्तूर (१६७) में ताहिर खाँ द्वारा श्री संतनाथ जी, श्री मनसोव्रत जी, श्री पारसनाथ जी, श्री महावीर जी और श्री सीसीभुनाथु जी के मन्दिरों को तोड़ने का उल्लेख मिलता है। परन्तु इसमें इन मन्दिरों को तोड़ने की तिथि दिसम्बर सन् १६८० ई. व जनवरी सन् १६८१ ई. बताई गई है जो ठीक नहीं है। ताहिर खाँ इस समय से पूर्व ही जोधपुर की फौजदारी से हटाकर सोजत जैतारण में नियुक्त कर दिया गया था (वाकया २४७ व २७६)।

(वैशाख वदि ९=२३ सफर) को जोधपुर से चलकर मंगलवार, १ अप्रेल (२९ सफर) को सिवाना पहुँचा। अगले दिन (२ अप्रैल=१ रबीउलअव्वल) मुहम्मद आकिल, ख्वाजा, अकबर तथा खिदमतगुजार खाँ को साथ लेकर उसने किले का निरीक्षण किया; परन्तु उसे वहां कोई खजाना न मिला। शनिवार, ५ अप्रैल (४ रबीउलअव्वल) को वह सिवाना से वापस जोधपुर के लिये चल पड़ा। इन्हीं दिनों औरंगजेब ने खिदमतगुजार खां के स्थान पर अबूतालिब को सिवाना की किलेदारी पर नियुक्त किया। वह बुधवार, ९ अप्रैल (८ रबीउलअव्वल) को जोधपुर से चलकर सोमवार, १४ अप्रैल (१३ रबीउलअव्वल) को सिवाना पहुँचा, जहाँ खिदमतगुजार खाँ ने अगले दिन मंगलवार, १५ अप्रैल (१४ रबीउलअव्वल) को उसे समस्त अधिकार सौंप दिये।[८५]

उधर खानेजहाँ बहादुर राठौड़ सरदारों को लिए हुए अजमेर पहुँचा। वहाँ जब उसे यह विदित हुआ कि औरंगज़ेब ने उसे अजमेर में ही रहने का आदेश दिया है तो उसने राठौड़ों के सम्मुख अपनी लाचारी प्रकट करते हुए यह, प्रस्ताव रक्खा कि वे लोग उसके पुत्र नौशेर खाँ के साथ दिल्ली चले जाएं। राठौड़ों ने उसकी बात मान ली[८६] और सोमवार, २४ मार्च (वैशाख वदि ७) को नौशेर खाँ के साथ वे दिल्ली के लिए रवाना हुए। इस दल में छियासठ राठौड़ सरदार थे। बृहस्पतिवार, २७ मार्च (वैशाख वदि १०) को यह दल सांभर पहुँचा और एक महीने की यात्रा के बाद मंगलवार ८ अप्रेल (वैशाख सुदि ८) को दिल्ली पहुँचा।[८७] उनके पहुँचने

---

८५. वाकया १९४ व १९९; पंचोली १७३ ब।

८६. ख्यात भाग २, ६-७; पंचोली १७२ ब १७३ अ ब; जुनी ६४; दानेश्वर १८४; ओझा भाग ४, खंड २, ४८०।

फुतूहात (७५ अ) में लिखा है कि खानेजहाँ स्वयं ही राठौड़ों को लेकर दिल्ली गया था। रेऊ (भाग १, २५२) ने भी इस मत का समर्थन किया है। परन्तु यह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि खानेजहाँ इस राठौड़ दल के लगभग डेढ़ महीने बाद २५ मई को दिल्ली पहुँचा था। (मुस्ताद खाँ १०८)।

८७. पंचोली १७२ ब व १७३ ब; ख्यात भाग २, ७ व २२; जुनी ६४; दानेश्वर १८५; ओझा भाग ४, खंड २, ४८०; आसोपा २४०।

जोधपुर से दिल्ली जाने वाले राठौड़ों की संख्या में विभिन्न ग्रन्थों में भिन्नता है। पंचोली ने इनकी संख्या पांच-छः सौ बताई है और जुनी बही में लिखा है कि केवल पचास राठौड़ दिल्ली गये थे। चूँकि ख्यात में राठौड़ों की निश्चित संख्या दी गई है और इनके नाम भी वर्णित हैं, अतः ख्यात की संख्या को ही स्वीकार किया गया है।

ख्यात एवं जुनी में अजमेर से राठौड़ों के प्रस्थान करने की तिथि वैशाख वदि के स्थान पर वैशाख सुदि लिखी गई है जो स्पष्ट ही लिपिक की भूल है। इसी प्रकार दिल्ली पहुँचने की तिथि में भी एक दिन का अन्तर है। ये ग्रन्थ इस दल का ७ अप्रैल (वैशाख सुदि ७) को दिल्ली पहुँचना लिखते हैं। परन्तु चूँकि पंचोली ने अजमेर से प्रस्थान करने तथा सांभर में पड़ाव करने की निश्चित तिथि एवं दिन का उल्लेख किया है, अतः उसकी तिथियों को ही मान्यता दी गई है।

से तीन ही दिन पूर्व ५ अप्रैल (वैशाख सुदि ४) को लाहौर, से राजपरिवार, को साथ लेकर राठौड़ सरदार राजधानी में पहुँच चुके थे।[८८]

जमरूद एवं जोधपुर से आए राठौड़ सरदार औरंगजेब से स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारियों के लिए मान्यता प्राप्त करने के लिए एकत्रित हुए थे। सोमवार, १३ अप्रैल (वैशाख सुदि १३) को ताहिर खां के साथ जोधपुर से आए हुए राठौड़ सरदार बादशाह से मिले और अगले दिन मंगलवार, १४ अप्रैल (वैशाख सुदि १४) को वे सभी एक साथ औरंगजेब के पास गए। इनके नेता राठौड़ रणछोड़दास तथा राठौड़ सुरजमल को दरबार-ए-आम में बुलाया गया। इन्होंने बादशाह से प्रार्थना की कि महाराजकुमार अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य प्रदान कर दिया जाए। औरंगजेब ने इन्हें सिरोपाव दिया और सांत्वना दी कि वह उनकी प्रार्थना पर विचार करेगा।[८९]

राठौड़ सरदार दिल्ली में ही रहकर बादशाह की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। इन्होंने वजीर असद खां तथा बख्शी सरबुलन्द खां से भी बार-बार मिलकर सहायता की प्रार्थना की। इनके अतिरिक्त काबुली खां, इनायत खां तथा रोहिल्ला खां आदि विभिन्न शाही अधिकारियों से भी मिलकर इन्होंने अपना अभीष्ट सिद्ध करने की चेष्टा की।

कुछ दिन उपरान्त बादशाह ने असद खां तथा सरबुलन्द खां के द्वारा यह सन्देश भेजा कि वह सोजत व जैतारण के परगने देने के लिए इस शर्त पर तैयार है कि इसके बदले में वे पांच सौ सवार मुगल सेवा में भेजें। उसने इस बात का भी आश्वासन दिया कि अन्य प्रमुख सरदारों को भी मनसब और जागीर दिया जाएगा। परन्तु उसका यह प्रस्ताव राठौड़ों को रुचिकर न लगा।[९०]

---

८८. पीछे देखिये।

८९. मुस्ताद खां १०६; पंचोली १३४ अ; ख्यात भाग २, ६६; मूंदियाड़ १७५; राजरूपक २७; दानेश्वर १८६; फतेहचन्द १; अजितविलास २०८ ब; आसोपा २१७।

९०. पंचोली १३४ ब; ख्यात भाग २, ६६; ओझा भाग ४, खंड २, ४८१; आसोपा २१७-८।

अजितोदय (सर्ग ६, ५६-६२) एवं सूरजप्रकाश (भाग २, २५) में लिखा है कि जब राठौड़ों ने औरंगजेब से प्रार्थना की कि वह महाराजकुमार अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य दे दे तो बादशाह ने उनसे कहा कि वे जसवन्तसिंह के पुत्रों को उसे सौंप दें। उनका पालन-पोषण उसके संरक्षण में किया जायेगा और महाराजकुमार के बालिग हो जाने पर उन्हें राज्य दे दिया जायेगा। इसके साथ ही उसने राठौड़ सरदारों को जागीरें एवं मनसब देने का भी आश्वासन दिया। टॉड (भाग २,४४) सरकार (भाग ३, ३२६-३०) व रेउ (भाग १,२५२) ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है। परन्तु बादशाह ने इस समय नहीं, वरन् कुछ दिनों बाद राठौड़ों के विद्रोही आचरण की सूचना पाकर राजकुमारों को बुलाया था। (अध्याय ३)।

समकालीन इतिहासकारों में केवल भीमसेन बुरहानपुरी ने लिखा है कि औरंगजेब ने राठौड़ों से कहा था कि यदि राजकुमार इस्लाम स्वीकार कर लें तो वह उन्हें जोधपुर का राज्य वापस देने के लिये तैयार है। (दिलकुशा भाग १,१६४) सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब भाग ३,३३०); डा० गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़ १६६-७) तथा डा० रघुवीरसिंह (पूर्व. १४१) ने इसी मत को स्वीकार किया है।

सूरजप्रकाश (२५) में लिखा है कि राठौड़ों ने बादशाह की बात सुनकर भरे दरबार में उसका अपमान किया। परन्तु यह सम्भव नहीं है और केवल कवि के मस्तिष्क की उपज ही प्रतीत होता है।

औरंगजेब को अभी तक जसवन्तसिंह की सम्पत्ति का पूरा-पूरा हिसाब नहीं मिला था। उसने फिर राठोड़ सरदारों से जसवन्तसिंह की व्यक्तिगत सम्पत्ति की माँग की। फलस्वरूप पंचोली केसरीसिंह तथा भण्डारी रघुनाथसिंह ने हाथी, घोड़े, ऊँट, तोप, धनुष व बची खुची सम्पत्ति उसे सौंप दी। लेकिन बादशाह इससे सन्तुष्ट न हुआ। इन्हीं दिनों सिघवी सुन्दरदास नामक एक व्यक्ति इन्द्रसिंह के माध्यम से बादशाह से मिला और उसने बताया कि राठौड़ों के पास काफी धन है, जिसे उन्होंने छिपा रक्खा है, और वे आसानी से उसे नहीं देंगे एक बार पहले भी ख्वाजा फरासत से उसे ऐसी ही सूचना मिली थी। हाडी रानी ने भी अपने एक पत्र में पहले लिखा था कि महाराजा की सम्पत्ति के विषय में केसरीसिंह, जीवराज भंडारी व ख्वाजा फरासत को सब कुछ ज्ञात है। पुन: मार्च के महीने में जब खाँनेजहाँ बहादुर ने जोधपुर के किले का निरीक्षण किया तो वहाँ दो कमरों में ताले लगे थे, जिसके विषय में केसरीसिंह ने केवल यह कह कर टाल दिया कि इन कमरों में रक्खी हुई वस्तुओं की सूची दे दी गई है।[६१]

इन परिस्थितियों में बादशाह को सम्पत्ति के विषय में सन्देह होना स्वाभाविक था। उसने राठौड़ों पर दबाव डाला और आज्ञा दी कि सभी राठौड़ सरदार उससे मिलें और जसवन्तसिंह की सम्पत्ति का पूरा विवरण दें। राठौड़ सरदार औरंगजेब को सन्तुष्ट न कर सके। जसवन्तसिंह के धन का ठीक-ठीक हिसाब नहीं दिया जा सका। अन्त में पंचोली केसरीसिंह ने सम्पत्ति के विवरण देने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया। परन्तु वह बादशाह को सन्तुष्ट न कर सका, इसलिये उसे मंगलवार, ६ मई (प्रथम ज्येष्ठ सुदि ७) को बन्दी बना लिया गया। इस मान-हानि से इतना गहरा धक्का लगा कि २५ दिन बाद शनिवार, ३१ मई, (द्वितीय ज्येष्ठ सुदि २) को उसने विष खाकर आत्महत्या करली।[६२]

६१. ख्यात-भाग २,२४; राजरूपक २८-९; मूंदियाड १७५; दानेश्वर १८९; रेउ भाग १, २५२।

अजितोदय-(सर्ग ६, श्लोक ५३) के अनुसार इन्द्रसिंह ने स्वयं ही बादशाह को सूचित किया था कि राठौडो के पास महाराजा की बहुत सी सम्पत्ति है। राजरूपक (२८-९) में लिखा है कि औरंगजेब ने स्वयं ही अनुमान लगाया कि महाराजा की काफी सम्पत्ति सरदारों के पास होगी। परन्तु यह मत अधिक तर्क सम्मत नहीं जान पड़ते। वाकया. १६४ व १६६: पीछे दि. ६७।

६२. पंचोली. १७४ अ; ख्यात-भाग २,२४-५; मूंदियाड़ १७५; जुर्नी ६४; राजरूपक २८; दानेश्वर १९०; अजितविलास २०८ ब; वार्ता ३३ व ३४ अ; रेउ भाग १,२५२; ओझा भाग ४, खंड २, ४८२; मूल १९३।

अजितोदय में इस घटना का कुछ भिन्न विवरण मिलता है। उसमें लिखा है कि बादशाह ने केसरीसिंह को मनसब देने का लालच देकर महाराजा की सम्पत्ति माँगी। केसरीसिंह ने उसे बताया कि जसवंतसिंह के पास सम्पत्ति थी ही नहीं, जितना भी धन उसने अपने जीवन काल में एकत्र किया था उसे अपनी सेना बढाने में लगा दिया था। औरंगजेब को इस पर विश्वास नहीं हुआ और उसने केसरीसिंह को कैद कर लिया। कुछ दिन बाद उसने राठोड सरदारों को आज्ञा दी कि वे स्वर्गीय महाराजा के परिवार को सलेमकोट में भेज दें। जब यह समाचार कैद में केसरीसिंह को मिला तो उसने अन्न-जल त्याग कर आत्महत्या कर ली (सर्ग ६ श्लोक ६९-४ व ६७)।

राठौड़ सरदारों ने अब खांनेजहां बहादुर की सहायता लेने का प्रयत्न किया और उसे लिखा कि तुमने राजकुमारों के जन्म होने पर बादशाह से जोधपुर दिलाने का वचन दिया था; परन्तु बादशाह अब जोधपुर नहीं दे रहा है। खांनेजहां यह पत्र पाकर उद्विग्न हो उठा। उसने तत्काल बादशाह को एक प्रार्थना पत्र लिखा कि मैंने शाही आज्ञानुसार राठौड़ों को वचन दिया था कि राजकुमारों का जन्म होने पर उन्हें जोधपुर वापस दे दिया जायेगा; परन्तु अब उसका पालन नहीं हो रहा है। यदि आज्ञा हो तो मैं आपके पास आऊं और स्थिति स्पष्ट करूं। इसके साथ ही खांनेजहां ने राठौड़ सरदारों को भी एक पत्र लिखा और आश्वासन दिया कि वह स्वयं दिल्ली आकर उनकी ओर से औरंगजेब से प्रार्थना करेगा। यह पत्र राठौड़ों को रविवार, १८ मई (द्वितीय ज्येष्ठ वदि ३) को मिला।

बादशाह ने काबुली खां की सलाह ली और खांनेजहां को यह आज्ञा दी कि वह अकेले दिल्ली आ जाय। अतएव खांनेजहां रविवार, २५ मई (ज्येष्ठ वदि ११=२४ रबी उस्सानी) को दिल्ली पहुँचा और दरबार में पहुँच कर उसने प्रार्थना की कि जोधपुर का परगना राजकुमार को दे दिया जाय। परन्तु उसकी यह प्रार्थना स्वीकार नहीं की गई।[६३] इन्हीं दिनों बीकानेर के शासक राजा अनूपसिंह तथा

---

६३. पंचोली १७४ अ; ख्यात भाग २, २३-४; मुस्ताद खां १०८; फुतूहात ७५ अ; रेउ भाग १, २५१-२; ओझा-भाग ४, खंड २, ४८१, रतलाम २२३ आसोपा २१८।

फुतूहात (७५ अ) में लिखा है कि खांनेजहां बहादुर शाही आज्ञा के बिना ही राठौड़ सरदारों को लेकर बादशाह से गुसलखाने में मिला और राठौड़ सरदारों के अपराध क्षमा करने और राजकुमारों को राज्य देने की प्रार्थना की। उसकी इस उद्दंडता पर बादशाह ने कुपित होकर उसका मनसब व उसकी जागीर जब्त करली थी। परन्तु किसी शाही अधिकारी द्वारा इस प्रकार का दुस्साहस करना समीचीन नहीं जान पड़ता, न ही इसकी पुष्टि किसी अन्य ग्रन्थ से होती है। कुछ दिन पूर्व जून सन् १६७८ ई० में जब खांनेजहां दक्षिण की सूबेदारी से हटाये जाने पर दिल्ली लौटा था, तब औरंगजेब ने उसका मनसब व उसकी जागीर जब्त की थी (मुस्ताद खां १०४)।

फुतूहात-ए-आलमगीरी के विपरीत मआसीर-ए-आलमगीरी (मुस्ताद खां १०८-९); मआसिर-उल-उमरा (७८९); राठौड़ दानेश्वर ग्रन्थ मुक्तावली (१८८); औरंगजेब नामा (देवीप्रसाद ८३) तथा हिस्ट्री आव औरंगजेब (सरकार भाग ३, ३२८) में खांनेजहां का अपने साथ गाड़िया भर कर सोने चांदी, पीतल, तांबा, तथा पत्थर की मूर्तियां लाने का उल्लेख मिलता है। इन ग्रन्थों के अनुसार बादशाह ने प्रसन्न होकर इन ध्वंसावशेषों को जलूखाने तथा जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंकने की आज्ञा दी।

रतलाम के शासक राजा रामसिंह ने भी अपने-अपने वकीलों के द्वारा बादशाह से प्रार्थना की कि जोधपुर का परगना राजकुमारों को दे दिया जाय।[६४]

परन्तु औरंगजेब ने इन लोगों की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया। जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद जोधपुर में जो अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी और राठौड़ सरदारों ने जिस प्रकार उपद्रव प्रारम्भ किया था, उसको तत्काल दबाना और जोधपुर में तुरन्त शान्तिपूर्ण व्यवस्था स्थापित करना आवश्यक था। न तो स्वर्गीय महाराजा जसवन्तसिंह की किसी रानी में ही यह योग्यता थी और न कोई ऐसा योग्य राठौड़ सरदार ही था जो उत्तराधिकार की समस्या का समाधान होने तक वहाँ शान्ति और व्यवस्था स्थापित कर सकता। ऐसी परिस्थिति में औरंगजेब ने जोधपुर के राजघराने के निकटतम सम्बन्धी इन्द्रसिंह को ही राज्य सौंपना उचित समझा। सोमवार, २६ मई (द्वितीय ज्येष्ठ बदि १२=२५ रबीउस्सानी) को जोधपुर का राज्य अमरसिंह के पोते तथा रायसिंह के पुत्र इन्द्रसिंह, को सौंप दिया गया। इस अवसर पर उसे राजा की उपाधि, खिलअत खासा जड़ाऊ साज की तलवार, सोने के साज युक्त घोड़ा, हाथी, झंडा, तुग व नक्कारा दिया गया।[६५] तथा तीन हजार जात तीन हजार सवार, एक हजार सवार दो अस्पा से अस्पा का मनसब दिया गया।[६६] इन्द्रसिंह ने बादशाह को नजराना के रूप में छत्तीस लाख रुपया भेंट दिया।[६७]

कुछ इतिहासकारों[६८] का मत है कि इन्द्रसिंह ने छत्तीस लाख रुपया उत्तरा-[illegible] शुल्क देकर जोधपुर की गद्दी प्राप्त की थी। इससे ऐसा जान पड़ता है कि [illegible] की गद्दी केवल रुपये के आधार पर इन्द्रसिंह को मिली किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि इन्द्रसिंह जोधपुर के राजघराने का ही था और उस परिवार के जितने सदस्य जीवित थे उन सबमें जोधपुर की गद्दी पर बैठने का हक उसको सबसे अधिक प्राप्त था। उत्तराधिकार के समय बादशाह को नजराना देने की परम्परा बहुत पुरानी थी। इन्द्रसिंह के नजराने की धन-राशि थोड़ी अधिक इसलिये थी कि उसे अपने पूर्वजों के खोये हुए अधिकार को फिर से प्राप्त करना था।

इन्द्रसिंह शाही मनसबदार था और शाही सेना में रह कर अनुभवी भी हो गया था। इसलिये औरंगजेब ने यदि उसे इस आशा से जोधपुर की गद्दी पर बैठाया कि

---

६४. ख्यात भाग २, २४; ओझा भाग ५, खंड १, २६३; रतलाम २२३; आसोपा २१८।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार इन्हीं दिनों पंचोली रामचन्द्र के पुत्र जगन्नाथ ने क़ाज़ी से मिलकर बातचीत की और तय किया कि बाईस लाख रुपया पेश करा देने पर वह राजकुमारों को जोधपुर दिला देगा। परन्तु जब जगन्नाथ ने अन्य राठौड़ सरदारों का यह निर्णय सुनाया तो उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया और पंचोली रघुनाथसिंह ने काजी के पास जाकर उसे इस बात की सूचना दे दी (ख्यात भाग २, २४)। परन्तु अन्य किसी ग्रन्थ से इसकी पुष्टि नहीं होती।

4

राठौड़-मुगल-संघर्ष

(सन् १६७९ ई० से सन् १६८७ ई०)

(क) मारवाड़ में युद्धारम्भ (सन् १६७९-८० ई०):—

राठौड़ सरदार एक ओर पेशावर से तथा दूसरी ओर जोधपुर से केवल इसी आशा से दिल्ली आये थे कि औरंगजेब महाराजा जसवंतसिंह के पुत्र को जोधपुर का शासक स्वीकार करके उसे राज्य व यथोचित मनसब दे देगा। परन्तु २६ मई सन् १६७९ ई० (द्वितीय ज्येष्ठ वदि १२ संवत् १७३६=२५ रबीउस्सानी १०९० हि०) को जब बादशाह ने इन्द्रसिंह को जोधपुर का अधिपति स्वीकार कर लिया, तब उनकी समस्त आशाओं पर तुषारापात हो गया।

इधर मुगल-सम्राट् ने राठौड़ सरदारों को यह सन्देश भेजा कि वे लोग जोधपुर के महाराजा की हवेली को खाली कर दें और किशनगढ़ के शासक राजा रूपसिंह की हवेली में जाकर निवास करें। राठौड़ों ने असन्तुष्ट होते हुए भी एक ओर तो बादशाह की आज्ञा का तत्काल पालन किया ताकि वह उनसे रुष्ट न हो जाये, और दूसरी ओर वे परस्पर विचार-विमर्श करके भावी योजनाएँ बनाने लगे। सोच विचार के उपरान्त यह निश्चित हुआ कि दिल्ली में चुपचाप पड़े रहना व बादशाह से किसी प्रकार की आशा करना व्यर्थ है। इसलिये एक ओर तो उन्होंने बादशाह से अपना मैत्री सम्बन्ध बनाये रखना उचित समझा, और दूसरी ओर इन्द्रसिंह के प्रतिनिधि के पहुंचने से पूर्व ही जोधपुर पहुँचकर वहाँ के शाही अधिकारियों को भगाकर अपना अधिकार स्थापित करने का निश्चय किया। संम्भवतः इसी समय राठौड़ों ने राजकुमारों को भी किसी न किसी प्रकार दिल्ली से निकालकर मारवाड़ ले जाने का निश्चय किया। इस प्रकार योजना बनाकर राठौड़ों ने औरंगजेब से प्रार्थना की कि उनमें से कुछ लोग, जिनके परिवार साथ हैं, स्वदेश वापस जाना चाहते हैं। बादशाह ने सम्भवतः यह सोचकर कि इनमें से कुछ लोगों के चले जाने से उनकी शक्ति कम हो जायेगी और उपद्रव की आशंका घट जायेगी, यह आज्ञा दी कि रानियों एवं राजकुमारों को छोड़कर जो सरदार जोधपुर जाना चाहें जा सकते हैं।[1]

---

१. अजितोदय सर्ग ६, श्लोक ६९-७६; खफी खां भाग २,२५९; वीर भाग २,८२८; ख्यात भाग १,४४; मुंनी ६४ रेउ भाग १,२५३।

इसी बीच छोटे राजकुमार दलथम्भन की मृत्यु हो गई।[२] इससे राठौड़ सरदार महाराजकुमार अजीतसिंह की सुरक्षा के लिये अधिक व्यग्र हो गये। जब उन्हें यह पता चला कि औरंगज़ेब ने उन्हें स्वदेश जाने की अनुमति दे दी है तो, केवल तीन सौ व्यक्तियों को छोड़कर, शेष राठौड़ों ने जोधपुर के लिये प्रस्थान कर दिया। इस दल में प्रमुख सरदार राठौड़ सूरजमल, संग्रामसिंह, राजसिंह, चांपावत, उदयसिंह, जैतावत प्रतापसिंह, ऊदावत नरसिंहदास तथा ख्वाजाफरासत थे।[३] सम्भवतः इन्हीं लोगों के साथ अजीतसिंह को भी गुप्त रूप से निकाल दिया गया। बलुन्दे के ठाकुर चांदावत मोहकमसिंह की एक कन्या थी, जिसकी आयु राजकुमार के बराबर थी। मोहकमसिंह की पत्नी ने अपनी कन्या को दिल्ली में छोड़ दिया और राजकुमार को लेकर जोधपुर की ओर चली गई। खीची मुकन्ददास को उनकी सुरक्षा के लिये विशेष रूप से नियुक्त किया गया।[४]

उधर बादशाह को जब यह पता चला कि राठौड़ सरदार उसकी दी गई अनुमति का अनुचित लाभ उठाकर राजपरिवार सहित निकल भागने का प्रयत्न कर रहे हैं और जोधपुर पहुंचकर अव्यवस्था फैलाना चाहते हैं, तो उसने मंगलवार, १५ जुलाई (१६ जमादिउस्सानी) को रानियों तथा राजकुमारों को नूरगढ़ में भेजने की आज्ञा दी और इस आज्ञा को कार्यान्वित करने के लिये उसने दिल्ली के प्रसिद्ध कोतवाल फुलादखां को नियुक्त किया। उसकी सहायता के लिये खास चौकी के

---

२. अजितोदय सर्ग ६, श्लोक ८१; मुस्ताद खां १०६; रेउ. भाग १,२५४।

ख्यात (भाग१,४४); मूंदियाड़ (१७५-६); दानेश्वर (१६१); राठौडां (२) आदि लगभग सभी ख्यातों में लिखा है कि जोधपुर की ओर जाते हुये मार्ग में दलथम्भव की मृत्यु हुई थी। परन्तु चूंकि अजितोदय और मआसीर-ए-आलमगीरी दोनों समकालीन ग्रन्थ ह, अतः इन्हीं के मत को स्वीकार कियां गया।

३. अजितोदय. सर्ग ६, श्लोक ८०; सर्ग ७, श्लोक १ व ७; राजरूपक. ३१; ख्यात. भाग २,४४; मूंदियाड १७६; बांकीदास. ३५; अजितविलास. २०६ अ; दस्तूर १४२; फुतूहात. ७५ अ; वाकया. ३१६; रेउ. भाग १,२५४; ओझा. भाग ४, खंड २, ४८२-३.।

राजरूपक (३१) में लिखा है कि दिल्ली में पांच सौ राठौड़ रुके थे, परन्तु इसकी पुष्टि अन्यत्र कहीं नहीं होती।

४. अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक ८२-३; ख्यात भाग २,४४; जुनी. ६६; रेउ. भाग १,२५४।

महाराजकुमार अजीतसिंह को किस प्रकार दिल्ली से निकाला गया, इस विषय में विभिन्न मत मिलते हैं।

राजस्थानी ग्रन्थों में से राजरूपक (३०); मूंदियाड़ (१७५); अजित चरित्र सर्ग ८ श्लोक १३; सूरजप्रकाश (२६); अभयविलास (१०.अ); फौजचन्द री तवारीख (२) जूनीं वही. (६६) तथा अजितविलास (२०६ अ) आदि में केवल यह लिखा है कि राजकुमार को गुप्त रूप से निकाला गया था। यह कार्य किस प्रकार हुआ, इसका कोई विवरण नहीं दिया गया।

आदमियों सहित सैयद हामीद खाँ, हमीद खाँ (दाऊद खाँ का पुत्र), कमालुद्दीन खाँ (दिलेर खाँ का पुत्र) तथा ख्वाजा मीर को भेजा गया। उनके साथ ही स्वर्गीय शाहजादे सुल्तान मुहम्मद के रिसाले के नौकर भी नियुक्त किये गये। बादशाह ने

वीर विनोद (भाग २,८२६) में लिखा गया है कि राठौड़ दुर्गादास व राठौड़ सोनग अजीतसिंह को लेकर जोधपुर चले आये थे। आधुनिक इतिहासकार ओझा (भाग ४, खंड २, ४८२–३) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। राठौड़ां री ख्यात (१) में राठौड़ सोनग का उल्लेख नहीं है, केवल दुर्गादास के द्वारा राजकुमार को पिटारी में रखकर निकालने का वर्णन है। लेकिन लगभग अन्य सभी राजस्थानी व फारसी ग्रन्थ इस बात का स्पष्ट उल्लेख करते हैं कि दुर्गादास ने दिल्ली में राठौड़ों व शाहीसेना के बीच होने वाले संघर्ष में भाग लिया था।

फुतूहात (७५ ब) व मआसिर (१०३-४) के अनुसार जब युद्धारम्भ हो गया और शाही दबाव बढ़ गया तो राठौड़ रणछोड़दास और रघुनाथ ने दुर्गादास से कहा कि वह राजपरिवार को लेकर आगे चला जाय। परन्तु चूँकि राठौड़ों को स्वदेश जाने की अनुमति बादशाह से मिल चुकी थी, अतः यह अधिक तर्क सम्मत जान पड़ता है कि राठौड़ों ने इस अवसर का लाभ उठाकर राजकुमार को निकाला हो। पुनः दुर्गादास के साथ राजपरिवार का स्वदेश जाना अविश्वसनीय है।

वंश (भाग ३, २८४७-८ व भाग ४; २९४२-३) के अनुसार गोविन्ददास भाटी नामक एक सरदार ने सँपेरे का वेष धारण किया और साँपों के स्थान पर राजकुमारों को रखकर वह बाहर ले गया। दानेश्वर (१६१) में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है, परन्तु इसमें गोविन्ददास के स्थान पर मुकुन्ददास खींची तथा ख्वाजा फरासत का वेष बदलने का वर्णन है। आधुनिक इतिहासकारों में रेऊ (प्राचीन राजवंश २०७); आसोपा (मूल. १९३-४) तथा गहलोत (मारवाड़ १५७-८) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। वार्ता (३३ अ) में लिखा गया है कि अजीतसिंह को तरकारी की टोकरी में रखकर निकाला गया था। टॉड (भाग २, ४५) के अनुसार अजीतसिंह को मिठाई की टोकरी में रखकर निकाला गया था और इस टोकरी को एक मुसलमान को सौंप दिया गया जिसने उसे निश्चित स्थान पर पहुँचा दिया, जहाँ से दुर्गादास ने उसे ले लिया। परन्तु ये सभी ग्रन्थ उत्तरकालीन हैं, किसी समकालीन ग्रन्थ से इनकी पुष्टि नहीं होती। ऐसा प्रतीत होता है कि घटना को रोचक बनाने के विचार से ही सबने अपने-अपने ढंग से इसका वर्णन किया है।

समकालीन ग्रन्थ वाकया. (५५३) के अनुसार राठौड़ों ने यह निश्चय किया था कि दोनों राजकुमारों के स्थान पर दो नकली बच्चे रख दिये जायें। इसके लिये जब बच्चों की खोज हुई तब तत्काल दो बच्चे नहीं मिल सके, केवल एक ही मिला। परन्तु सौभाग्यवश उसी समय किसी राठौड़ सरदार की एक छोटी सी बच्ची की मृत्यु हो गई। राठौड़ों ने तत्काल ही यह प्रसारित कर दिया कि एक राजकुमार की मृत्यु हो गई है। दो दासियों को भी रानियों का वेष पहना दिया गया। तब दोनों राजकुमारों व दोनो रानियों को निकाल दिया गया। जब संघर्ष की तीव्रता बढ़ गई तो राठौड़ नकली राजकुमार को एक अहीर के घर में छोड़कर भाग गये। परन्तु यह सूचना चूँकि राठौड़ सरदारों ने ही दीनदार खाँ कायमखानी को दी थी, अतः यह अनुमान करना उचित नहीं जान पड़ता कि उन्होंने शाही अधिकारी को सत्य समाचार दिया होगा।

चूँकि अजितोदय समकालीन ग्रन्थ है और उसके उल्लेख की पुष्टि ख्यातों से भी होती है, अतः उस मत को ही स्वीकार किया गया है।

फुलाद खाँ को आज्ञा दी कि यदि राठौड़ शाही आज्ञा का उल्लंघन करें और लड़ाई-झगड़ा करें तो वह भी शस्त्र का प्रयोग करे।[५]

इधर राठौड़ भी यह भली भांति जानते थे कि औरंगजेब को शीघ्र ही यह सूचना मिल जायेगी कि राजकुमार को दिल्ली से निकाल दिया गया है और तव वह शक्ति का प्रयोग करके उन्हें दवाने तथा राजकुमार का पता लगाने का प्रयत्न करेगा। चूंकि राठौड़ों की शक्ति सीमित थी, अतः उन्हें स्पष्ट था कि वे अधिक देर तक शाही सेना का मामना नहीं कर सकेंगे। साथ ही अजीतसिंह के सुरक्षित निकल जाने के उपरान्त वहां रुककर प्राण गंवाना निरर्थक था, अतः उन्होंने छोटे-छोटे दलों में वारी-वारी से शाही सेना को राजकुमार के पीछे जाने से रोकने का निश्चय किया।[६]

शाही आज्ञानुसार फुलाद खाँ ससैन्य[७] राठौड़ों के पास गया और उसने उन्हें वादशाह की आज्ञा सुनाई। परन्तु अजीतसिंह को पहले ही निकाला जा चुका था। चूंकि फुलाद खाँ को यह रहस्य विदित नहीं था, अतः उसने शाही आज्ञा का पालन करने के लिये राठौड़ों से वार-वार आग्रह किया, और जव देखा कि राठौड़

---

५. मुस्ताद खां, १०६-१०; फ़ुतूहात, ७५ ब; खफी खां. भाग २,२६०; वीर, भाग २,८२९; ख्यात. भाग २,४५; अजितोदय. सर्ग ७, श्लोक ७-१०; अजितचरित्र. सर्ग ८ श्लोक ३; दानेश्वर. १९१; सरकार. भाग ३.३३२; फारूकी २२० व २२४; रेउ. भाग १. २५५-७; ओझा भाग ४, खंड २, ४८४-५।

अजितोदय, ख्यात एवं जुनी के अनुसार औरगंजेव ने रानियों एवं राजकुमारों को सलेम-कोट में वुलाया था और अजितचरित्र में लिखा है कि उन्हें अन्तःपुर में वुलाया था; परन्तु चूंकि फारसी इतिहासकारों ने नूरगढ़ का स्पष्ट उल्लेख किया है, अतः उसी को स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है।

केवल ईश्वरदास नागर (फ़ुतूहात ७५ व) ने लिखा है कि औरंगजेव ने केवल राजकुमारों को शाही हरम में भेजने की आज्ञा दी थी और यह सन्देश भेजा था कि वालिग हो जाने पर उन्हें उनका राज्य लौटा दिया जायेगा। परन्तु राठौड़ को यह प्रस्ताव अरुचिकर लगा और उन्होंने उत्तर भेजा कि चूंकि दोनों राजकुमार वहुत छोटे हैं, अतः उन्हें अपनी माताओं से विलग नहीं किया जा सकता। जव वे वड़े हो जायेंगे तो उन्हें शाही सेवा में उपस्थित कर दिया जायेगा। आधुनिक इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेव भाग ३,३३२) ने भी इसी मत को स्वीकार किया हैं। परन्तु इस तथ्य की पुष्टि न तो किसी राजस्थानी ग्रन्थ से होती हैं और न औरंगजेव के राजकीय इतिहासकार मुस्ताद खां ने ही इसका उल्लेख किया है।

६. फ़ुतूहात. ७५ अ।

७. यह कहना कठिन है कि फुलाद खाँ कितनी सेना लेकर राठौड़ों के पास गया था। फारसी इतिहासकार इस विषय में मौन हैं। राजस्थानी ग्रन्थों एवं ख्यातों में इस सेना की संख्या भिन्न भिन्न वताई गई है। जुनी. (६५) में एक हज़ार वीर, फौजचन्द (९) ने दस-बारह हज़ार, ख्यात (भाग २.४५) में वीस हज़ार तथा वांकीदास (९५) ने तीस हज़ार का उल्लेख किया है।

बादशाह की आज्ञा का पालन नहीं कर रहे हैं, तो उसने बल प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार बुधवार, १६ जुलाई (श्रावण बदि ३) को राठौड़-मुगल-संघर्ष आरम्भ हो गया।[८]

अपने पूर्व निश्चय के अनुसार लगभग एक सौ सवारों को भाटी रघुनाथ के नेतृत्व में छोड़कर शेष राठौड़ों ने स्थान छोड़ दिया। इस दल ने चार घड़ी तक शाही सेना का सामना किया परन्तु अन्त में, रघुनाथ भाटी तथा सत्तर राठौड़ सैनिक मारे गये। शेष राठौड़ भाग खड़े हुए और अगले राठौड़ दल से जा मिले। शाही सेना ने इनका पीछा किया और तेजी के साथ चार-पांच कोस की दूरी तय करके जब राठौड़ों के निकट जा पहुँची तो जोधा रणछोड़दास ने लगभग एक सौ राठौड़ सैनिकों के साथ शाही सेना को रोका। शेष राठौड़ पूर्ववत्-आगे बढ़ते गए। रणछोड़दास तीन-चार घड़ी तक शाही सेना को रोके रखने म सफल रहा और अन्त में लगभग साठ राठौड़ सैनिकों सहित मारा गया। शाही सैनिकों ने पुन: दो-तीन कोस आगे बढ़कर राठौड़ों को जा पकड़ा। इस बार राठौड़ दुर्गादास ने केवल पचास व्यक्तियों के साथ शाही सेना का सामना किया। दो तीन घड़ी में ही उसके लगभग सभी सैनिक मारे गये। अब तक रात हो चुकी थी, इसलिये शाही सैनिक वापस लौट गये।[९]

---

८. अजितोदय. सर्ग ७, श्लोक १६-७; ख्यात. भाग २, ४५; मूंदियाड़. १७६; जूनी. ६५; अजित विलास. २०९ ब; फोजचन्द. २; राजरूपक. ४०; दस्तूर. १४३; मूल. १९४।

टॉड (भाग २, ४६) ने लिखा है कि युद्ध ७ श्रावण को आरम्भ हुआ था। परन्तु न तो बदि अथवा सुदि के अभाव में निश्चित तिथि बताई जा सकती है और न बिना किसी आधार ग्रन्थ की पुष्टि के इस कथन को स्वीकार किया जा सकता है।

शक्ति का प्रयोग किस पक्ष ने आरम्भ किया, इस विषय में मतभेद है। ख्यात (भाग २, ४५) तथा जूनी (६५) के अनुसार राठौड़ों ने फुलाद खाँ से मिलकर सन्धि की बातचीत करने का निश्चय किया और इस कार्य के लिए दुर्गादास व रूपसिंह भेजे गये। जब फुलाद खाँ ने उनके आने का समाचार सुना तो अपने सैनिकों को अस्त्र न चलाने की आज्ञा दे दी; परन्तु इसी बीच अचानक एक तोप छूट गई, फलत: युद्धारम्भ हो गया। राजकीय इतिहासकार मुस्ताद खां (११०) ने राजपूतों पर युद्धारम्भ करने का आरोप किया है। परन्तु चूंकि बादशाह ने स्पष्ट रूप से फुलाद खां को शस्त्र प्रयोग करने की अनुमति दी थी, अतः यह अधिक उचित प्रतीत होता है कि राठौड़ों को शाही आज्ञा का पालन न करते देखकर उसने शस्त्र प्रयोग करना आरम्भ किया हो। इसी कारण भट्ट जगजीवन (अजितोदय सर्ग ७, श्लोक १६-७) के मत को स्वीकार किया है।

९. युद्ध का यह विवरण फुतूहात-ए-आलमगीरी (७६ अ) के विवरण पर आधारित है। मासिर (३१९) में भी लगभग ऐसा ही विवरण है, और मनूची (भाग २, २३३) के उल्लेख से भी ऐसा ही आभास मिलता है। आधुनिक इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब भाग ३, ३३२-४) ने भी ईश्वरदास नागर द्वारा वर्णित युद्ध विवरण को ही मान्यता दी है। चूंकि अन्य किसी इतिहासकार ने इस संघर्ष का विस्तृत वर्णन नहीं दिया है, अतः इसी को स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है।

इस संघर्ष के बीच ही जब राठौड़ सरदारों ने देखा कि वे शाही सेना को भगाने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं और फुलाद खाँ निरन्तर अपने साथियों के साथ उनका पीछा कर रहा है तो वे जसवन्तसिंह की दोनों रानियों के लिये चिन्तित हो उठे। परिस्थिति को विषम होते देखकर उन्हें यह आशंका हुई कि कहीं जसवन्तसिंह की रानियों को शाही सैनिक न पकड़ लें। फलतः उन्होंने स्वयं ही रानियों को मार डाला।[१०]

ऊदावत रूपसिंह, मेड़तिया मोहकमसिंह, राठौड़ भोजराज, चांपावत दूदो, राठौड़ महासिंह तथा पंचोली पंचायणदास नामक अपने केवल छः साथियों के साथ घायल दुर्गादास आगे बढ़ा और कुछ ही समय बाद राजकुमार से जा मिला।[११]

---

१०. मुस्ताद खाँ. ११०; ख्यात. भाग २, ४५-६; मूंदियाण १७६ व १७८; जुनी ६६; राजरूपक ३०; अजित चरित्र. सर्ग ८ श्लोक १०-१; सूरजप्रकाश २८।

अजितोदय (सर्ग ७, श्लोक १८-९); अजितविलास (२०६ ब); दानेश्वर-(१६३); फौजचन्द. (२); वार्ता (३३ ब); में लिखा कि दोनों रानियों ने मर्दाने भेष में युद्ध में भाग लिया था और लड़ती हुई युद्ध क्षेत्र में ही मारीं गईं थीं। आधुनिक इतिहासकार रेउ (भाग १, २५७) व आसोपा (२२३) ने भी इसके मत का समर्थन किया है। परन्तु युद्ध विवरण को देखते हुए यह समीचीन नहीं जान पडता कि राठौड़, रानियों को युद्ध के लिए पीछे छोड़ कर स्वयं आगे चले गये हों। साथ ही यदि यह बात ठीक होती तो अन्य राजस्थानी इतिहासकार व ख्यातकार भी रानियों की प्रशंसा में इस तथ्य का अवश्य उल्लेख करते।

दस्तूर (१४३) में लिखा है कि रानी जादम ने आत्म हत्या कर ली थी और रानी नरूकी को राठौड़ों ने मारा था। प्राचीन राजवंश (२०७) में दोनों रानियों द्वारा आत्म हत्या करना स्वीकार किया गया। इस कथन से प्रमुख तथ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

टॉड (भाग २, ४५) का यह कथन कि रानियों व अन्य राजपूत स्त्रियों ने जौहर किय था, अविश्वसनीय है।

खफी खां (भाग २, २५६-६०); ईश्वर दास नागर (फुतूहात. ७६ अ) तथा वाकया-नवीस अजमेर (वाकया ५५३) और मनूची (भाग २, २३३) का मत है कि वास्तविक रानियों को मर्दाने भेष में राजकुमारों के साथ ही जोधपुर की ओर भेज दिया गया था। यह भी उल्लेख मिलता है कि दो दासियों को रानियों के वस्त्र पहनाकर हवेली में छोड़ दिया गया था। यही दोनों नकली रानियां युद्ध क्षेत्र में युद्ध करती हुई मारी गईं थी। सरकार (भाग ३, ३३३) तथा फारूकी (२२३-४) आदि आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है। परन्तु इस समय के बाद इन दोनों रानियों का कोई उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता अतः यही स्वीकार करना अधिक तर्क सम्मत प्रतीत होता कि वे इस संघर्ष के बाद जीवित नहीं थी।

वंश (भाग ३, २८४८-२८५०); दानेश्वर (१८८); अजितविलास (२०६ ब) व वार्ता (३३ ब) आदि कुछ राजस्थानी ग्रन्थों में यह स्वीकार किया गया है कि रानी हाडी ने इस संघर्ष में वीरता पूर्वक भाग लिया था। परन्तु यह अविश्वसनीय है क्योंकि रानी हाडी के जोधपुर में उपस्थित होने का प्रामाणिक उल्लेख मिलता है।

११. ख्यात. भाग २. ५१; जुनी ६६।

वीर-(भाग २, ८३०) में लिखा है कि अठारह राजपूत बर्कन्दाज गिरधर, सांखला आनन्द, रैवारी कुम्भा व सुल्तान व कुछ अन्य सैनिक बचकर मारवाड़ गए थे। आसोपा (२२७)ने इन राठौड़ों की संख्या चालीस स्वीकार की है। दुर्गादास केवल पचास सैनिकों के साथ शाही सेना का सामना करने के लिए रुका था, अतः लगभग चालीस की संख्या में ... जीवित होना विश्वसनीय नहीं जान पड़ता।

अब राठोड़ तेजी के साथ मारवाड़ की ओर बढ़े और हरसोर[12] होते हुये २३ जुलाई (२४ जमादिउस्सानी=श्रावण वदि ११) को जोधपुर के निकट पहुंचे और सलावास[13] नामक गांव में रूककर उन्होंने सेना एकत्र करना आरम्भ किया।[14] सम्भवतः यहीं सोमवार, १ सितम्बर (५ शावान) को महाराजकुमार अजीतसिंह का राज्याभिषेक किया गया।[15] उस समय तक राठोड़ों के उपद्रव बहुत बढ़ चुके थे और उन्हें दबाने के लिये औरंगजेब ने बख्शी सरबुलन्द खां की अध्यक्षता में एक विशाल सेना मारवाड़ की ओर भेजी थी। चूंकि यह स्थान जोधपुर के निकट था, अतः यहां अधिक दिन तक रूकने से शाही आक्रमण की आशंका अधिक थी। इसके अतिरिक्त राजकुमार की सुरक्षा के लिये अत्यावश्यक था कि उसे साथ न रखकर कहीं गुप्त रूप से रखा जाय। अतः दुर्गादास ने अजीतसिंह की सुरक्षा का भार खींची मुकुन्ददास को सौंपा और स्वयं शाही सैनिकों का विरोध करने के उद्देश्य से सिरोही राज्य में स्थित बीसलपुर नामक गांव में चला गया। यहीं पर अन्य राठोड़ सरदार भी आ-आकर उससे मिलने लगे।[16]

राठोड़ों के चले जाने के उपरान्त दिल्ली में उनका जोमाल असबाब था, उसमें से कुछ लुटेरों ने लूट लिया और कुछ शाही अधिकारियों ने अपने अधिकार में ले लिया और शाही आज्ञानुसार उसे बेतुलमाल के कोषागार में रख दिया गया।[17]

दिल्ली से अजीतसिंह का चुपचाप बाहर निकल जाना शाही अधिकारियों की असावधानी और अकर्मण्यता का परिचायक था। पूरी चेष्टा करने पर भी औरंगजेब राजकुमारों और रानियों को दिल्ली में न रोक सका, इससे वह क्षुब्ध हो उठा। सम्भवतः अपनी झेंप मिटाने के लिए उसने एक छोटे बच्चे को मंगवा कर यह घोषित कर दिया कि वही असली अजीतसिंह है और जिस बच्चे को राठौड़ दिल्ली से लेकर

---

१२. यह स्थान मेडता परगने के प्रमुख स्थान मेड़ता से लगभग पैंतीस मील पूर्व की ओर स्थित है (वाक़या पृ. २५६ के अनुसार मेड़ता से १० कोस)।

१३. ख्यात (भाग २, ५६) में इसका उल्लेख सालवा नाम से किया गया है। अनुमानतः ख्यातकार ने सलावास का ही उल्लेख किया है। यह गांव जोधपुर से लगभग दस मील दक्षिण की ओर स्थित है।

१४. वाक़या २४४-५; मुस्ताद खां ११०; ख्यात भाग २,५६; रेउ. भाग १,२५६।

१५. वाक़या ३३२, ३१८, ३२४।

१६. ख्यात भाग २, ५६।

१७. मुस्ताद खां. ११०; ओझा-भाग ४, खंड २, ४८६-७।

भागे हैं, वह वास्तविक राजकुमार नहीं है।[१८] सम्भवतः उसे इस बात का भी भय था कि राठौड़ों को जब यह मालूम हो जायेगा कि अजीतसिंह दिल्ली से निकलकर जोधपुर पहुँच गया है तो स्वामिभक्ति की भावना से प्रेरित होकर वह संगठित हो जायेंगे और तब उन्हें दबाना कठिन हो जायेगा। शाही महल में लाए हुए इस नये बच्चे का नाम उसने मुहम्मदीराज रक्खा और उसके पालन-पोषण का भार अपनी पुत्री जेबुन्निसा को सौंप दिया।[१९]

राठौड़ों के इस विरोधी आचरण से औरंगजेब उनसे अप्रसन्न हो गया और उसने सोजत व जैतारण के दोनों परगने भी, जो कि जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय से ही राठौड़ों को दिए गए थे, खालसा कर लिए। चूंकि जोधपुर का राज्य इन्द्रसिंह को दे दिया गया था, अतः वहाँ के फौजदार, दीवान व अमीन ताहिर खाँ को वहाँ से हटाकर उसे इन दोनों परगनों की फौजदारी व अमीनी सौंपी गई। बादशाह ने ताहिर खाँ को स्पष्ट आज्ञा दी कि जब तक जोधपुर में इन्द्रसिंह का प्रतिनिधि न पहुँच जाये, वह सोजत व जैतारण के लिए प्रस्थान न करे।[२०]

---

१८. दिलकुशा. भाग १, १६४; ख्यात भाग २, ५२; जुनी. ६६; वीर-भाग २, ८३०; दानेश्वर १६३; उमराए. ६६; सरकार भाग ३, ३३४; रेउ भाग १,२५८, ओझा भाग ४; खंड २, ४८६; मेवाड़ १६७; मूल-१६५।

मुस्ताद खाँ (११०) ने इस घटना का उल्लेख सर्वथा भिन्न रूप में किया है। उसने लिखा है कि राठौड़ सरदार अजीतसिंह को एक अहीर के घर में छिपा कर भाग गये थे। फुलाद खाँ को इसका पता चल गया और उसने उस बच्चे को लाकर बादशाह को सौंप दिया। औरंगजेब ने राजपूतों के शिविर से पकड़ी हुई दो दासियों को जब इस बच्चे को दिखाया तो उन्होंने भी यह स्वीकार किया कि वही असली राजकुमार है। अगले दिन फुलाद खाँ उस बच्चे के आभूषण व अन्य वस्तुऐं भी ढूंढ़ लाया। परन्तु राठौड़ जिसके लिए शाही सेना से युद्ध कर रहे थे उसे ही राजधानी में छोड़कर भाग गये हों, यह तर्कसम्मत नहीं जान पड़ता। ऐसा प्रतीत होता है कि मुस्ताद खाँ ने शाही प्रतिष्ठा बचाने के लिये ही ऐसा विवरण दिया है।

खफी खाँ (भाग २, २६०) का कथन है कि शाही सेना ने राजपूतों का पीछा किया था और दोनों बच्चों को पकड़ कर वापस ले आये थे। परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती।

१९. मुस्ताद खाँ ११०; दिलकुशा-भाग १, १६४; ख्यात-भाग २, २६०; वीर-भाग २, ८३०; दानेश्वर-१६३; जुनी०-६६; रेऊ-भाग १, २५८-६; ओझा-भाग ४. खंड २, ४८६।

२०. वाकया-२४७ व २७६।

साकी मुस्ताद खाँ (११०) के अनुसार ताहिर खाँ चूंकि जोधपुर में विद्रोहियों को दबाने में सफल नहीं हो सका था इसलिये औरंगजेब ने क्रोधित होकर उसे जोधपुर से हटा दिया था और 'खाँ' की पदवी भी छीन ली थी। सरकार (भाग ३, ३३४); ओझा (भाग ४; खंड २, ४८६, ७); डॉ० गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़ १६७); मुहम्मद सैयद अहमद (उमराए-१००); डॉ० वी० एस० भार्गव (मारवाड़ १२५) आदि आधुनिक इतिहासकारों ने भी इसी मत का समर्थन किया है। परन्तु ताहिर खाँ जोधपुर में असफल रहा हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। साथ ही इन्द्रसिंह की नियुक्ति के पश्चात् उसे अन्य स्थान पर भेजना स्वाभाविक ही था।

इन्हीं दिनों राठौड़ों को एक अन्य शत्रु का भी सामना करना पड़ा। जोधपुर पर राठौड़ों से पूर्व प्रतिहारों का शासन था। इन पूर्ववर्ती शासकों के उत्तराधिकारियों ने इस अव्यवस्था से लाभ उठाना चाहा और मंडोर पर अधिकार कर लिया। परन्तु उनकी शक्ति जम न सकी और शीघ्र ही राठौड़ों ने उन्हें निकालकर फिर से मंडोर पर अधिकार कर लिया।[२५]

इस अशान्त वातावरण में ही जोधपुर में यह भी समाचार पहुँचा कि दिल्ली से भागते समय राठौड़ सरदारों और शाही सैनिकों के बीच संघर्ष हो गया है।[२६] इस समाचार से धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया कि यह घटना एक गम्भीर संघर्ष की भूमिका मात्र है। परिस्थिति दिन-प्रति-दिन विषम होने लगी। इस संकटमय परिस्थिति में राठौड़ों ने महाराजा जसवन्तसिंह की रानियों को जोधपुर में रखना उचित न समझा और उन्हें उनके पीहर भेज दिया।[२७] शाही अधिकारी भी स्थिति की गम्भीरता से घबरा गए थे। दीनदार खाँ कायमखानी, जो अजमेर के सूबेदार से कुछ सन्देश लेकर जोधपुर आया था, अपनी जान बचा कर नागोर की ओर भाग गया। शाही सत्ता के विरुद्ध खुला विद्रोह आरम्भ होने पर जोधपुर के फौजदार, दीवान व अमीन ताहिर खाँ का भी सुरक्षित रह पाना संभव नहीं था। परन्तु ताहिर खाँ से राठौड़ों के सम्बन्ध अच्छे थे, अतः वे उसको संकट में नहीं डालना चाहते थे। इसलिए उन्होंने अपने प्रमुख सरदार राम भाटी तथा सोनग द्वारा यह सलाह भिजवाई कि वह चुपचाप जोधपुर छोड़ दे। उसने भी परिस्थिति विषम देखकर उनकी सलाह मानली। राठौड़ों ने सूरजमल भीवोत के साथ कुछ सैनिकों को भेजकर ताहिर खाँ को अजमेर तक सुरक्षित पहुँचा दिया। ताहिर खाँ

---

२५. दानेश्वर-१६३-४; टॉड-भाग २, २४६; सरकार-भाग ३, ३३५; रेऊ भाग १, २६०।

२६. ख्यात भाग २, ५२; जूनी-६६; अजितोदय-सर्ग ८ श्लोक-३०।

आसोपा (२२३) ने इस समाचार के जोधपुर पहुँचने की तिथि सोमवार, ४ अगस्त (श्रावण सुदि ८) लिखी है; परन्तु यह ठीक नहीं है।

२७. ख्यात-भाग २, ५३-४ व ५५-६; जुनी ६७; दस्तूर. १३७; आसोपा २२५।

ख्यात के अनुसार रानी हाडी और रानी चौहाण बूंदी, रानी शेखावत खंडेला, रानी देवड़ी सिरोही और रानी भटियाणी जैसलमेर चलीं गईं। जसवन्तसिंह की विमाता रानी बघेली जोधपुर में ही मुहणोत नैणसी के घर चली गई और इन्द्रसिंह ने जोधपुर आने पर उसके पालन पोषण का प्रबन्ध किया।

ख्यात में यह भी लिखा हैं कि रानी जादम राणा के पास गई, जहाँ उसे राणा ने एक गाँव दिया, परन्तु यह अविश्वसनीय है क्योंकि इसी ख्यात में लिखा है कि दिल्ली में युद्धारम्भ होने पर राठौड़ों ने रानियों को मार डाला।

मूंदियाड़ (१७४) में लिखा है कि जब दिसम्बर सन् १६७८ ई० को जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार जोधपुर पहुँचा था उसी समय रानी हाडी को छोड़कर शेष सभी रानियाँ अपने अपने मायके चली गई थीं परन्तु इसकी पुष्टि अन्यत्र कहीं नहीं होती।

के चले जाने के बाद राठौड़ों ने अन्य शाही अधिकारियों को हटाकर जोधपुर पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया।[२८]

जोधपुर के अतिरिक्त राठौड़ सरदार अन्य परगनों पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करने लगे। मेड़ता का फौजदार, अमीन व किरोड़ी साहुल्ला खाँ था। उस पर मेड़तिया राजसिंह ने जगन्नाथोत सुरसिंह, जोधावत बालसिंह, चांपावत अजबसिंह, और राठौड़ सिवदान आदि के साथ अगस्त सन् १६७६ ई० (भाद्रपद संवत् १७३६) में आक्रमण किया। साहुल्ला खाँ युद्ध में मारा गया, मेड़ता की समस्त सम्पत्ति लूट ली गई, मस्जिदें तोड़ डाली गईं और इस प्रकार मेड़ता पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया गया। उन्हीं दिनों राठौड़ों ने बनेचा सुजानसिंह के नेतृत्व में सिवाना पर आक्रमण किया। वहाँ का किलेदार अपने पचासों सैनिकों के साथ मारा गया। इस प्रकार सिवाना भी राठौड़ों के हाथ में आ गया। समस्त जोधपुर राज्य में स्थान-स्थान पर उपद्रव आरम्भ हो गए। छोटी-छोटी टुकड़ियों में विभक्त राठौड़ सरदारों ने शाही थानों पर अधिकार करना आरम्भ कर दिया। फलतः दिल्ली से गुजरात का मार्ग अरक्षित हो गया।[२९]

औरंगजेब को जब यह समाचार मिला कि राठौड़ों ने शाही कर्मचारियों को हटाकर जोधपुर पर ही नहीं बल्कि मेड़ता एवं सिवाना पर भी अधिकार कर लिया है

---

२८. अजितोदय-सर्ग ८ श्लोक ३१-२; वाक्या-२८३ व ३०४; फौजचन्द ५; रेउ भाग १, २५६।

ख्यात (भाग २, ५२); जूनी (३६) व दानेश्वर (१८३) ने लिखा है कि राठौड़ों ने ताहिर खाँ तथा काजी रहीम को घेर लिया था और जब उन्होंने अनुनय-विनय किया तो उनकी सम्पत्ति छीन कर उन्हें अजमेर तक पहुँचा दिया। मूंदियाड़ (१७८) व अजितविलास (२१० ब) के अनुसार राठौड़ों ने ताहिर खाँ पर आक्रमण किया था और उसे हराकर राज्य से निकाल दिया था। ओझा (२२३) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। परन्तु अजितोदय व वाक्या दोनों ही समकालीन ग्रन्थ हैं। अतः उनके उल्लेख को ही स्वीकार किया गया है।

रेउ (भाग १, २५६) ने यहाँ पुनः ताहिर खाँ के स्थान पर तहव्वर खाँ का ही नाम लिखा है।

२९. ख्यात-भाग २, ५२-३; जूनी-३६; अजितोदय-सर्ग ८, श्लोक १-३४; बांकीदास ३३; मूंदियाड़-१७८; वीर-भाग २, ८३०-१; दानेश्वर-१८३; अजितविलास-२१० ब; दस्तूर-१३७; राठौड़ों-१०; फौजचन्द-५; वाक्या-२११, २६८, २८३-२८३-७; रेउ-भाग १, २५६।

अजितोदय, मूंदियाड़ की ख्यात, अजितविलास, दस्तूर बही, वीरविनोद, राठौड़ दानेश्वर ग्रन्थ मुक्तावली व राठौड़ां री ख्यात आदि में लिखा है कि मेड़ता के युद्ध में साहुल्ला खाँ बन्दी बना लिया गया था; परन्तु चूँकि साहुल्ला खाँ का बाद में कोई उल्लेख नहीं मिलता, अतः इसे स्वीकार नहीं किया गया।

बांकीदास (३३) ने मेड़ता में होने वाले युद्ध की तिथि अगस्त २१ (भाद्रपद बदि ११) बताई है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि इसी दिन पुष्कर में युद्ध हुआ था, जिसमें राजसिंह मेड़तिया मारा गया था। मेड़ता का युद्ध निश्चय ही इससे पूर्व हुआ होगा।

तो वह चिन्तित हो उठा। मारवाड़ में निरन्तर उपद्रव बढ़ने का हाल सुनकर उसने रविवार, १७ अगस्त (२० रजब=भाद्रपद वदि ६) को जोधपुर पर पुनः अधिकार स्थापित करने के लिए बख्शी सरबुलन्द खाँ की अध्यक्षता में एक विशाल सेना नियुक्त की।[३०]

उधर ताहिर खाँ ने अजमेर पहुँचकर जब वहाँ के सूबेदार तहव्वर खाँ को जोधपुर का सब समाचार सुनाया तब तहव्वर खाँ ने स्वयं जोधपुर जाकर राठौडों का दमन करने का निश्चय किया और लगभग तीन हजार सेना लेकर वह पुष्कर की ओर गया। यह समाचार सुनकर मेड़तिया राजसिंह प्रतापसिंह ने उसका सामना करने के लिए एक विशाल सेना लेकर मेड़ता से प्रस्थान किया। बृहस्पतिवार, २१ अगस्त (भाद्रपद बदि ११) को पुष्कर में वाराह जी के मन्दिर के समक्ष दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ, जिसमें बहुत से व्यक्ति मारे गए और राजसिंह भी अपने देश की रक्षा करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।[३१] राठौड़ों एवं मुगलों के

---

३०. मुस्ताद खाँ ११०; मआसिर ७०९-१०; फ़ुतूहात. ७६ ब; उमराए, १६७-८; सरकार-भाग ३, ३३५; रेउ. भाग १, २५६; ओझा. भाग ४, खंड २, ४८७।

ईश्वरदास नागर (फ़ुतूहात ७६ ब) के अनुसार शाहजादा अकबर को भी इसी सेना के साथ मारवाड़ भेजा गया था। इस सेना को अजीतसिंह के दिल्ली से निकाले जाने के तुरन्त बाद ही भेजा गया था और अकबर व सरबुलन्द खाँ—दोनों सेनापतियों को यह स्पष्ट आदेश दिया गया था कि वे जसवन्तसिंह के परिवार को पकड़ने तथा दुर्गादास व अन्य प्रमुख सरदारों को मारवाड़ से निकालने का पूरा प्रयत्न करें। परन्तु साकी मुस्ताद खां ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि सरबुलन्द खां को १७ अगस्त को दिल्ली से मारवाड़ की ओर भेजा गया था और शाहजादा अकबर कुछ दिन बाद बादशाह के हरांवल में मारवाड़ की ओर गया था अतः ईश्वरदास नागर का मत स्वीकार नहीं किया जा सकता।

३१. ख्यात भाग २,५३; जुनी ५४; मूंदियाड़ १७८ दानेश्वर १९४; अजितविलास २१०ब; राजरूपक ४२-७; फीजचन्द ६; वीर भाग २, ८३०-१; मुस्ताद खाँ १११; मआसिर ४६४; वाकया ३४३-३५१; टॉड भाग २, ४७; सरकार-भाग ३, ३३५; रेउ भाग १, २६०; ओझा भाग ४, खंड २, ४८७।

पुष्कर का युद्ध किस तिथि को हुआ, इस विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। वीरभाण (राजरूपक ४७); फौजचन्द (६) व टॉड (भाग २,४७) ने इस युद्ध की तिथि ६ सितम्बर (भाद्रपद सुदि ११) स्वीकार की है। परन्तु बादशाह को इस युद्ध का समाचार २३ अगस्त को ही मिला था (मुस्ताद खां १११), अतः यह तिथि ठीक नहीं मानी जा सकती आधुनिक इतिहासकार सरकार (औरंगजेब भाग ३,३३५) व रेउ (भाग १,२६०) लिखा है कि यह युद्ध १९ अगस्त को हुआ था; परन्तु किसी आधार ग्रन्थ से इसकी पुष्टि नहीं होती। अतएव जोधपुर राज्य की ख्यात, जुनी बही, मूंदियाड़ की ख्यात राठौड़ दानेश्वर ग्रन्थ मुक्तावली आदि में उल्लिखित तिथि को ही मान्यता देना उचित प्रतीत होता है।

कुछ विश्वसनीय ग्रन्थों में इस युद्ध में मारे जाने वाले कुछ व्यक्तियों के नाम इस प्रकार मिलते हैं—

१. राजसिंह प्रतापसिंहोत	२. हरीसिंह गोकुलदासोत	३. रूपसिंह प्रतापसिंहोत
४. गोकुलदास प्रतापसिंहोत	५. जगतसिंह रामचन्द्रोत	६. चतुरसिंह रामसिंहोत
७. सुदरसणसिंह हरिसिंहोत	८. आन्दराम हरिसिंहोत	९. केसरीसिंह अचलसिंहोत

बीच सम्भवत: यह प्रथम व अन्तिम युद्ध था जिसमें राठौड़ों ने आमने-सामने डटकर मुगल सेना का सामना किया। इस दृष्टि से राठौड़-मुगल संघर्ष के इतिहास में इसका विशेष महत्व है। इसके बाद राठौड़ों ने सदैव पहाड़ों एवं जंगलों में छिपकर छापामार युद्ध प्रणाली का ही अनुसरण किया।[३२]

इधर दिल्ली में जब इन्द्रसिंह को यह समाचार मिला कि उसके प्रतिनिधि जोहरमल को जोधपुर में घुसने नहीं दिया गया है, तो उसने स्वयं वहां जाने का निश्चय किया और लगभग एक हजार सवारों के साथ अगस्त, सन् १६७९ ई० में दिल्ली से चलकर अपनी राजधानी नागोर में पहुंचा और वहीं रुककर अपने विरोधियों का सामना करने के लिए सैन्य संगठन करने लगा। कुछ दिन बाद उसने जोधपुर के लिए प्रस्थान किया और नागोर से चौदह कोस दूर जाकर पड़ाव डाला। यहीं से उसने अपने विरोधियों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। केवल दो ही कोस आगे स्थित आसोप नामक गांव सूरजमल के अधिकार में था। इन्द्रसिंह ने उसके पास उसी के भतीजे को भेजा और उसे जोधपुर के राठौड़ों का साथ छोड़ देने के लिए प्रेरित किया, परन्तु सूरजमल ने अपने भतीजे की बात मानना स्वीकार नहीं किया। इन्द्रसिंह आगे बढ़ता हुआ जब जोधपुर से केवल पांच कोस की दूरी पर पहुंचा तो कुछ राठौड़ सैनिक आकर उससे मिल गए और दो कोस बाद शिवपुरा नामक स्थान पर कुछ उसके सम्बन्धी सरदार भी आकर उससे मिल गए। परन्तु जोधपुर के प्रमुख सरदार इन्द्रसिंह का सामना करने के लिए तैयार थे। रविवार, ३१ अगस्त (भाद्रपद सुदि ५) को इन्द्रसिंह ने जोधपुर से केवल एक कोस

---

१०. ऊदावत हिमतसिंह फरसरामोत	११. जैतमाल चतुर्भुज सांमदासोत	१२. चांपावत महासिंह केसरीसिंहोत
१३. रामचन्द करमचन्दोत	१४. चांदावत किशनसिंह नाथसिंहोत	१५. खंगारोत नाथा
१६. भाटीरामो कूंपावत	१७. चारण किसनदास	१८. छत्रसिंह
१९. सादुलसिंह	२० जगतसिंह कांनलोत	२१. ऊदावत भोजराज
२२. भवानीसिंह नारायणदासोत		

(ख्यात २ प्र. ५३, जुनी प्र. ६६ अजितोदय सर्ग ८ श्लोक ३५–६८) राजरूपक पृ. ४२-७; वाकया पृ. ३४३-३५१; मूंदियाड़ पृ. १७८) अजितोदय में युद्ध में काम आने वाले मुसलमानों ने नाम इस प्रकार है—

पठान मोहम्मदअली व उसके तीन भाई; रसालदार नूरखां, सैयद समसुद्दीन व उसका भाई।

घायल होकर निकल जाने वाले कुछ राजपूत ये थे—

रा/जगरामसिंह, रा/सांवलदास, रा/प्रतापसिंह, रा/राजसिंह, बारवा चांदावत, आनन्दसिंह, मुकुन्दसिंह, बहादुरसिंह, चतुर्भुज (मूंदियाड पृ.१७८ व वाकया पृ. ३५१)

---

३२. लगभग सभी राजस्थानी ग्रन्थों के अनुसार राठौड़ों को प्रत्यक्ष विजय मिली थी और तहव्वरखां रणक्षेत्र छोड़ कर भाग गया था। इसके विपरीत फारसी इतिहासकारों का मत है कि शाही सेना इस युद्ध में विजयी हुई थी। परन्तु दोनों मत अतिरंजित प्रतीत होते हैं।

सम्भवत: यह युद्ध अनिश्चित ही रहा।

दूर स्थित रातानाड़ा नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला, और वहाँ से अपने प्रमुख सरदार कुपांवत सुदर्शन कीरतसिंहोत, जोधा रतनसिंह हरिसिंहोत, चौहाण मनोहर दास करमसोत, कुसलसिंह, कीरतसिंहोत, चारण सांदु गोविन्द दास, तथा व्यास सतीदास गिरधरदासोत आदि को जोधपुर के सरदारों के पास भेजा। इन लोगों ने राठौड़ सोनग तथा राम भाटी आदि को समझाया कि इन्द्रसिंह भी जोधपुर के राजवंश से सम्बन्धित है, अतः जब तक जसवन्तसिंह के राजकुमारों का स्पष्ट पता न चले, राज्य की शान्ति एवं सुव्यवस्था के लिए उसे जोधपुर का अधिपति स्वीकार कर लेने में कोई बुराई नहीं है। उन्होंने उन्हें उच्च पदों का लोभ भी दिया। जोधपुर के सरदारों ने तब विचार किया कि परस्पर लड़कर राठौड़ों का नाश करने से कोई लाभ नहीं है, और उन्होंने उनकी सलाह के अनुसार जागीरों के पट्टे लेना स्वीकार कर लिया। अगले दिन सोमवार, १ सितम्बर (भाद्रपद सुदि ६) को इन्द्रसिंह का पुत्र अजबसिंह आकर इन राठौड़ सरदारों से मिला और उन्हें अपने पिता के पास ले गया।[३३] दूसरे दिन मंगलवार, २ सितम्बर (भाद्रपद सुदि ७) को दो प्रहर दिन बीतने पर इन्द्रसिंह, ने जोधपुर के किले में निर्विरोध प्रवेश किया।[३४]

परन्तु इन्द्रसिंह का शासन सफल न हो सका। शासन की बागडोर हाथ में लेते ही उसने कई ऐसे कार्य करने आरम्भ कर दिए, जिससे न तो जनता सन्तुष्ट रह सकी और न जसवन्तसिंह के समय के राठौड़ सरदार ही। अपने शासनारम्भ में ही उसने जनता से पुनः कर वसूल किए, इस आर्थिक दबाव से असन्तोष फैलना

---

३३. वाकया २९६, ३२०, ३३०-१, ३४०, ३५१ व ३५६; ख्यात भाग २, ५४-५; प्र. जुनी. ६७; मूंदियाड़ १७८-९; फोजचन्द ९-१०; बांकीदास ७३; कविराजा ७०७-८; अजितविलास २११ अ; दस्तूर १३०; दानेश्वर १६५; वार्ता ३४ ब; आसोपा २२५-६।

अजितोदय (सर्ग ६, श्लोक १-३) में कुछ भिन्न वर्णन मिलता है। इसमें लिखा है कि जब जोधपुर में इन्द्रसिंह, के ससैन्य जोधपुर की ओर आने का समाचार मिला, तो वहाँ के राठौड़ सरदारों ने परस्पर विचार करके इन्द्रसिंह का आधिपत्य स्वीकार करने का निश्चय किया। इन्द्रसिंह ने उन्हें समझाने के लिये अपने साथियों को नहीं भेजा था। अजितोदय के विवरण से ठीक विपरीत राठौड़ा री ख्यात (५) में लिखा है कि जोधपुर के राठौड़ों ने इन्द्रसिंह से युद्ध किया था और जब वे उसे भगाने में सफल न हो सके, तब उसे नगर में प्रवेश करने दिया। परन्तु इन मतों का उल्लेख अन्य किसी ग्रन्थों में नहीं मिलता। अतः लगभग सभी अन्य ग्रन्थों में उल्लिखित मत को ही स्वीकार किया गया हैं।

टॉड (भाग २, ४६) का यह कथन कि जब इन्द्रसिंह, जोधपुर गया तो राठौड़ों ने उसे नागौर की ओर भगा दिया, नितान्त अप्रामाणिक है।

३४. ख्यात भाग २, ५५; मूंदियाड़ १७९; बांकीदास ७३; कविराजा ७०८; अजितविलास २११ अ; दस्तूर १३७; वाकया ३५७-८; मूल, १६५।

वाकया में इस घटना की तिथि सोमवार १ सितम्बर (५ शाबान) लिखी गई। चूंकि हिजरी सन् की तिथियाँ सायंकाल से बदलती हैं अतः इसी तारीख को २ सितम्बर भी स्वीकार किया जा सकता है, जो कि इन्द्रसिंह के जोधपुर प्रवेश करने की वास्तविक तिथि थी।

स्वाभाविक ही था। उसने कई पुराने व्यक्तियों से उनके वंशानुगत अधिकार छीन लिए, और जिन व्यक्तियों ने उसके इस कार्य का विरोध किया, उन्हें बलपूर्वक बन्दी बना लिया गया। जब उसके अधिकारियों ने तिवरी गांव के पुरोहित नगराज और सोजत के हाकिम व्यास देवदत्त से उनके प्रदेशों का अधिकार मांगा, तो उन्होंने विरोध किया। फलतः दोनों पक्षों में संघर्ष हो गया और नगराज व देवदत्त दोनों ही मारे गए। इतना ही नहीं, अपने सहयोगियों को उसने जागीरें बांटना भी आरम्भ कर दिया। राठोड़ नरो चन्द्रसेणोत को पोकरण तथा कूंपावत कीरतसिंह को आसोप जागीर में दिया गया। उसके इन पक्षपातपूर्ण कार्यों से जोधपुर के राठोड़ सरदार असन्तुष्ट होने लगे। जोधपुर राज्य के संस्थापक राव जोधा का निजी खड्ग जोधपुर के किले में था। इन्द्रसिंह ने इस खड्ग को तथा जोधपुर राज्य की कुलदेवी नागणेची और आनन्दघन की मूर्तियों को नागोर भेज दिया और किले में बना हुआ एक प्राचीन महल तोड़ डाला। इन वस्तुओं के प्रति जोधपुर के राठोड़ों में श्रद्धा एवं आदर की भावना थी। पूर्वजों के स्मृति चिन्हों एवं पुरानी मूर्तियों को हटाकर इन्द्रसिंह ने उनकी भावनाओं पर आघात किया। इसके अतिरिक्त जोधपुर के भंडार-गृह की बहुत सी सम्पत्ति उसने नागोर भेज दी और महल में रक्खे हुए आभूषणों पर भी अपना अधिकार कर लिया। उसके इन कार्यों से राठोड़ों को यह स्पष्ट होने लगा कि इन्द्रसिंह जोधपुर की अपेक्षा नागोर के प्रति अधिक अनुरक्त है। इन्द्रसिंह के सहयोगियों ने भी जोधपुर में लूटमार करके सम्पत्ति जमा करना आरम्भ कर दिया। राठोड़ साहब खाँ, व्यास हरदेव सिंघवी, चुहड़मल तथा पंचोली सतीदास आदि के घरों में जोधपुर के कोषागार की बहुत सी सम्पत्ति पहुँच गई इन बातों से जोधपुर के राठोड़ इन्द्रसिंह से असन्तुष्ट होकर पुनः उसके विरोधी हो गए। ७ अक्तूबर (आश्विन सुदि १३) को जब इन्द्रसिंह अपनी सेना लेकर सिवाना पर अधिकार करने के लिए गया तो वहाँ के अधिकारी जोधा सुजाणसिंह केसरीसिंहोत ने उसे परास्त करके भगा दिया।[३५]

ख्यातकारों ने लिखा है कि इन्द्रसिंह ने राज्य में मन्दिर तोड़ने तथा गौ-वध करने की अनुमति भी दे दी थी।[३६] परन्तु यह तथ्य विश्वसनीय नहीं जान पड़ता। जोधपुर की उपद्रवग्रस्त स्थिति से परिचित होने के कारण इन्द्रसिंह दिल्ली से अपनी सहायता के लिए कुछ मुगल सेना लेकर आया था। इन मुगल सैनिकों ने ही सम्भवतः जोधपुर में लूट मार की और मन्दिरों को हाँनि पहुँचाई तथा गौ-वध भी किया। परन्तु इन्द्रसिंह, को चूंकि मुगल सम्राट् की इच्छा से ही राज्य मिला था, अतः वह मुगल सेना पर रोक टोक नहीं लगा सकता था। ख्यातकारों ने सम्भवतः इन्द्रसिंह की इस विवशता का अर्थ यह लगाया कि उसी ने इन हिन्दू विरोधी कार्यों की अनुमति दी थी।

---

३५. ख्यात भाग २, ५५ ६; जुनी ६७; मूंदियाड़ १७९–८०; बांकीदास ७४; अजितविलास सं. २११ब., कविराजा ७०८; वाकया ३६८; राठौड़ां ६ व ११; फौजचन्द १०–१; आसोपा २२६–७।

३६. ख्यात भाग २, ५५; जुनी ६७।

इन्द्रसिंह का व्यक्तिगत व्यवहार भी सोनग तथा उसके साथियों के साथ अच्छा नहीं था। वह उनसे न तो प्रेमपूर्वक मिलता था, और न उन्हें समुचित आदर ही देता था। एक दिन जब सोनग अपने साथियों के साथ किले में प्रविष्ट होने लगा तो द्वार रक्षक ने उसके साथियों को रोक लिया और उसे अकेले अन्दर जाने के लिये कहा। इस पर बात बढ़ गई और वे सभी किले से लौट आये। अब तक इन्द्रसिंह के शासन की विफलता भी स्पष्ट होने लगी थी, और धीरे-धीरे उन्हें यह विदित होने लगा था कि इन्द्रसिंह का पक्ष लेकर उन्होंने भूल की है, एवं इन्द्रसिंह ने जोधपुर पर अधिकार करने से पूर्व जो वचन उन्हें दिये थे वह झूठे थे तथा उससे किसी प्रकार के उच्च पद अथवा सम्मान की आशा करना व्यर्थ है। उन्होंने परस्पर विचार कर इन्द्रसिंह का साथ छोड़ देने का निश्चय किया। दुर्गादास राठौड़ इन दिनों सिरोही राज्य में स्थित बीलसपुर नामक गांव में था। सोनग अपने साथियों सहित जोधपुर छोड़ कर दुर्गादास के पास गया और उसने यह स्वीकार किया कि इन्द्रसिंह को जोधपुर सौंपना बहुत बड़ी भूल थी। इसके लिये उसने पश्चात्ताप भी किया दुर्गादास ने उसे सांत्वना दी और पुनः संगठित होकर जोधपुर पर अधिकार करने की राय दी।[३७]

शनिवार, २३ अगस्त (२६ रजब) को औरंगजेब को दिल्ली में जब यह समाचार मिला कि पुष्कर में तहव्वर खां तथा राजसिंह के बीच भयानक युद्ध हुआ है तो उसने स्वय अजमेर जाकर जोधपुर राज्य में नियुक्त शाही सेनाओं का निर्देशन कर स्थिति सम्भालने का निश्चय किया। इस विचार से बुधवार, ३ सितम्बर, (७ शाबान) को वह दिल्ली से चला और उसी दिन जब उसका पड़ाव पालम में हुआ तो उसने शाहजादा अकबर को एक बड़ी सेना के साथ हरावल का नेतृत्व सौंपा। इस अवसर पर अकबर को एक खास खिलअत, एक बालाबन्द तथा सात घोड़े भेंट दिये गये और उसके सहयोगियों को भी यथोचित पुरस्कार दिये गये।

बृहस्पतिवार, २५ सितम्बर (२९ शाबान = आश्विन सुदि १) को बादशाह अजमेर पहुंचा और शेख मुईनुद्दीन की दरगाह पर पांच हजार रुपये निछावर करने के उपरान्त वह अनासागर झील के किनारे जहांगीरी महल में ठहरा। अगले दिन शुक्रवार, २६ सितम्बर (१ रमजान) को जब इलाहाबाद का सूबेदार हिम्मत खां शाही आज्ञानुसार अजमेर पहुंचा तो उसे भी तुरन्त अकबर के पास भेज दिया गया। विदा होते समय उसे अकबर के लिये खास खिलअत, सोने के साज सहित घोड़ा तथा जड़ाऊ सिरपेच दिया गया।[३८]

---

३७. ख्यात भाग २, ५६; मूंदियाड़ १७९; बाकीदास ७४; दानेश्वर १९५; अजितविलास २११; व. कविराजा, ७०७ व ७०९; वार्ता, ३४ अ.; राठौड़ां ६; वाकया ३६२; मूल, १९६।

दस्तूर (१३७) के अनुसार किले में प्रवेश करते समय ही इन्द्रसिंह की आज्ञा से उसके कुछ साथियों ने लवापोल के निकट सोनग व अन्य राठौड़ों का [illegible] किया जिससे नाराज होकर वे तत्काल किले से लौट गये। परन्तु यह तर्क [illegible]

३८. मुस्ताद खां १११-२; [illegible] रेउ भाग [illegible]

सका। किशनसिंह ने उसका सिर काट कर वादशाह के पास भेंज दिया। राम भाटी की इस दुःखद मृत्यु का समाचार सुनकर उसके स्वामिभक्त सेवक बीका कालिया ने किशनसिंह को ललकारा और फलस्वरूप युद्ध करते हुये वीका व किशनसिंह दोनों मारे गये।[३६]

के कार्य से अप्रसन्न होकर वादशाह स्वयं स्वर्गीय महाराजा की रानी के विरुद्ध गया। रानी ने उसे मेड़ता का परगना देना स्वीकार कर लिया, तव वह लौट आया; परन्तु शीघ्र ही मारवाड़ में पुनः उपद्रव होने के कारण उसे फिर अजमेर जाना पड़ा। परन्तु वादशाह की यात्राओं का यह विवरण नितान्त भ्रामक है। लगभग सभी समकालीन ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से लिखा है कि वादशाह ने पहली यात्रा जसवन्तसिंह के पुत्रों के जन्म से पूर्व की थी और दूसरी महाराजकुमार के दिल्ली से सुरक्षित निकल जाने के वाद। वादशाह की प्रथम यात्रा के लिये खफ़ी खां ने जनवरी का महिना स्वीकार किया है। उस समय न तो महाराजा के उत्तराधिकारियों का जन्म ही हुआ था और न जजिया ही लगाया गया था। मेवाड़ के राणा ने जोधपुर के राठौड़ों को सहयोग दिया हो; इसका प्रमाणिक उल्लेख औरंगजेव की दूसरी अजमेर यात्रा के समय भी नहीं मिलता। इस प्रकार खफ़ी खां के मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। मनूची के मत का समर्थन न तो किसी राजस्थानी ग्रन्थ से होता है और न फारसी ग्रन्थ से ही।

खफी खां तथा मनूची के अतिरिक्त मानकवि (राजविलास, १०६-१२०) ने इस घटना का जो विवरण दिया है, वह विल्कुल काल्पनिक है। उसके मतानुसार जसवन्तसिंह की मृत्यु के वाद औरंगजेव ने राठौडों से स्वर्गीय महाराजा की सम्पत्ति मांगी, और जब उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया तो शाहजादा अकवर की अध्यक्षता में उसने सत्तर हजार सैनिक उनके विरुद्ध भेजे और स्वयं भी अजमेर गया। राठौड़ों ने रात्रि में धोखे से आक्रमण करके शाही सेना को करारी हार दी। तब वादशाह ने उनको झूठा आश्वासन दिया कि वह अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य दे देगा। इस पर राठौड़ों ने राजकुमार को उसे सौंप दिया और स्वयं भी उसके साथ ही दिल्ली आये। काफी समय वीत जाने पर भी जव औरंगजेव ने अपना वायदा नहीं निभाया तो उन्होंने शाही सेना से संघर्ष किया और राजकुमारों को लेकर निकल भागे। औरंगजेव फिर दुवारा अजमेर गया। इस कथन का मूल तथ्य, कि राजकुमार जोधपुर से दिल्ली लाये गये थे, ही विल्कुल गलत है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने केवल राठौड़ों की वीरता प्रदर्शित करने के लिये ही ऐसा विवरण दिया है।

---

३६. ख्यात भाग २, ५७-८; जुनी, ६७; अजितोदय, सर्ग ६, श्लोक २०-२५; मूंदियाड़, १८०; वांकीदास, ७३; अजितविलास, २१२ अ; कविराजा ७०८; राठोड़ां; १०; फौजचन्द, १०; आसोपा, २२८।

ख्यात. व जुनी. के अनुसार इन्द्रसिंह ने औरंगजेव से कहा था कि वह जोधपुर जाकर सत्रह प्रमुख सरदारों को मरवाकर उनके सिर वादशाह को भेजेगा, इसी कारण उसने रामभाटी को मरवाया था। अजितोदय (सर्ग ६, श्लोक १५-१६) में लिखा है कि इन्द्रसिंह के वकील ने उसे सूचना दी थी कि रामभाटी खाँने जहाँ के माध्यम से अजीतसिंह के लिये जोधपुर राज्य लेने का प्रयत्न कर रहा है, अतः उसने राम भाटी का वध करवा दिया। रेऊ (भाग १,२६०) ने भी इसी मत का समर्थन किया है। परन्तु इन मतों की अपेक्षा मूंदियाड़ की ख्यात का उल्लेख अधिक तर्कसम्मत प्रतीत होता है।

बादशाह के अजमेर आने का समाचार सुनकर राठौड़ चिन्तित हो उठे और उन्होंने किसी अन्य शक्तिशाली शासक से सहायता लेने का विचार किया। मारवाड़ के अतिरिक्त इस समय उदयपुर, जयपुर व बीकानेर ये तीन प्रमुख राजपूत राज्य थे। जयपुर तथा बीकानेर के शासक अपने अपने राज्यों से दूर मुगल सेवा में रत थे, अतः उदयपुर का राणा राजसिंह ही केवल एक ऐसा व्यक्ति था जिससे सहायता के लिए प्रार्थना की जा सकती थी। अतः राठौड़ों ने राणा राजसिंह से सहायता लेने का निश्चय किया और सिंघवी दयालदास तथा राठौड़ गोपीनाथ दुरजणसिहोत के द्वारा राणा को पत्र भेजकर अजीतसिंह को आश्रय देने की प्रार्थना की। राणा ने अपने अधिकारियों को बुलाकर विचार-विमर्श करके जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी को प्रश्रय देने का निश्चय किया। यह कहना कठिन है कि राणा ने यह निर्णय क्यों किया? डॉ. शर्मा का कथन है कि संभवतः उसने यह सोचा हो कि चूंकि मारवाड़ एवं मेवाड़ की सीमाएँ एक दूसरे से मिली हुई हैं, अतः मारवाड़ पर शाही अधिकार हो जाने से उदयपुर का उत्तर पश्चिमी भाग अरक्षित हो जाएगा और उस पर किसी भी समय सरलतापूर्वक शाही आक्रमण हो सकेगा। इसके साथ ही संभव है सीसोदियों को यह आशंका होने लगी हो कि बादशाह राठौड़ों के प्रमुख राज्य मारवाड़ पर अधिकार कर लेने के बाद मेवाड़ का भी विनाश करेगा। कारण कुछ भी रहा हो, राणा राजसिंह ने अपने निश्चय के अनुसार राठौड़ों को यह उत्तर भेजा कि वे अजीतसिंह को मेवाड़ में ले आएं। फलतः अजीतसिंह को लेकर राठौड़ सरदार राणा की सेवा में उपस्थित हुए और राणा को उन्होंने जेवर युक्त एक हाथी, ग्यारह घोड़े, एक तलवार, एक रत्नजटित कटार तथा दस हजार चांदी के रुपये भेंट दिये। राणा ने भी उन्हें सहायता देने का आश्वासन दिया।[४०]

औरंगजेब को जब यह समाचार मिला कि राणा राजसिंह ने जसवन्तसिंह के पुत्र को आश्रय दिया है, तो उसने राणा के नाम इस आशय का एक फरमान भेजा कि अजीतसिंह को शाही दरबार में भेज दिया जाय। परन्तु राणा ने उसकी इस आज्ञा का पालन नहीं किया। औरंगजेब ने राणा को तीन पत्र और भेजे, परन्तु राणा ने फिर भी कोई ध्यान नहीं दिया।[४१] राणा को इस प्रतिक्रिया से औरंगजेब चिन्तित हो उठा। इस संघर्ष में सीसोदियों के प्रवेश से समस्या गम्भीर हो जाने की आशंका थी। इस समय औरंगजेब की सैनिक शक्ति का प्रमुख भाग दक्षिण में व्यस्त था। वहाँ पर न तो मरहठों को पूरी तरह से दबाया जा सकता था और न बीजापुर व गोलकुण्डा पर ही आधिपत्य स्थापित हो सका था। इस स्थिति में मेवाड़ तथा मारवाड़ के परस्पर मिल जाने से औरंगजेब के लिए राजपूताने में भयंकर स्थिति उत्पन्न हो सकती थी और तब दक्षिण की सेनाओं को आर्थिक अथवा सैनिक सहायता

---

४०. राजविलास. १२०-१२५ व २०१-२; ख्यात भाग २,५६; जुनी. ६७; वीर, भाग २,४६६; टॉड भाग १, ३०२, सरकार भाग ३, ३३७-६; मेवाड. १६८-६; ओझा. भाग-४ खंड २,४८८-६।

४१. राजविलास. १२७-८; ओझा. भाग ४, खंड २,४८६-६०; मेवाड़ १६६।

सैनिकों को मार डाला। इसी वर्ष ख्वाजा सालेह को भगाकर राठौड़ों ने मंडोर पर भी थोड़े से समय के लिए अधिकार कर लिया, और सन् १६८६ ई० में नंदिया नामक गाँव में नाहर खाँ नामक मुगल अधिकारी को मार डाला।[122] इस प्रकार यद्यपि राठौड़ सरदार यत्र-तत्र लूट मार करने, रुपया वसूलने मुगल अधिकारियों को मारने अथवा कहीं-कहीं क्षणिक अधिकार, पा लेने के अतिरिक्त कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सके, फिर भी जोधपुर परगने में शान्ति स्थापित नहीं हो सकी, और सन् १६८१ ई० से १६८६ ई० तक लगातार इस प्रकार की घटनाओं के होते रहने के कारण वहाँ की शासन व्यवस्था तथा शाही सम्मान को काफ़ी धक्का लगा।

सोजत—

जोधपुर के दक्षिण-पूर्व में स्थित सोजत नामक परगने में औरंगजेब ने शिहाबुद्दीन खाँ को फौजदार नियुक्त किया था। उसकी नियुक्ति के कुछ दिन बाद सन् १६८१ ई० के आरम्भ में यहाँ राठौड़ों ने विरोध किया जिसका उसने दृढ़ता-पूर्वक सामना किया। लगभग बीस राजपूत युद्ध-क्षेत्र में मारे गए। [illegible] कल्याणदासोत पकड़ा गया और उसे बादशाह के पास भेज दिया गया। इस युद्ध का समाचार औरंगजेब को सोमवार, २५ अप्रेल सन् १६८१ ई० (१६ रबीउस्सानी) को मिला।[123] परन्तु राठौड़ परास्त होकर भी हतोत्साह न हुए और पुनः [illegible] होने लगे। इसी वर्ष अगस्त (भाद्रपद) के महीने में विद्रोही राठौड़ों ने [illegible] हरनाथसिंह तथा चांपावत कान्ह के नेतृत्व में वगड़ी[124] नामक स्थान को लूटा और फिर सोजत पर आक्रमण कर दिया। यहाँ का फौजदार शिहाबुद्दीन [illegible] शाही आज्ञानुसार इनायत खाँ की सहायता के लिए जोधपुर गया हुआ था और उसकी अनुपस्थिति में सरदार खाँ कार्य भार सम्भाल रहा था। सरदार खाँ ने राठौड़ों का यथाशक्ति सामना किया; परन्तु सैन्य शक्ति की कमी होने के कारण सफल न हो सका और घायल होकर भाग गया। युद्ध में राठौड़ों के पक्ष के [illegible] कान्ह, चांपावत हरनाथ सिंह, चांपावत चतुर्भुज, सोहड़ विष्णु, [illegible] मारे गए। औरंगजेब को जब सोजत में शाही सेना की इस हार का समाचार मिला तो उसने शिहाबुद्दीन खाँ को तुरन्त सोजत लौटने की आज्ञा दी। वह [illegible] जोधपुर से वापस आया और उसने राठौड़ों पर आक्रमण करके उन्हें [illegible] इस पराजय के बाद राठौड़ों का नेता सोनग पोकरण की ओर [illegible] अगले वर्ष सन् १६८२ ई० में फरवरी तथा पुनः जुलाई में राठौड़ों के [illegible]

---

१२२. [illegible] ; फौजचन्द, ४४; मूंदियाड़, [illegible] ७२; अजित विलास, २१३ अ।

१२३. जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष २४, भाग २, ५७, १४६ व १८५।

१२४. यह स्थान सोजत से [illegible] मील पूर्व की ओर है।

१२५. अखबारात, [illegible], औरंगजेब, वर्ष २४, ३२-३, ४७; राजरूपक [illegible] फौज चन्द २७ टॉड. [illegible] भाग ४, [illegible]

विरोध किया; परन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली।[१२६] कुछ महीनों के बाद चांपावत उदयसिंह ने सारण नामक गांव में थानेदार सीदी से पेशकश वसूल किया। अगला वर्ष शान्तिपूर्वक बीता, लेकिन सन् १६८४ ई० के आरम्भ में ही सोमवार, १७ मार्च (चैत्र सुदि ११, संवत् १७४१) को राठौड़ों ने ऊदावत जगराम के नेतृत्व में सोजत पर आक्रमण करके यद्यपि मुगल सेनापति मेड़तिया सादूल को मार डाला, तथापि सोजत पर उनका अधिकार न हो सका।[१२७] फलत: राठौड़ों ने और तैयारी करके पुन: सोजत लेने का प्रयत्न शुरू कर दिया और यत्र-तत्र मुगल थाने लूटने लगे। सोजत की सुरक्षा के लिए बादशाह की ओर से नियुक्त राठौड़ सुजानसिंह उन्हें दबाने में असमर्थ रहा। यह समाचार पाकर इनायत खाँ ने शेख फजल को एक हजार सैनिकों के साथ सोजत की ओर भेजा। सैनिक सहायता आ जाने से शाही सेना की स्थिति अच्छी हो गई। फलत: मंगलवार, २२ जुलाई, सन् १६८४ ई० (द्वितीय श्रावण वदि ६) को जब भाटी महेश के नेतृत्व मे राठौड़ों ने सोजत पर आक्रमण किया तो उन्हें परास्त होना पड़ा।[१२८] इस प्रकार सोजत परगने में सन् १६८१ ई० व सन् १६८४ ई० में दो भयानक युद्ध हुए जिसमें यद्यपि मुगल सेना की भी क्षति हुई, परन्तु राठौड़ सोजत पर अधिकार करने में सफल न हो सके। परगने के अन्य भागों में भी वे सदैव लूटमार करने में व्यस्त रहे।

जैतारण —

जोधपुर के पूर्व में तथा सोजत के उत्तर में स्थित जैतारण नामक परगने में सन् १६८१ ई० में तो शान्ति रही, परन्तु अगले ही वर्ष रविवार, २३ जुलाई सन् १६८२ ई० (श्रावण वदि १४ संवत् १७३९) को राठौड़ों ने उदावत जगराम के नेतृत्व में यहाँ इतना जोरदार आक्रमण किया कि वहाँ का थानेदार नूरअली उनका सामना न कर सका और भाग गया। राठौड़ ने वहाँ अपना अधिकार कर लिया और खूब लूट-मार की। परन्तु शीघ्र ही कुछ और शाही सैनिक वहाँ आये और उन्होंने राठौड़ों को भगा दिया। राठौड़ों ने केवल तीन महीने बाद मंगलवार, १७ अक्तूबर (कार्तिक वदि १२) को ऊदावत जगराम के ही नेतृत्व में पुन: जैतारण को जा घेरा। इनायत खाँ ने समाचार पाते ही तुरन्त एक बड़ी सेना के साथ अपने पुत्र नूरअली को उधर भेजा। जैतारण में शाही सेना की सहायता के लिए जोधपुर से सेना आने का समाचार जब राठौड़ों को मिला तो मोहकमसिंह मेड़तिया तथा हिम्मतसिंह आदि राठौड़ सरदार भी अपनी-अपनी सेना लेकर जगराम की सहायता के लिए जैतारण जा पहुँचे। बृहस्पतिवार, १६ नवम्बर, सन् १६८२ (मार्गशीर्ष वदि १२) को वहाँ भयानक युद्ध हुआ, जिसमें दोनों पक्षों को बहुत हानि उठानी पड़ी। शाही सेना को सफलता न मिलते देखकर असद खाँ ने अजमेर से कुछ और

---

१२६. राजरूपक. २१५-२१८; फौजचन्द. ३०; अजितविलास. २१६ अ।
१२७. राजरूपक. २२४, २४०-२; ख्यात. भाग २,७१; मूंदियाड़. १८८-९।
१२८. राजरूपक. २५६-६१; ख्यात. भाग २, ७२; मूंदियाड़. १९०; राठौड़ा-२४।

सैनिकों को जैतारण की ओर भेजा। अगस्त के महीने में फिर युद्ध हुआ जिसमें विद्रोही राठौड़ परास्त हुए और शान्ति स्थापित हुई। अगले वर्षों में भी जैतारण में यत्र–तत्र छुट–पुट उपद्रव होते रहे।[१२६] इस प्रकार इस परगने में राठौड़ों को अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली और शाही अधिकारी उन्हें बहुत कठिनाई से दबा सके।

मेड़ता

सन् १६९१ ई० में जैतारण के उत्तर में स्थित मेड़ता परगने में राठौड़ एक बड़ी सख्या में एकत्र हो रहे थे। चूंकि यह परगना अजमेर के समीप था, अतः इस समाचार से असद खां चिन्तित हो उठा, और उसने अपने पुत्र एतक़ाद तथा सरदार खां को एक बड़ी सेना देकर मेड़ता जाने का आदेश दिया। राठौड़ों को जब इस सेना के आने का समाचार मिला तो वे डीडवाना की ओर भाग गये। एतक़ाद खां ने डीडवाना तक उनका पीछा किया। राठौड़ उसे धोखा देकर अन्य मार्ग से पुनः मेड़ता लौट आये और रविवार, ३० अक्तूबर (कार्तिक वदि १४) को उन्होंने मेड़ता को खूब लूटा, और फिर वहाँ से आठ-दस कोस की दूरी पर स्थित इन्दावड़ नामक स्थान में जाकर रुक गये। एतक़ाद तेजी से लौटा और अपने सिपाहियों को साथ लेकर उसने रात्रि में ही इनका पीछा किया। राठौड़ और आगे भागे। पांच कोस चलने के बाद उन्होंने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित कर लिया। एक भाग जैतारण की ओर चला गया और दूसरे ने सम्भवतः डीगराणा नामक स्थान पर मगलवार, १ नवम्बर (कार्तिक सुदि १) को शाही सेना का सामना किया। इस युद्ध में लगभग पांच सौ राजपूत तथा तीन सौ मुगल सैनिक मारे गये और राठौडों को परास्त होकर भागना पड़ा। शाही सैनिकों ने दो-तीन कोस तक उनका पीछा किया और शत्रु के कुछ ऊंट पकड़कर वापस आ गये। औरंगजेब को इस युद्ध का समाचार १४ नवम्बर (१३ ज़िल्काद) को मिला।[१३०]

---

१२६. राजरूपक. २१५-६; २२४-८ व २४०; मूंदियाड़ १८७ व १८८; फौजचन्द. ३०; अजित विलास. २१६ अ।

१३०. फ़ुतूहात. ८५ अ–८६; मुस्ताद खां. १३२; राजरूपक. २०२-८; अजितोदय. सर्ग ११ श्लोक ३३-४३; ख्यात भाग २, ६८-६; मूंदियाड़. १८७; वीर. भाग २, ८३०-१; जुनी. ६८-६; बांकीदास ३६; दस्तूर. १४२; अजितविलास. २१६ अ; राठौड़ा १९-२०; फौजचन्द. ३५ अ; कविराज ५२१-२।

इस युद्ध में मारे जाने वाले प्रमुख व्यक्ति इस प्रकार थे।

१ चांपावत अजबसिंह	६. मेड़तिया गोपीनाथ	१२. जोधा अजबसिंह
२. ,, सबल सिंह	७. ,, सादुल	१३. मंडलो रामसिंह
३. ,, नाहर खां	८. ,, कुशलसिंह	१४. भाटी राम
४. ,, हरी सिंह	९. ,, अर्जुन	१५. कछवाहो आनन्द सिंह
५. ,, रामसिंह	१०. ,, घासी राम	१६. साहणी महेश दास।
	११. ,, अनूप सिंह	

इस पराजय के बाद लगभग डेढ़ वर्ष तक राठौड़ों ने पुनः मेड़ता की ओर जाने का साहस नहीं किया। इसके बाद रविवार, २२ अप्रेल, सन् १६८३ ई. (वैशाख सुदि ६, संवत् १७४०) को मेड़तिया मोहकमसिंह ने तथा बुधवार, २५ मार्च, सन् १६८५ ई. (चैत्र सुदि, १ संवत् १७४२) को बाला अनैसिंह ने मेड़ता पर जोरदार आक्रमण करके शाही सैनिकों का संहार किया, परन्तु वे मेड़ता पर अधिकार न कर सके।[131] इसी वर्ष इस परगने के राहण, गठीयो तथा गंगराणा नामक गांवों में ऊदावत अर्जुनसिंह के नेतृत्व में किये गये आक्रमणों को नूरअली ने तथा बांवला नामक गांव में ऊदावत जगराम के नेतृत्व में किये गये धावों को मुहम्मदअली ने रोका।[132] इस प्रकार इन वर्षों में मेड़ता में सदैव अशान्ति बनी रही।

डीडवाना

जोधपुर राज्य की उत्तरी सीमा पर स्थित डीडवाना को लूटने के विचार से राठौड़ सोनग अगस्त, सन् १६८१ ई. (भाद्रपद, संवत् १७३८) में उस ओर गया, परन्तु मार्ग में ही नागौर के शासक इन्द्रसिंह के गुमास्तों ने उसे बीकानेर की ओर भगा दिया।[133] राठौड़ों ने कुछ महीनों के बाद चंपावत अजबसिंह के नेतृत्व में फिर डीडवाना पर आक्रमण किया और वहां के थानेदार दीनदार खां कायमखानी से 'पेशकश' वसूल किया।[134]

पोकरण व फलोदी

जून, सन् १६८१ ई. में जब जोधपुर के निकट शिहाबुद्दीन खां ने राठौड़ों को परास्त किया तो वे जोधपुर के उत्तर-पश्चिम में स्थित पोकरण व फलोदी की तरफ जाकर लूटमार करने लगे। दो महीने बाद सोजत में परास्त होकर राठौड़ सोनग भी इस ओर आ गया और उसने कई गांव लूटे। इसी समय पोकरण के थानेदार चन्द्रसेन ने राठौड़ों का साथ देने का निश्चय किया और उसने शाही सेवा छोड़ दी तथा विद्रोही सरदार राठौड़ सोनग को अपने यहां आश्रय दिया। पोकरण के उपद्रवों का हाल सुनकर औरंगजेब ने इनायत खां को उधर जाने की आज्ञा दी और उसकी सहायता के लिये उसके पास कुछ और सैनिक भी भेजे। शाही आज्ञानुसार इनायत खां ने यहां आकर शान्ति स्थापित की।[135] अगले वर्ष जुलाई-अगस्त में भाटी रामा ने तथा सन् १६८३ ई. के अन्त में सांवतसिह, खींवकरण, तेजकरण तथा रामसिंह आदि ने फलोदी तथा खींवसर में कई मुगल थानों को लूटा। सन्

---

१३१. राजरूपक २३१-२ व २७८-८१।

१३२. फौजचन्द ४० व ४४; राजरूपक. २८८।

१३३. अखबारात, लंदन संग्रह, औरंगजेब, वर्ष २४, १४८।

१३४. अजीतोदय. सर्ग ११, श्लोक ३२-३; ख्यात. भाग २, ६८; जुनी. ७२; मूंदियाड़ १८६-७; बांकीदास ३६; अजितविलास. २१६ अ; कविराज. ५२१।

१३५. अखबारात, लंदन संग्रह औरंगजेब, वर्ष २४, १२, २२, ३४७।

१६८६ ई. में विद्रोही राठौड़ों ने फलोदी के शाही अधिकारियों से रुपया भी वसूल किया।[१३६] इस प्रकार जोधपुर राज्य के इस भाग में भी सदैव अशान्ति बनी रही।

पाली

जोधपुर के दक्षिण में पाली नामक परगने में सन् १६८२ ई. में नूरअली ने विद्रोही बाला विशनदास को परास्त किया। राठौड़ों ने संगठित होकर अगले ही वर्ष जब पुन: पाली पर आक्रमण किया तो मुगल सेनाध्यक्ष अब्दुल्ला खां अपने पांच सौ सवारों को लेकर आगे बढ़ा, परन्तु भाटी रामसिंह ने उसे आक्रमण करने का अवसर न देकर मंगलवार, ३ अप्रेल (वैशाख बुदि २ संवत् १७४०) को बड़े वेग के साथ उस पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि अब्दुल्ला खां अपने अन्य तीस सैनिको के साथ युद्ध क्षेत्र में मारा गया, तथापि राठौड़ पाली पर अधिकार न कर सके। इसके बाद भी वे परगने में लूटमार करते रहे। सन् १६८४ ई. के अन्तिम दिनों में जब उन्होंने पाली में बहुत से जानवर लूटे तो मुहम्मद अली उनके विरुद्ध भेजा गया। खारला (खारड़ा)[१३७] नामक स्थान पर सोमवार, १७ दिसम्बर सन् १६८४ ई. (पौष सुदि ९) को दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई जिसमें दोनों पक्षों को काफ़ी क्षति हुई। परन्तु शाही अधिकारी राठौड़ों को दबाने में समर्थ न हो सके और बाद के वर्षों में भी अन्य परगनों की भांति इस परगने में भी लूटमार की घटनाएं होती रही।[१३८]

सिवाना

पाली के पश्चिम में सिवाना का परगना था। सन् १६८१ ई में इस परगने के वीटो जी नामक गांव को राठौड़ सोनग के नेतृत्व में राठौड़ों ने सफलतापूर्वक लूटा।[१३९] सोमवार, ४ सितम्बर, सन् १६८२ ई. (भाद्रपद सुदि १३ संवत् १६३९) को बाला राजपूतों ने सोफलसर[१४०] नामक गांव में फौजदार इनायत खां के पुत्र नूरअली को परास्त किया।[१४१] लगभग डेढ़ वर्ष बाद राठौड़ों ने बुधवार, २५ मार्च, सन् १६८४ ई. (चैत्र सुदि १, संवत् १७४२) को सिवाना में पुरदिल खां को परास्त करके सिवाना पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[१४२] इस प्रकार सिवाना में राठौड़ों को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

---

१३६. फौजचन्द. ३० व ३४; राजरूपक. २९०; मूंदियाड़. १८८-९; अजितविलास. २१६ व; राठौड़ा २३,-२४।

१३७. यह स्थान पाली से लगभग ग्यारह मील उत्तर की ओर है।

१३८. राजरूपक. २११, २२९-३१; व २३५ ७।

१३९. दस्तूर १४१।

१४०. यह स्थान सिवाना से लगभग सात मील पूर्व की ओर है।

१४१. राजरूपक. २२१-३; मूंदियाड़ १८८; अजित विलास. २१६. व।

१४२. अजितोदय. सर्ग १२; श्लोक २३-३८; ख्यात. भाग २, ७३; अजितविलास. २१८ व; फौजचन्द. ४२; राठौड़ा २६।

मुस्ताद खां (१५६) ने लिखा है कि राठौड़ों ने १४ अप्रेल को सिवाना पर अधिकार किया था। परन्तु यह सम्भवत: वह तिथि है जब यह समाचार बादशाह को मिला था। सभी ख्यातों में २५ मार्च का ही उल्लेख हैं। अत: उसी को स्वीकार किया गया है।

जालोर—

पाली तथा सिवाना के दक्षिण में स्थित जालोर नामक परगना गुजरात के निकट था, अतः गुजरात एवं मारवाड़ तथा दिल्ली के बीच आने-जाने वाले प्रायः सभी व्यापारी यहाँ से होकर जाते थे। फलतः राठौड़ों को यहाँ लूटमार की सुविधा अधिक थी। इसलिये उनका ध्यान इधर विशेष रूप से आकर्षित रहा और वे अक्सर व्यापारियों को लूटते रहे। सन् १६८२ ई. में राठौड़ों ने भादराजन[१४३] पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। नूरअली सम्भवतः इन्हीं दिनों सिवाना से लौटा था। उसे पुनः एक बड़ी सेना देकर भादराजन भेजा गया। परन्तु सिवाना की भाँति यहाँ भी उसे सफलता न मिल सकी और जोधा उदयभान ने उसे भागने पर बाध्य कर दिया।[१४४] इस समय से लेकर सन् १६८४ ई. के अन्त तक बिना किसी हस्तक्षेप के यहाँ राठौड़ों का प्रभुत्व बना रहा। सन् १६८५ ई. के आरम्भ में इनायत ख़ाँ ने नूरअली को भादराजन पर आक्रमण करने के लिये पुनः भेजा। शनिवार, ३१ जनवरी, सन् १६८५ ई. (माघ सुदि ७, संवत् १७४१) को भादराजन में घमासान युद्ध हुआ, जिसमें लगभग पाँच सौ मुग़ल-सैनिक मारे गये तथा एक हजार घायल हुये और राठौड़ों ने मुग़लों से एक सौ ऊँट, एक तोप तथा बहुत सा गोला-बारूद छीन लिया। शाही सेना की असफलता का समाचार सुनकर इनायत ख़ाँ ने अपने सरे पुत्र मुहम्मद अली को उधर भेजा, परन्तु उसे भी सफलता न मिली।[१४५] ले वर्ष भादराजन पर पुनः आक्रमण किया गया, परन्तु शाही सेना असफल ही ही। भादराजन के अतिरिक्त परगने के अन्य क्षेत्रों में भी छुटपुट घटनाएँ होती रहीं। रविवार, ११ अप्रेल, सन् १६८६ ई. (वैशाख बदि १४, संवत् १७४३) को राठौड़ों ने जालोर पर आक्रमण किया, जिसके फलस्वरूप वहाँ का सेनानायक बिहारी फ़तह ख़ाँ बिना लड़े ही भाग खड़ा हुआ।[१४६] इस प्रकार सिवाना की भाँति जालोर में भी राठौड़ों को आशातीत सफलता मिली।

अन्य स्थानों की घटनाएँ—

सन् १६८३ ई. में मगरा में ऊदावत जगराम, राजसिंह, जोधा भीम तथा शिवसिंह आदि बहुत से राठौड़ों को एकत्र होता देखकर असद ख़ाँ ने उन्हें दबाने के लिये अजमेर से अपने पुत्र को भेजा। परन्तु राठौड़ों ने उनकी रसद पहुंचने का मार्ग बन्द करके उन्हें वापस भाग जाने के लिये विवश कर दिया। अगले वर्ष सन् १६८४

---

१४३. यह स्थान जालोर से लगभग २५ मील उत्तर-पूर्व की ओर है।

१४४. ख्यात. भाग २, ६९; मूंदियाड़. १८७; अजित विलास. २१६ अ।

१४५. राजरूपक. २६६-७४; ख्यात. भाग २, ७०; जुनी ७५; अजितोदय. सर्ग १२, श्लोक २-६; फ़ौजचन्द ३९; राठौड़ा. २४।

१४६. राजरूपक २९२-५; ख्यात. भाग २, ७३-४; मूंदियाड़. १०२; फ़ौजचन्द ४४-५ अजितविलास. १९ अ।

ई. के आरम्भ में मगरा के इन विरोधियों को दबाने के लिये नूरअली को भेजा गया। उसने मिणियारी नामक गाँव में मंगलवार, २५ मार्च (वैशाख बदि ५) को ऊदावत रूपसिंह तथा वारहठ केसरीसिंह आदि को परास्त किया। एकाध महीने के लिये राठौड़ शान्त हो गये, परन्तु कुछ ही महीनों के बाद राठौड़ों ने पुन: शक्ति संगठित की और वे इतना अधिक उपद्रव करने लगे कि उन्हें दबाने के लिये इनायत ख़ाँ ने ग्यारह हज़ार सैनिकों के साथ वहलोल ख़ाँ नामक शाही सेनापति को भेजा। चांपावत रामसिंह और सामन्तसिंह ने डटकर उसका सामना किया। इस युद्ध में लगभग एक हजार मुग़ल सैनिक मारे गये और राठौड़ों के केवल दो सौ व्यक्ति मारे गये।[१४७] इस प्रकार इस प्रदेश में शाही सेनाएँ प्राय: असफल रहीं।[१४८]

राठौड़ों के उपद्रव मारवाड़ तक ही सीमित नहीं थे। सन् १६८१ ई. में उन्होंने मेवाड राज्य में स्थित शाहपुरा नामक स्थान में लगभग एक सौ घर जला डाले[१४९] और सन् १६८६ ई. में इसी राज्य के मालपुरा नामक स्थान को लूटा।[१५०] मंगलवार, ३१ जनवरी, सन् १६८२ ई. (फाल्गुन सुदि ३, संवत् १३८) को पुर मांडल लूटा गया। सन् १६८१ ई, सन् १६८२ ई. व सन् १६८४ ई. में राठौड़ों के अजमेर की ओर जाने का उल्लेख भी मिलता है।[१५१] सन् १६८५ ई. में तोडा में राठौड़ों ने मुग़लों का विरोध किया। इनायत ख़ाँ ने नूरअली तथा मुहम्मद अली को उधर जाकर उन्हें दबाने का आदेश दिया था। इन दोनों ने मार्ग में महेव नामक गाँव में भाटी सवलसिंह को परास्त करके वन्दी बना लिया। परन्तु तोड़ा में उन्हे सम्भवत: विशेष सफलता नहीं मिली और स्थिति में सुधार नहीं हुआ।[१५२] गुजरात भी राठौड़ों के आतंक से सुरक्षित न रह सका। उन्होंने सन् १६८२ ई. में चांपावत उदयसिंह, करणोत खींवकरण, मेड़तिया मोहकमसिंह तथा ऊदावत

१४७. राजरूपक. २३१-३, २४२-३, २४९-५१; फौजचन्द, ३४ व ३६; ख्यात भाग २, ७१-२; मूंदियाड़. २८९; अजिविलास. २१६ व।

१४८. सन् १६८१ ई० में मकराणा, (ख्यात. भाग २, ६८; जुनी ७१; मूंदियाड़ १८७; कविराज ५२१; बांकीदास ३६; अजितविलास. २१६ अ); सन् १६८२ ई० में वीलाड़ा एवं पीपाड़ (अजितविलास २१६ अ; राठोड़ा २२); नवम्बर सन् १६८६ ई० में सांचोर (राजरूपक. २८६-७; फौजचन्द ४३: राठोड़ा २६); में उपद्रव हुए। सन् १६८१ ई० में खेतावत (दस्तूर. १४१): सन् १६८४ ई० में उत्तरां: सन् १६८५ ई० में राड़द्रह तथा सन् १६८६ ई० में देईसर (राजरूपक. २५२,२८६ व २८५) नामक गाँव लूटने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त सन् १६८१ ई० में नाडेल (सम्मभवत: नाडोल) की मुगल चौकी लूटी गई। (दस्तूर. १४१) तथा सन् १६८५ ई० में गोड़वाड़ प्रदेश में उपद्रव होते रहे। (राजरूपक. २८७)

१४९. दस्तूर १४१।

१५०. ख्यात. भाग २. ७८; मूंदियाड़. १९२-३।

१५१ राजरूपक. २१२. २१३-४ व २३८; मुस्ताद खां. १३३; मूंदियाड़ १८७; अजितविलास. २१६ अ; फौजचन्द. ३०; दानेश्वर, २०२; अजितोदय. सर्ग ११; श्लोक. ४५।

१५२. राजरूपक. २७६-८; ख्यात. भाग २, ७३; मूंदियाड. ९१; अजितविलास. *१८ व; फौजचन्द ४०-१; राठोड़ा *५।

राजसिंह आदि ने गिराजु नामक गांव को लूटा। यह समाचार पाकर जब सैयद मुहम्मद नामक शाही अधिकारी उनके दमन के लिये गया तब राठोड़ भाग गये। सैयद मुहम्मद ने उनका पीछा किया। बृहस्पतिवार, १७ अगस्त, सन् १६८२ ई. (भाद्रपद वदि ६) को नाडूर नामक स्थान पर दोनों की मुठभेड़ हुई जिसमें राठोड़ों को काफी हानि उठानी पड़ी और शाही सेना के केवल सात व्यक्ति मारे गये।[153]

शाही अधिकारियों ने भी राठोड़ों को दबाने का पूर्ण प्रयत्न किया। शक्ति प्रयोग के अतिरिक्त उन्हें पद व धन का लोभ देकर उन्हें अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया गया। कुछ राठोड़ों ने लोभ में पड़कर राठोड़ों का साथ छोड़कर शाही सेवा स्वीकार भी कर ली। मोहकमसिंह मेड़तिया तथा उदयभाण मुकुन्ददासोत मुगल सेवा में चले गये और क्रमशः तोसीणा व भादराजन में सरकारी कर्मचारी नियुक्त किये गये।[154] परन्तु ऐसे राठोड़ों की संख्या नगण्य थी। इसके विपरीत कुछ ऐसे राठोड़ सरदार भी थे जो पहले मारवाड़ के राठोड़ों के सहयोगी नहीं थे, परन्तु बाद में किसी विशेष कारणवश अथवा स्वदेश-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर उनके साथ हो गये थे। सन् १६८१ ई. में मोहकमसिंह कल्याणदासोत तथा सन् १६८४ ई. में राठोड़ संग्रामसिंह ने शाही सेवा छोड़ दी और सन् १६८२ ई. में ऊदावत जगराम मेवाड़ से तथा सन् १६८५ ई. में जैतावत अर्जुनसिंह इन्द्रसिंह की सेना से अलग होकर मारवाड़ आ गये।[155] इन लोगों के आ जाने से राठोड़ों की शक्ति में वृद्धि हो जाया करती थी।

सन् १६८१ ई. में शाही आज्ञानुसार असद खां ने राज्य में शान्ति व सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये राठोड़ों से सुलह करने का निश्चय किया और इसके लिये राणा जयसिंह के भाई भीमसिंह के माध्यम से बातचीत प्रारम्भ करवाई। उस समय राठोड़ दुर्गादास दक्षिण में था और उसकी अनुपस्थिति में राठोड़ सोनग राठोड़ों का नेतृत्व कर रहा था। उसने असद खां के प्रस्ताव को स्वीकार किया और सन्धि की शर्तें तय करने के लिये अजमेर की ओर गया। परन्तु अकस्मात् मार्ग में ही पूंजलोता नामक गांव में उसकी मृत्यु हो गई। यह समाचार सुनकर असद खां ने अपना विचार बदल दिया। उसका अनुमान था कि सोनग की मृत्यु के उपरान्त योग्य नेतृत्व के अभाव के कारण राठोड़ निर्बल हो जायेंगे। परन्तु उसका अनुमान ठीक न निकला। राठोड़ों ने सोनग के भाई अजबसिंह के नेतृत्व में विरोध पूर्ववत् जारी रखा। अजबसिंह की मृत्यु के बाद भी चांपावत उदयसिंह ने यह कार्यभार सम्भाला।[156] इस प्रकार मारवाड़ के बखेड़े शिथिल नहीं हुए।

---

१५३. राजरूपक २१३-२०; मूंदियाड़. १८८; ख्यात. भाग २, ७०; अजितविलास २१६ अ।

१५४. मूंदियाड़. १८८ व १८६; राठोड़ा २३-४।

१५५. राजरूपक २०२. २६१; ख्यात. भाग. २ ६७-८, ६६, ७०; मूंदियाड़ १८५-६. १८७, १६०; फौजबन्द २७, ३८-६, ४०।

१५६. राजरूपक १६६-२०१; ख्यात. भाग २, ६८; सूनी. ७२; मूंदियाड़ १८६; अजितोदय सर्ग ११, श्लोक ३०-१; वीर भाग २, ८३१; फौजबन्द २३; अजितविलास २१५ अ व; राठोड़ा

उधर मेहराब खां के जोधपुर की ओर आने का समाचार सुनकर अजीतसिंह व्यग्र हो उठा। जोधपुर पर पुनः शाही अधिकार करने का प्रयास वह सहन न कर सका, और उसने आगे बढ़कर मेहराब खां को रोकने का निश्चय किया। मेहराब खां मेड़ता से केवल सात कोस दूर पहुंचा था कि अजीतसिंह ने उस पर आक्रमण कर दिया, परन्तु वह सफल न हो सका और मेड़ता पर शाही अधिकार हो गया। इस युद्ध का समाचार सुनते ही बादशाह ने शाहजादा अजीमुश्शान तथा जुम्दतुलमुल्क खानखाना समसामुद्दौला को एक बड़ी सेना के साथ जोधपुर जाने का आदेश दिया। मार्ग में इस सेना ने राजपूतों के धन-जन को बहुत क्षति पहुंचाई, कस्बों और गांवों को जलाया और लूटमार करती हुई पीपाड़ तक पहुंच गई। फलतः राजपूत अपनी रक्षा के लिये पहाड़ों व जंगलों की ओर चले गये।[३२]

जब अजीतसिंह ने देखा कि उसके पास शाही सेना का विरोध करने के लिये पर्याप्त शक्ति नहीं है तो उसने अपने वकील के द्वारा एक अर्जदाश्त पांच अशर्फियां और पांच डाली अनार भेजे जो सोमवार, २९ दिसम्बर (१५ शव्वाल) को बादशाह के पास पहुंचे। परन्तु बादशाह की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। इस बीच आम्बेर पर शाही अधिकार हो चुका था और बहादुरशाह अजमेर की ओर बढ़ रहा था। यह समाचार पाकर राजा ने राठौड़ मुकुन्दसिंह, सिंघवी तख्तमल व पंचोली उदयराज को बादशाह के पास भेजा। ये लोग मुगल-सम्राट से मिले, उसे अशर्फियां भेंट कीं, और अजीतसिंह को क्षमा करने के लिये निवेदन किया। उनकी प्रार्थना के फलस्वरूप सोमवार, २६ जनवरी (१४ जिल्काद) को अजीतसिंह के पास एक फरमान भेजकर बहादुरशाह ने उसे दरबार में आने का आदेश दिया।[३३]

२९ जनवरी को जब बहादुरशाह अजमेर के पास ठहरा हुआ था तो उसे यह समाचार मिला कि उसके छोटे भाई कामबख्श ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया है।[३४] इस समाचार से वह चिन्तित हो उठा और उसने जोधपुर जाकर वहां की समस्या को शीघ्रातिशीघ्र सुलझाकर स्वयं दक्षिण जाने का निश्चय किया। जब मुकुन्दसिंह एवं तख्तमल नामक उसके दूतों को यह समाचार मिला तो उन्होंने बादशाह से प्रार्थना की कि वह अनुमति दे तो वे स्वयं जोधपुर जायं और महाराजा को उसकी सेवा में लाने की चेष्टा करें। बहादुरशाह ने उनकी बात स्वीकार कर ली।[३५]

शुक्रवार, ३० जनवरी (१८ जिल्काद) को बहरोज खां के द्वारा अजीतसिंह व दुर्गादास के नाम फरमान भेजे गये जिनमें उन्हें जल्दी ही दरबार में उपस्थित होने

---

३१. बहादुरशाह. ७७ ब; जयपुर अखबारात नं. १०३३, रा. पु. बी; इरविन. भाग १, ४७; सतीशचन्द्र. ३२; बहादुरशाह. १४९।

३२. बहादुर. ७१ अ; वीर—भाग २, ९२९; खफी खां भाग २, ६०६; अजितोदय, सर्ग १७, श्लोक २५-६; उमराय. १०२-३; रेउ भाग १, २९४; बहादुरशाह, १४९।

३३. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष १, ३६५ व ४१९; बहादुर. ६४ ब व ११० ब।
अखबारात, बहादुरशाहनामा में तख्तमल के स्थान पर बख्तमल लिखा है परन्तु राजा के दूतों के नाम के सम्बन्ध में ख्यातों को प्रमाणिक मानना अधिक उचित प्रतीत होता है।

३४. बहादुरशाह. १८६।

३५. बहादुर. ७७ ब; इरविन. भाग १, ४७-८।

का आदेश दिया गया था। केवल तीन दिन बाद सोमवार, २ फरवरी (२१ जिलकाद) को दुर्गादास के लिये पुनः एक फरमान भेजा गया। इस फरमान के साथ खानखाना व खानेजमां के पत्र भी भेजे गये।[३६]

मंगलवार ३ फरवरी (२२ जिलकाद) को दुर्गादास तथा शुक्रवार, ६ फरवरी (२५ जिलकाद) को अजीतसिंह की अर्जदाश्त आई। राजा ने यह लिखा था कि उसे दरबार में आने में कोई आपत्ति नहीं है, केवल यह भय है कि कहीं बादशाह उसे दण्डित न करे।[३७] इस पर बहादुरशाह ने खानेजमां को यह आदेश दिया कि वह कुछ लोगों के साथ जोधपुर जाय, और अजीतसिंह को पूरी तरह आश्वस्त करके अपने साथ लेकर लौटे। उसके साथ जाने के लिये राव राजा बुधसिंह सैयद शुजात खाँ, सैयद हुसैन खां अजनबी खां, राजा उत्तमखां गौड, शिवसिंह, राजा गोपालसिंह, अब्दाल खां, कुलीच मुहम्मद खां आदि को नियुक्त किया गया। बहादुरशाह मंगलवार, १० फरवरी (२९ जिलकाद) को मेड़ता पहुंचा और इसी दिन खानेजमां अपने साथियों के साथ जोधपुर चला गया।[३८]

---

३६. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह; वर्ष १, ४२८ व ४३५; बहादुर ७९ ब; इरविन. भाग १, ४७-८; सतीशचन्द्र ३२।

रेउ (दुर्गादास राठोड़. ५६) ने लिखा है कि दुर्गादास के नाम फरमान २९ जनवरी (१७ जिलकाद) को भेजा गया था। परन्तु अखबारात की तिथि को स्वीकार किया गया है।

३७. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह. वर्ष १, ४३९ व ४४३; इरविन. भाग १, ४८।

कामवर (३०८) ने लिखा है कि अजीतसिंह की अर्जदाश्त ८ फरवरी (२७ जिलकाद) को पहुँची थी, परन्तु अखबारात. में लिखी गई तिथि को ही मान्यता देना उपयुक्त है।

३८. जयपुर अखबारात. बहादुरशाह, वर्ष १. ४४३ व ४५३; बहादुर ७९ ब; कामवर ३०८; कामराज ३९ ब; दिल कुशा. भाग २, १७० ब; मआसिर १७४; इरविन. भाग १, ४८; बहादुरशाह. १५१.।

राजरूपक (४८०-२) में लिखा है कि अजीतसिंह ने सोजत पर अधिकार कर लिया था; परन्तु नकली दलथम्भन निकाल भागा था। मई-जून सन् १७१७ ई. में अर्जुनसिंह ने पुनः उसके नाम पर विद्रोह किया था। अजीतसिंह ने अपनी सेना उनके विरुद्ध भेजी तब दलथम्भन व अर्जुनसिंह मारे गये। परन्तु अजितोदय के उल्लेख को ही स्वीकार किया गया है क्योंकि उसकी पुष्टि अन्य ख्यातों से भी होती है।

फारसी के लगभग सभी उक्त ग्रन्थों में लिखा है कि अजीतसिंह शाही सेना के आतंक से बहुत घबरा गया था. अतः उसने अत्यन्त दीनता पूर्वक खानेजमां के समक्ष आत्मसमर्पण करके क्षमा मांग ली थी। डा. वी एस. भार्गव ने अपने शोध-ग्रन्थ (मारवाड़. १४७) में लिखा है कि तीस वर्षीय युद्ध के परिणाम स्वरूप अजीतसिंह की शक्ति पूर्णतया समाप्त हो गई थी. अतः उसके पास आत्मसमर्पण के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था। परन्तु यह मत समीचीन नहीं जान पड़ता।

अजीतसिंह व उसके साथियों ने अत्यन्त बुरे दिनों में मुगल सत्ता का सामना किया था। इस समय तो अजीतसिंह की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी। औरंगजेब की मृत्यु तथा बहादुर शाह के सिंहासनारोहण के बीच के समय में उसने अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अजीतसिंह को विदित हो गया था कि बादशाह शीघ्रतिशीघ्र दक्षिण जाना चाहता है। अतः उसे विश्वास था कि बादशाह इस स्थिति में जोधपुर राज्य उसे दे देगा। अतः उसने अपनी शक्ति व्यर्थ नष्ट करना उचित न समझा। इसके साथ ही जयसिंह भी इन दिनों शाही शिविर में था। उसके साथ मिलकर एकमत होकर कार्य करना अधिक लाभदायक जानकर ही सम्भवतः उसने बादशाह के पास जाना स्वीकार किया।

समकालीन राजस्थानी ग्रन्थों (राजरूपक ४१८-२१; अजितोदय, सर्ग १७. श्लोक २७-२९; अजितचरित्र. सर्ग ९, श्लोक १५-६) में लिखा है कि अजीतसिंह की विजयों से बहादुरशाह ने सुलह करने का निश्चय किया। परन्तु यह मत पक्षपातपूर्ण प्रतीत होता है। ग्रन्थकारों ने केवल राजा की प्रशंसा हेतु ही ऐसा विवरण दिया है।

इसी स्थान पर दो दिन वाद वृहस्पतिवार, १२ फरवरी (१ जिल्हिज) को राजा अजीतसिंह को लेकर खानेजमां वापस लौटा। अजीतसिंह का उचित स्वागत किया गया और उसे वजीर मुनीम खां के शिविर में ठहरने की आज्ञा दी गई। अगले दिन शुक्रवार, १३ फरवरी (२ जिल्हिज) को अजीतसिंह के दरवार में लाया गया। इस अवसर पर राजा ने एक सौ अशर्फियां तथा एक हजार रुपया वादशाह को भेंट किया और वहादुरशाह ने उसके सभी अपराध क्षमा कर दिये। मंगलवार, १७ फरवरी (६ जिल्हिज) को वह फिर दीवाने-खास गया तो उसे सिंहासन के वाईं ओर खड़ा किया गया और पचास हजार रुपया नकद तथा खास खिलअत दी गई। अगले दिन वुधवार, १८ फरवरी (७ जिल्हिज) को उसे पुनः दो सौ रुपया और चांदी की जीन सहित एक घोड़ा दिया गया और उसके दीवान मुकुन्दसिंह और नौकर निहालदास को भी खिलअतें दी गईं। रविवार, २२ फरवरी (११ जिल्हिज) को अजीतसिंह को एक हजार रुपया और एक हाथी दिया। एक सप्ताह वाद २९ फरवरी (१८ जिल्हिज) को उसे खास-खिलअत दी गई और 'महाराजा' लिखने का अधिकार भी दिया गया और ६ मार्च (२४ जिल्हिज) को जड़ाऊ सिरपेच दिया गया।[३९] वृहस्पतिवार, २६ फरवरी (१५ जिल्हिज) को दुर्गादास को आने का समाचार पाकर वादशाह ने खानेजमां को यह आज्ञा दी कि वह पांच कोस आगे वढ़कर दुर्गादास का स्वागत करे। रविवार, २९ फरवरी (१८ जिल्हिज) को दुर्गादास दरवार में उपस्थित हुआ और उसने पचास मुहरें नजर कीं

३९. वहादुर. ८३ व, ८४ अ व. ८४ व, ८५ अ, ८६ अ, ९० व; जयपुर अखवारात, वहादुरशाह, वर्ष २, ३, ५, ६, १७ व ३२; कामवर ३१०; कामराज ३६ व।

ख्यात (भाग २, १२०–२); जुनी (८४-५) व दानेश्वर (२२१) में भी इन घटनाओं का विवरण मिलता है; परन्तु इनमें तिथि एवं राशि की संख्या में थोड़ा वहुत अन्तर पाया जाता है। इन घटनाओं के लिये अखवारात एवं वहादुरशाहनामा को ही प्रमाणिक मानना अधिक उचित समझा गया है।

केवल राजरूपक में लिखा है कि वादशाह ने अजीतसिंह को तेग वहादुर की पदवी दी थी; परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती, अतः इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अजीतसिंह वहादुरशाह से किस स्थान पर मिला था इस विषय में फारसी ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं मिलता, केवल कामवर (३१०) ने इस स्थान का नाम कोकनाल वताया है। वंश (भाग ४, ३००२) में लिखा है कि अजीतसिंह अल्हनपुर (आलण्यावास) में वादशाह से मिला था। राजरूपक (४२४) में इस स्थान का नाम आनन्दपुर लिखा है। वार्ता (३७ अ) में लिखा है कि अजीतसिंह वादशाह से कालु नामक स्थान पर मिला था और इस स्थान का नाम वदलकर आनन्दपुर कर दिया गया था। राजरूपक चूंकि समकालीन राजस्थानी ग्रन्थ है, अतः जोधपुर राज्यान्तर्गत होने वाली घटनाओं के स्थान के विषय में उसके उल्लेख को स्वीकार करना अधिक उचित है।

जागीर में अजीतसिंह को केवल सोजत, सिवाना व फलोदी के परगने मिले; जोधपुर व मेड़ता के परगने पूर्ववत्–शाही अधिकार में ही रहे।[४३] उसके ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह को डेढ़ हजार जात तीन सौ सवार का अन्य पुत्र अखैसिंह को सात सौ जात दो सौ सवार का तथा अन्य दो पुत्रों को पांच सौ जात एक सौ सवार का मनसब मिला।[४४] बहादुरशाह के इस व्यवहार से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है कि वह समय-समय पर मनसब, जागीर व भेंट देकर अजीतसिंह के साथ उदारता का व्यवहार कर रहा था, और महाराजा इससे सन्तुष्ट था। वास्तव में एक ओर तो अजीतसिंह तथा उसका मित्र जयसिंह अपने-अपने राज्यों का अधिकार तथा उच्च मनसब चाहते थे। अपनी स्थिति से असन्तुष्ट होकर उन्होंने बहादुरशाह के छोटे भाई कामबख्श से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न भी किया।[४५] दूसरी ओर बहादुरशाह उनकी शक्ति कम करना चाहता था, ताकि वे न तो स्वयं विद्रोह कर सकें, न अन्य राजपूत शासकों को इसके लिये प्रेरित कर सकें। जोधपुर व आम्बेर पर अपनी सर्वोच्चता दिखाने के लिये बहादुरशाह ने १८ फरवरी (७ जिल्हिज) को जोधपुर का नाम बदलकर मुहम्मदाबाद रख दिया था, और शाही दरबार के काजी खां नामक काजी को तथा मुहम्मद गौस मुफ्ती को जोधपुर की मस्जिद में नमाज पढ़ने के लिये भेजा गया था। इसी दिन आम्बेर का नाम भी मोमिनाबाद कर दिया गया था।[४६] जोधपुर तथा मेड़ता का अधिकार क्रमशः मेहरबान खां तथा मखमूस खां को सौंप दिया गया।[४७] बहादुरशाह ने अजीतसिंह व जयसिंह के प्रति जिस नीति का पालन इस समय तक किया उस पर उसके वजीर मुनीम खां का

---

४३. ख्यात. भाग २, १२६; जुनी. ८६; दानेश्वर. २२२; वीर. भाग २, ८३४।

नूरजप्रकाश में लिखा है कि अजीतसिंह को जोधपुर दिया गया था; परन्तु चूंकि जयसिंह को कुछ नहीं मिला था, अतः उसने अस्वीकार कर दिया। बहादुरशाह (१५१) में भी लिखा है कि अजीतसिंह को जोधपुर दे दिया गया था। परन्तु यह मत स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि यदि इसी समय जोधपुर दे दिया जाता तो अजीतसिंह के बाद में विद्रोह करने की कोई आवश्यकता न थी।

४४. बहादुर. ६८ ब; ख्यात. भाग २, १२७; इरविन. भाग १, ४८।

४५. दक्षिण की ओर जाते हुये मार्ग में एक अन्य घटना घटित हुई। सैफुल्ला खां ने कामबख्श के लिये अजीतसिंह और जयसिंह से एक समझौता किया, जिसमें यह तय किया गया कि यदि कामबख्श गोंडवाना मार्ग से उनके क्षेत्र में आये तो वे पन्द्रह हजार सवारों के साथ नर्मदा नदी के किनारे उससे मिलें और बादशाह के दक्षिण में रहते हुये ही अवसर से लाभ उठाकर अचानक दिल्ली पर आक्रमण कर दें और कामबख्श को मुगल सम्राट बनायें। राजाओं ने इसे स्वीकार कर लिया। सैफुल्ला अजीतसिंह और जयसिंह दोनों से उनके मुहर पत्र लेकर कामबख्श के पास गया, परन्तु शाहजादे ने उसे बहादुरशाह का ही व्यक्ति समझा और उनका विश्वास नहीं किया। (खफी खां-भाग २, ६१६-२०; मआसिर ६६४) इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है। कि अजीतसिंह अपनी स्थिति से असन्तुष्ट था।

४६. जयपुर अखबारात, वर्ष २६ व ३६; कामवर बहादुरशाह. ३१०; कामराज ३६ ब।

४७. रोजनामचा ११७; राजरूपक ३२४-५; ख्यात-भाग२, १२[illegible] [illegible]. २२२ [illegible] भाग २, ६०; । ३. भाग १, २६५।

गहरा प्रभाव जान पड़ता है। मुनीम खाँ राजपूतों को अधिकार देने के पक्ष में नहीं था। उसका विचार था कि इन दोनों राजपूत राजाओं को मीठे-मीठे वचनों में झूठे आश्वासन देकर शाही शिविर में रखना चाहिये और पीछे से चुपचाप उनके राज्यों पर शाही अधिकार कर लेना चाहिये।[४८] मुनीम खाँ की ऐसी विचारधारा का सम्भवतः यह कारण था कि शाही दरबार में उसके विरोधी-दल का नेता जुल्फिकार खाँ, अजीतसिंह व जयसिंह का समर्थक था।[४९] सम्भवतः यह मुनीम खाँ का ही प्रभाव था कि बहादुरशाह एक ओर तो अजीतसिंह को समय-समय पर मनसब, जागीर व पुरस्कार देता रहा और दूसरी ओर उसने जोधपुर पर अधिकार करने तथा मुस्लिम सिद्धान्तों के प्रसार के सम्बन्ध में आदेश भेजे। इसके साथ ही शाही शिविर में अजीतसिंह बन्दी की सी स्थिति में रक्खा गया था। और इसी कारण वह बहादुरशाह के कार्यों का कुछ विरोध न कर सका। उसके मित्र जयसिंह की स्थिति भी ऐसी ही थी। इन दोनों ने खुला विद्रोह, सम्भवतः इस कारण नहीं किया कि उन्हें यह आशा थी कि कामबख्श की समस्या की गम्भीरता के कारण बहादुरशाह कुछ ही दिनों में उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये उनके राज्य वापस कर देगा; परन्तु अजीतसिंह, को मनसब व जागीर मिलने के उपरान्त उनकी यह आशा जाती रही।

बुधवार, १४ अप्रेल (वैशाख सुदि ५) को जब मन्दसौर में शाही पड़ाव हुआ तो अजीतसिंह ने दुर्गादास, जगराम व मुकन्ददास आदि के साथ विचार-विमर्श किया इस समय दुर्गादास ने कहा कि मेहराब खाँ जोधपुर पहुंचकर वहां की जनता पर अवश्य ही अत्याचार करेगा। दूसरी ओर बादशाह से अब जोधपुर की आशा करना व्यर्थ है। उसने यह भी कहाँ कि नर्मदा नदी पार कर लेने के बाद वापस लौटना कठिन हो जायेगा; साथ ही दक्षिण में गल्ले की महगाई का भी सामना करना पड़ेगा। अतः नर्मदा नदी पार करने से पूर्व ही वापस लौट जाना चाहिये। अजीतसिंह ने उसकी बात स्वीकार की और फिर उसके आदेशानुसार दुर्गादास ने जयसिंह से भी बातचीत की। अगले दिन बृहस्पतिवार, १५ अप्रेल (वैशाख सुदी ६) को अजीतसिंह स्वयं भी जयसिंह से मिला और उन्होने अवसर पाकर बादशाह का साथ छोड़ देने का निश्चय किया।[५०]

मंगलवार, २० अप्रेल (१० सफर) को जब बादशाह ने नर्मदा नदी के निकट मंडलेश्वर नामक स्थान से कूच किया तो अजीतसिंह व जयसिंह ने शिकार के बहाने अपने सैनिकों को तथा कुछ आवश्यक सामान लेकर शेष में आग लगाकर [illegible]

---

४८. सतीशचन्द्र, ३४।

४९. औरंगजेब की मृत्यु के बाद शाहजादा आजम ने अजीतसिंह और जयसिंह को [illegible] जुल्फिकार खां के प्रभाव में ही दिया था। (सतीशचन्द्र २०)।

५०. दस्तूर भाग १, १२३-८; जुनी ८६; सानेश्वर २२२; राजरूपक ४२५-६; [illegible]; राठौड़ा ४७; आसोपा. २६२-३।

उत्तर भारत की ओर प्रस्थान कर दिया।[५१] यह समाचार पाकर बहादुरशाह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। परन्तु मुनीम खाँ ने उसे सलाह दी कि कामबख्श की समस्या को सुलझाने के पश्चात् ही इन राजाओं के विरुद्ध सेना भेजना उचित है। फलतः अजीतसिंह व जयसिंह के विरुद्ध सेना नहीं भेजी गई।[५२] राजाओं के पलायन के लगभग एक महीने बाद सोमवार, १७ मई (८ रबी उलअव्वल) को उसे पता चला कि वे लोग राणा अमरसिंह के पास उदयपुर चले गये हैं। तब उसने असदउलमुल्क को लिखा कि वह उन्हें तसल्ली देने का प्रयास करे।[५३] अगले कई महीनों तक दक्षिण की समस्या में उलझे रहने के कारण बहादुरशाह इन राजाओं की गतिविधियों पर ध्यान न दे सका।

(ग) बादशाह के विरुद्ध त्रिकुट (सन् १७०८-९ ई.)

शाही लश्कर को छोड़कर अजीतसिंह और जयसिंह देवलिया गए, जहाँ महारावत प्रतापसिंह ने उनका स्वागत किया। तत्पश्चात् वे उदयपुर की ओर बढ़े। जब राणा अमरसिंह को उनके आने का समाचार मिला तो उसने बृहस्पतिवार, २९ अप्रेल, सन् १७०८ ई. (ज्येष्ठ वदि ५, संवत् १७६५) को उदयपुर से प्रस्थान किया और गाडवा नामक गाँव में अजीतसिंह, जयसिंह और दुर्गादास से मिला और उन्हें साथ लेकर २ मई (ज्येष्ठ वदि ८) को उदयपुर वापस पहुँचा। अजीतसिंह को कृष्ण-विलास तथा जयसिंह को सर्व ऋतु-विलास नामक महलों में ठहराया गया।[५४]

अजीतसिंह व जयसिंह कई दिन उदयपुर में रहे। राणा ने उनका यथोचित सम्मान किया।[५५] परस्पर विचार-विमर्श किया गया। इन शासकों ने न केवल अपने-अपने राज्य पर, वरन 'हिन्दुस्तान की बादशाहत' को अपने अधिकार में करने

---

५१. दिलकुशा. भाग २. १७२ ब; कामवर ३१०; वारिद. १८५ ब; रोजनामचा ११७-८; खफी खाँ-भाग २, ६१६; मआसिर, १७४, ६४०, ७३५; तारीख-मुजफ्फरी १६६; ख्यात. भाग २ ७६८ व ८३४; कूर्मवंसविलास १८८ ब; वंश-भाग ४, ३००९; सूरजप्रकाश. ९७; मूंदियाड़ २३४; राजरूपक ४२६; अजितोदय. सर्ग १७, श्लोक ३२-३; अजित चरित्र सर्ग ६, श्लोक १७-८; इरविन. भाग १; ४६; ओझा. भाग ४, खंड २, ५३४-५; । ३. भाग १,२६५ सतीशचन्द्र. ३४।

५२. रोजनामचा ११८; ओझा. भाग ४,खंड २, ५३५; बहादुरशाह. १५५।

५३. बहादुर. ०३ ब; दिलकुशा. भाग २. १७२ ब; इरविन. भाग १, ६७।

५४. वीर. भाग २, ७६९-७७०; ७३३ व १०६२; ख्यात. भाग २, १२८-९; जुनी. ८६; दानेश्वर २२२; वंश. भाग ४, ३००९-११।

५५. वीर. भाग २, ७७० व ८३४; वंश, भाग ४. ३०११-२। ख्यात. (भाग २, १२९); जुनी (८६); दानेश्वर. (२२३) में तीनों शासकों के एक साथ भोजन करने तथा भेंट देने का उल्लेख है और यह भी लिखा है कि अजीतसिंह व जयसिंह जितने दिन उदयपुर में रहे, राणा ने उन्हें प्रतिदिन चार-चार सौ रुपया तथा दुर्गादास को प्रतिदिन दो सौ रुपया व्यय के लिये दिया।

के विषय में भी बातचीत की।[५६] उन लोगों ने मुगल सम्राट् के विरुद्ध एक संघ बनाया और हर आपत्ति में परस्पर एक दूसरे की सहायता करने का वचन दिया।[५७] सन् १५२६ ई. में राणा सांगा ने बाबर के विरुद्ध राजपूत राजाओं का जो संघ बनाया था, उसके बाद पारस्परिक ऐक्य का राजपूताने में यह सम्भवत: पहला ही प्रयास था। इस समझौते को वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा दृढ़ किया गया। अजीतसिंह का विवाह राणा अमरसिंह के चाचा गजसिंह की पुत्री के साथ १२ जून, सन् १६९६ ई. में ही हो चुका था,[५८] अब राणा ने अपनी पुत्री चन्द्रकुंवरी का विवाह सोमवार, १० मई (ज्येष्ठ सुदि १) को राजा जयसिंह के साथ कर दिया।[५९] इस विवाह के अवसर पर राणा ने जयसिंह के साथ एक लिखित सन्धि की जिसका परिणाम कालान्तर में आम्बेर के लिए हितकर सिद्ध नहीं हुआ।[६०]

इसी बीच बहादुरशाह के बड़े पुत्र जहांदारशाह का २४ अप्रेल (१४ सफर) का लिखा एक निशान राणा के पास पहुँचा जिसमें उसने लिखा था कि अजीतसिंह, व दुर्गादास जागीर व वेतन न मिलने के कारण शाही लश्कर छोड़ कर भाग गए हैं। उसने राणा को सलाह दी थी कि वह इन लोगों को अपने यहाँ नौकर न रक्खे और उनसे क्षमा के लिए प्रार्थना-पत्र लिखवाकर बादशाह के पास भेज दे। शाहजादे ने यह आश्वासन भी दिया था कि वह स्वयं बादशाह से कहकर इन तीनों को क्षमा दिलवा देगा और जागीरों की सनदें लेकर राणा के पास भेज देगा, और थोड़े दिन

---

५६. वीर. भाग २, ७७२; वंश. भाग ४, ३०१२-३।

५७. जयपुर रिकार्डस, हिन्दी, भाग २, खंड ३, ६५; चतुरकुल चरित्र. ११७; इरादत खां ५८; इरविन भाग १, ६७।

५८. अध्याय ४, वीर (भाग २, ४३७); कूर्म्मवंसविलास (१२२ ब); (वंश भाग ४, ३०१८-९); व चतुरकुल चरित्र (११७) आदि के अनुसार राणा ने इसी समय अपने चाचा की पुत्री कृष्णकुंवरी का विवाह अजीतसिंह के साथ किया था। परन्तु यह ठीक नहीं है। वीर (भाग २, ७७१ ठि.) में भी इस बात का खंडन किया गया है।

५९. ख्यात. भाग २, १२९-३०; जुनी ८६-७; वीर. भाग २, ८३४ व ७७१; राठौड़ा ४७; ओझा. भाग २, खड ४, खंड २, ५३६।
मूंदियाड़ (२३४) के अनुसार यह विवाह मई। जून (आषाढ़) के महीने में, दानेश्वर (२२३) के अनुसार. १६ मई (ज्येष्ठ सुदि ८) और आसोपा (२६३) के अनुसार २३ मई (ज्येष्ठ सुदी १५) को हुआ था। परन्तु चूंकि अधिकांश ग्रन्थ मई की तिथि को ही स्वीकार करते हैं अत: उसे ही ठीक मानना उचित है।
खरीफ खां (भाग २, ६०५) व इरविन (भाग १, ६७) ने भूल से जयसिंह की कन्या का विवाह राणा से होना स्वीकार किया है, जो ठीक नहीं है।

६०. वंश. भाग ४, ३०१८-९; ओझा. भाग ४, खंड २, ५२९।
इस सन्धि की शर्तें इस प्रकार थीं—
(क) आयु में छोटी होने पर भी उदयपुर की राजकुमारी ही राजमहिषि होगी।
(ख) इस कन्या से उत्पन्न पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा।
(ग) यदि यह रानी किसी पुत्री को जन्म देगी तो उसका विवाह मुसलमान से नहीं किया जायेगा।

बाद उसकी भेंट भी अपने पिता से करवा देगा। सम्भवतः जहाँदारशाह ने इन राजपूत राजाओं से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने की यह चेष्टा इसलिए की थी कि भावी उत्तराधिकार युद्ध में उसे उनका सहयोग प्राप्त हो सके। राणा ने यह निशान पाकर इसी आशय के प्रार्थना-पत्र अजीतसिंह, जयसिंह व दुर्गादास से लिखवाकर शाहजादे के माध्यम से बादशाह के पास भेज दिए।[६१]

अजीतसिंह और जयसिंह अपने-अपने प्रार्थना-पत्र की प्रतिक्रिया जानने के लिए कुछ दिन तक उदयपुर में ही रहे। परन्तु जब बादशाह का कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ तो उन्होंने समय व्यर्थ नष्ट करना उचित न समझा और बादशाह की उत्तर भारत से अनुपस्थिति का लाभ उठाकर सैन्य शक्ति का प्रयोग करके अपने-अपने राज्यों पर अधिकार करने का निश्चय किया। राणा ने उन्हें विदा देते हुए नकद रुपया, हाथी व घोड़े आदि दिए और अपने समझौते के अनुसार कायस्थ श्यामलदास के नेतृत्व में कुछ सेना भी उन्हें दी।[६२]

अजीतसिंह व जयसिंह ने पहले जोधपुर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में उन्होंने मेड़ता के फौजदार मखसूस खाँ को भगाकर वहाँ अपना अधिकार कर लिया।[६३] तदुपरान्त लगभग तीस हजार सेना के साथ उन्होंने जोधपुर का घेरा डाला। वहाँ के फौजदार मेहराब खाँ ने पाँच दिन तक इस सेना का सामना किया, परन्तु अन्त में उसे जोधपुर छोड़ना पड़ा। दुर्गादास के कहने पर अजीतसिंह ने उसे जीवित चले जाने दिया। रविवार, ४ जुलाई (श्रावण वदि १३) को अजीतसिंह ने जोधपुर में प्रवेश किया और सिंहासनारूढ़ होते समय जयसिंह ने उसका टीका किया। तत्पश्चात् जयसिंह का डेरा सूरसागर, दुर्गादास का ब्रह्मकुंड तथा राणा की सेना का कूंपावत राजसिंह भीमावत के बाग में हुआ।[६४] जोधपुर पर अधिकार कर लेने के बाद अजीतसिंह ने अपनी मैत्री को अधिक दृढ़ करने के लिए सोमवार, २६ जुलाई (भाद्रपद वदि ५) को अपनी पुत्री सूरजकुंवर की सगाई राजा जयसिंह

---

६१. वीर. भाग २, ७७२-४; दानेश्वर. २२३; चतुरकुल चरित्र ११७; इरविन. भाग १, ;६७ ओझा. भाग ४, खंड २, ५३५।

६२. वीर. भाग २, ७७४-५; ख्यात. भाग२, १३१; जुनी. ८६; दानेश्वर. २२३; वंश. भाग ४, ३०१९; ओझा भाग ४, खंड २, ६०५।

६३. रोजनामचा ११८।

६४. राजरूपक. ४२७-९ व ४३१; ख्यात. भाग २, १३१-३; जुनी. ८७; वीर. भाग २, ७७५ व ८३४; अजितोदय. सर्ग १७, श्लोक ३४; सूरजप्रकाश. ५९; बांकीदास ३७; कूर्म्मवंशाविलास १८८ व; दानेश्वर २२३-४; कविराजा ८६-७; चतुरकुल चरित्र. ११७;) दिलकुशा. भाग २, १७३ अ; रोजनामचा ११८; वारिद. १८५ अ; सीयर १८: टॉड. भाग २, ६०; इरविन-भाग १, ६७-८; । भाग १, २९६।
अजीतसिंह का जोधपुर पर किस तिथि को अधिकार हुआ, इस सम्बन्ध में कई तिथियों का उल्लेख मिलता है। अधिकतर ख्यातों में ३ जुलाई (श्रावण वदि १३) को स्वीकार किया गया है। दानेश्वर. में ८ जुलाई (श्रावण सुदी २) का उल्लेख है। परन्तु राजरूपक ग्रन्थ है अतः, उसी में उल्लिखित तिथि को मान्यता दी गई है।

ने कर दी।[६५] सूरजकुँवर की माँ लालकुँवर जैसलमेर के राव अमरसिंह की पुत्री थी और उसके साथ अजीतसिंह का विवाह २२ जून सन् १६६६ ई. को हुआ था।[६६] इस प्रकार सूरजकुँवर की अवस्था आठ वर्ष से अधिक नहीं थी, जबकि जयसिंह की आयु बाईस वर्ष के लगभग थी।[६७] स्पष्ट ही यह सम्बन्ध राजनीतिक उद्देश्य से किया गया था।

सम्भवतः उदयपुर से प्रस्थान करते समय ही इन राजाओं ने जयसिंह के दीवान रामचन्द्र तथा कछवाहा श्यामसिंह को एक बड़ी सेना देकर आम्बेर की ओर भेज दिया था।[६८] इस सेना ने जून के महीने में आम्बेर पहुँच कर मेवात के फौजदार सैयद हुसैन खाँ से युद्ध किया। शाही सैनिकों ने इनका सामना किया परन्तु अन्त में उन्हें परास्त होकर भागना पड़ा। आम्बेर पर राजपूतों का पुनः अधिकार हो गया। इसके बाद राजपूत सैनिकों ने आगे बढ़कर हिन्डौन व बयाना से भी शाही अधिकारियों को भगा दिया।[६९]

अजमेर के सूबेदार शुजात खाँ ने शाही अधिकारियों की अयोग्यता को छिपाते हुए मुगल-सम्राट् को इस घटना की सूचना ठीक-ठीक नहीं भेजी। उसने यह समाचार भेजा कि आम्बेर पर राजपूतों की सम्मिलित सेनाओं ने आक्रमण किया था, परन्तु सैयद हुसैन खाँ ने उसे विफल कर दिया। राजपूतों ने हिन्डौन व बयाना

---

६५. ख्यात. भाग २, १३५-८; वीर. भाग २, ८३४; कूर्म्मवंसविलास. १८८ ब; इरादत खाँ ५८; ओझा. भाग ४, खंड २, ५३६; प्राचीन राजवंश. २१७।
दानेश्वर. (२२४) में इस घटना की तिथि ११ जुलाई (श्रावण सुदी ५) स्वीकार की गई है; परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात की तिथि को स्वीकार करना अधिक उपयुक्त है।
मूल (२१५) तथा बहादुर (१५७) में भूल से इसी समय विवाह होना लिखा गया है।

६६. अध्याय ४ पृ. टि।

६७. इरविन भाग १, ४४।

६८. यह कहना कठिन है कि यह सेना आम्बेर की ओर भेजी गई। राजपूतों ने जोधपुर पर ३ जुलाई को अधिकार किया और आम्बेर पर आक्रमण जून में ही हुआ था। (इरविन. भाग १, ६८) अतः यह निष्कर्ष निकालना अधिक उचित है कि राजाओं ने स्वयं जोधपुर के लिये प्रस्थान किया और अपनी सेना का एक भाग आम्बेर की ओर भेज दिया था।

६९. ख्यात. भाग २, १३५, वीर भाग २; ७७५; कूर्म्मवंसविलास १८८ ब; वंश भाग ४, ३०११-२ रोजनामचा. ११८; बहादुर. १२० ब; वारिद. १८५ अ; दिलकुशा-भाग २, १७३ अ; सीयर. १८; मआसिर. ६४०; रुस्तमअली. २१७; इरविन. भाग १, ६८; । ३. भाग १, २२६; ओझा. भाग ४, खंड २, ५३७; सतीशचन्द्र. ३५; बहादुरशाह. १५८।
लगभग सभी फारसी के इतिहासकारों का मत है कि अजीतसिंह जोधपुर पर अधिकार कर लेने के उपरान्त स्वयं आम्बेर गये थे। इरविन व सतीशचन्द्र ने भी इसी मत का समर्थन किया है। उदयराज चन्द ने अपने शोध ग्रन्थ (बहादुरशाह. १५८) में लिखा है कि रामचन्द्र को आंशिक सफलता मिली थी अतः राजाओं ने पुनः आम्बेर पर स्वयं जाकर आक्रमण किया। परन्तु यह मत ठीक प्रतीत नहीं होता। ख्यातों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि दोनों राजा ३ जुलाई से १६ जुलाई तक जोधपुर में ही थे और श्रावण सुदी (जुलाई) में उन्हें वहीं आम्बेर में शाही सैनिकों की पराजय का समाचार मिला था।

के दो परगनों पर अधिकार कर लिया। आम्बेर की सुरक्षा का समाचार पाकर शाही शिविर में खूब खुशी मनाई गई और बादशाह ने शुजात खाँ के लिए खिलअत भेजी। साथ ही उसने आगरा के सूबेदार अमीर खाँ को यह आदेश दिया कि वह हिन्डौन व बयाना वापस लेने के लिए प्रयत्न करे। रविवार, ११ जुलाई (४ जमादिउल-अव्वल) को अवध के सूबेदार खानेदौराँ चिन कुलीज खाँ, इलाहाबाद के सूबेदार खानेजहाँ और मुरादाबाद के फौजदार अमीक खाँ को भी अमीर खाँ की सहायता के लिए जाने का आदेश मिला।[७०]

कुछ ही दिन बादे ११ अगस्त को बहादुरशाह को यह समाचार मिला कि शुजात खाँ द्वारा भेजी गई सूचना असत्य थी, आम्बेर पर राजपूतों का अधिकार हो गया है। बादशाह इस पर बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने असद खाँ को इन दोनों राजाओं का दमन करने के लिए आदेश भेजा। परन्तु वर्षा ऋतु के कारण असद खाँ स्वयं नहीं गया और उसने सैयद हुसैन खाँ को एक लाख रुपया भेजकर यह आदेश दिया कि वह इस कार्य के लिए नए सैनिक भर्ती करे। वर्षा ऋतु बीत जाने पर सैयद हुसैन खाँ ने आम्बेर पर अधिकार करने का एक और प्रयत्न किया, परन्तु उसे सफलता न मिल सकी।[७१]

इसी बीच शाहजादा जहाँदारशाह ने सोमवार, ५ जुलाई (२७ रबीउस्सानी) का लिखा एक निशान राणा अमरसिंह को भेजा जिसमें लिखा कि राणा द्वारा भेजे गए अजीतसिंह, जयसिंह और दुर्गादास के पत्र बादशाह के सम्मुख रखे गए थे, परन्तु इसी समय शुजात खाँ के पत्र द्वारा राजाओं के आम्बेर पर आक्रमण करने का समाचार मिला। फलत: उन्हें क्षमा नहीं कराया जा सका। अब उन्हें फिर समझाया जाय कि वे पुन: नए प्रार्थना-पत्र भेजें और जयसिंह अपने दीवान रामचन्द्र को नौकरी से हटा दे। राणा ने इसके उत्तर में लिखा कि जब तक राजाओं को उनके राज्य नही मिल जायेंगे, वे शान्ति से नहीं बैठेंगे। अतएव उन्हें राज्य वापस देना अत्यन्त आवश्यक है। राणा ने इसी आशय का पत्र असद खाँ को भी लिखा।[७२]

इधर अजीतसिंह व जयसिंह को जब शाही सेना के पुन: आम्बेर पर आक्रमण करने का समाचार मिला तो उन्होंने प्रतिक्रिया स्वरूप अजमेर पर आक्रमण करने का निश्चय किया। अजीतसिंह, जयसिंह व दुर्गादास ने एक विशाल सेना के साथ अगस्त के अन्त (आश्विन के आरम्भ) में अजमेर की ओर प्रस्थान किया।[७३]

---

७०. बहादुर. १२६ ब जयपुर १०७ अ; अखबारात; बहादुरशाह, वर्ष २ ८९; इरविन. भाग १, ६८; बहादुरशाह१५९; सतीशचन्द्र ३५।

७१. इरविन. भाग १, ६९; बहादुरशाह. १६१।

७२. वीर. भाग २, ७७५-८; मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन, नं. १४, १४५, ६३९, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक महाराजगान, तिथिहीन, न. १८४९, रा. पु. बी,; ओझा. भाग ४, खड २, ५३७-८; बहादुर शाह. १६०।

७३. वीर. भाग २, ८३४-५।

अजीतसिंह व जयसिंह का विचार इस अभियान में राणा अमरसिंह को भी बुलाने का था, परन्तु किसी अज्ञात कारणवश यह कार्यान्वित न हो सका।[७४] यह लोग गुरुवार, १६ सितम्बर (आश्विन सुदि १३) को मेड़ता पहुँचे और वहाँ से चलकर पुष्कर में रुके। अजमेर के सूबेदार शुजात खाँ को जब यह समाचार मिला तो उसने कूटनीति से काम लेने का निश्चय किया। उसने कनीराम ऊदावत द्वारा अजीतसिंह के पास यह सन्देश भेजा कि अजमेर धार्मिक स्थल है, अतः वह उस पर आक्रमण न करे। साथ ही उसने यह भी आश्वासन दिलाया कि वह बादशाह को पत्र लिखकर उसको जोधपुर, तथा जयसिंह को आम्बेर दिलवा देगा, और उनके इस अभियान के खर्च के तीन लाख रुपये भी उन्हें देगा। यह संदेश पाकर अजीतसिंह ने समस्त समाचार विट्ठलदास के द्वारा जयसिंह को भेजा, और जयसिंह ने भी इसे स्वीकार करना उचित समझा। इस प्रकार अजमेर पर आक्रमण न करके वे पुष्कर में ही रुके रहे। इधर शुजात खाँ ने सहायता के लिए तुरन्त बादशाह को लिखा। शीघ्र ही आगरा, मथुरा, नारनौल व आम्बेर में पराजित सेनाएँ उसकी सहायता के लिए आ पहुँची।[७५] यह समाचार पाकर दोनों राजा बहुत अप्रसन्न हुए। उनकी सारी योजना बेकार हो गई और उन्हें आम्बेर की ओर लौटना पड़ा। मार्ग में सांभर के फौजदार अली अहमद ने बृहस्पतिवार, ३० सितम्बर (कार्तिक वदि १३) को उन पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में दोनों पक्ष के बहुत से व्यक्ति मारे गए, परन्तु अन्त में अली अहमद परास्त हो गया।[७६]

प्रतिक्रियास्वरूप अजीतसिंह और जयसिंह ने आगे बढ़कर अपनी बीस-पच्चीस हजारसेना के साथ मुस्लिम सेना की छावनी सांभर को घेर लिया। मेवात के फौजदार

---

७४. वीर. (भाग २, ८३५-६) में दुर्गादास द्वारा लिखा गया एक पत्र संग्रहीत है जो उसने ११ सितम्बर (आश्विन सुदि ८) को पंचोली बिहारीदास को लिखा था। इसमें उसने लिखा है कि वह, १४ सितम्बर (आश्विन सुदि ११) को राणा को बुलाने के लिये प्रस्थान करेगा।

७५. ख्यात. भाग २, १३८-६; मुंशी. ८७; दानेश्वर. २२५।
राजरूपक (४३४); अजितोदय (सर्ग १७; श्लोक ३५); कूर्म्मवंसविलास (१८६); वीर. (भाग २, ७७८) में लिखा है कि शुजात खाँ राजपूत राजाओं से परास्त हो गया था और उसने उन्हें पेशकश देकर छुटकारा पाया था आधुनिक इतिहासकारों में टॉड (भाग २, ६०) आसोपा (२६४) ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। इसके विपरीत खफी खाँ (भाग २, ६५०, के अनुसार अजमेर के सूबेदार ने राजपूतों को बुरी तरह परास्त किया था। खफी खाँ ने अजमेर के सूबेदार का नाम सैयद हुसैन खाँ लिखा है, परन्तु सैयद हुसैन खाँ इन दिनों मेवात का फौजदार था। आधुनिक इतिहासकार सतीशचन्द्र (३५) ने भी लिखा है कि अजमेर के सूबेदार शुजात खाँ ने राजपूतों को हराया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह दोनों मत पक्षपातपूर्ण है। जोधपुर राज्य की ख्यात का वर्णन ही अधिक तर्क सम्मत प्रतीत होता है।

७६. मुतफर्रिक महाराजगन, रा. पु. बी., नं. २०७६, २०७७; मुतफर्रिक महाराजगन, तिथिहीन, रा. पु. बी., नं० २११८; ख्यात. भाग २, १३६; मूंदियाड़ २३५-६; दानेश्वर. २२५; अजितोदय, सर्ग १७, श्लोक ३५; आसोपा २६४।

सैयद हुसैन खां को जब से राजपूतों ने आम्बेर में परास्त किया था, वह इनसे चिढ़ा बैठा था और इन्हें परास्त करने के लिये अवसर खोज रहा था। अब उसने सांभर में इनका सामना करने का निश्चय किया और आम्बेर के फौजदार सैयद अहमद सईद खां, सांभर के फौजदार अली अहमद खां, नारनौल के फौजदार गैरत खां और सैयद इज्जत खां तथा सात-आठ हजार सैनिकों के साथ वह राजपूतों के समक्ष आ डटा। रविवार, ३ अक्तूबर (कार्तिक सुदि१)[७७] को भयानक युद्ध हुआ जिसमें राजपूत परास्त होकर भाग गये और सैयदों ने राजपूतों की समस्त सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया।[७८]

जिस समय शाही सेना विजयोल्लास में मग्न थी, सैयद हुसैन खां बारहा की दृष्टि नरूका संग्रामसिंह[७९] नामक राजपूत सरदार पर पड़ी जो अपने दो हजार साथियों के साथ भागने की तैयारी कर रहा था। हुसैन खां तुरन्त थोड़ी सी सेना के साथ उसकी ओर बढ़ा। नरूका संग्रामसिंह ऊंचे स्थान पर था। जब उसने सैयदों को अपनी ओर आते देखा तो अपनी स्थिति का लाभ उठाकर राज-

---

७७. राजरूपक. ४४०; ख्यात. भाग २, १३६; जुनी. ८७; बांकीदास. ३७; कविराज. ८७; गुटका. ३१० अ।

रुस्तमअली (२१८ अ) ने इस घटना की तिथि २ अक्टूबर (२८ रजब) लिखी है। चूंकि हिजरी तिथियां सांयकाल से बदलती हैं अतः इनमें अनिश्चितता रहती है। राजरूपक में निश्चित रूप से दीवाली के दूसरे दिन का उल्लेख भी किया गया है, अतः ३ अक्टूबर को ही स्वीकार करना उचित है।

७८. वारिद १८५ अ ब; रोजनामचा ११८-९; इरविन. भाग १, ६९; दी थर्टी डिसाइसिव बैटल्स ऑफ जयपुर. ६८-९; बहादुरशाह १६१-२।

वारिद (१८५ ब) ने लिखा है कि राजा इतने डर गये थे कि वे अपने वस्त्र उतार कर साधारण वस्त्र पहिन कर भागे थे। रुस्तमअली (२१७ ब व २१८ अ) ने लिखा है कि राजपूतों की विशाल सेना को आते देखकर सैयद भाग खड़े हुये परन्तु जब वे घर पहुँचे तो उनकी स्त्रियों ने हाथ मे डंडे लेकर उनका मार्ग रोक लिया। और कहा कि यदि वे मृत्यु से डरकर भागे हैं तो उनके लिये घर में स्थान नहीं है। तब वे लज्जित होकर लौटे और राजपूतों पर इतना तीव्र आक्रमण किया कि राजपूत सेना के पैर उखड़ गये। परन्तु ये कथन कपोल-कल्पित प्रतीत होते हैं।

वारिद (१८५ अ) ने राजपूतों की सेना की संख्या एक लाख बताई है तथा रुस्तमअली (२१७ अ) ने पचास हजार। मुस्लिम सेना के विषय में रुस्तमअली ने केवल एक सौ पचास सयदों का उल्लेख किया है स्पष्टतया ये कथन अतिश्योक्तिपूर्ण है। ख्यात भाग २, १३९ में लिखी गई संख्या को स्वीकार करना ही तर्कसम्मत प्रतीत होता है। राजस्थानी ख्यातों व ग्रन्थों में इस पराजय का उल्लेख नहीं है।

७९. ख्यात. भाग २; १३९; कूर्म्मवंसविलास. १८९; दी थर्टी डिसाइसिव. बैटल्स ऑव जयपुर. ६९।

नरुका संग्रामसिंह उणियारा का रावत था तथा जयपुर के प्रमुख सरदारों में से एक था। रुस्तमअली (११८अ) ने इस सरदार का नाम खन्नू खंडेला बताया है, परन्तु राजपूत सरदारों के नाम के विषय में राजस्थानी ग्रन्थों को मान्यता देना ही अधिक उचित है।

पूतों ने एक साथ दो सौ बन्दूकें चला दीं। सैयद हुसैन खाँ व उसके साथियों को म्यान से तलवारें निकालने तक का अवसर न मिल सका, और इस पहली ही आकस्मिक बाढ़ में वह अपने दो भाइयों तथा प्रधान सैनिकों सहित मारा गया। उसकी मृत्यु के साथ ही शाही सैनिकों का भाग्य पलट गया और वे घबराकर इधर-उधर भाग खड़े हुए। अजीतसिंह व जयसिंह इस बीच दो कोस आगे पहुँच गये थे। उन्हें जब हुसैन अली व उसके साथियों के मारे जाने का समाचार मिला तो वे सहसा विश्वास न कर सके। पूरी तरह आश्वस्त होने के बाद वे सांभर लौटे और उन्होंने हुसैन अली को हौदे में मरा हुआ पाया। शेष मुगल सैनिकों को आसानी से भगा दिया गया। तब अजीतसिंह व जयसिंह ने ३ अक्तूबर को सांभर नगर में प्रवेश किया।[८०] राजपूतों ने शाही सैनिकों का लगभग पाँच कोस तक पीछा किया। सांभर का फौजदार अली अहमद पकड़ा गया और लगभग दो हजार मुगल सैनिक मारे गये व चालीस घायल हुए सांभर का काजी खालिक मुहम्मद भी बन्दी बना लिया गया और उसके घर को खोदकर तीन लाख रुपया निकाला गया। शाही शिविर को लूट लिया गया और इस लूट में राजपूतों को पालकी, नक्कारा, निशान, तोपखाना, चार हाथी तथा लगभग दो सौ घोड़े मिले। दो हाथी जयसिंह को, एक अजीतसिंह को व एक नक्का संग्रामसिंह को दिया गया।[८१]

सांभर का युद्ध राजस्थान के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। यह राजपूताने के दो महत्त्वपूर्ण राज्यों जोधपुर व जयपुर का शाही सेना के विरुद्ध सम्मिलित प्रयत्न था। फलस्वरूप यहां दोनों शासकों ने सम्मिलित अधिकार स्थापित किया। अजीतसिंह और जयसिंह दोनों ने ही अपना-अपना फौजदार और कोतवाल नियुक्त किया और यह निश्चय किया कि यहां की पैदावार दोनों के बीच आधी-आधी बाँटी जायेगी। अजीतसिंह ने भंडारी खींवसी रामावत को फौजदार तथा जगराम को कोतवाल नियुक्त किया और इस युद्ध में वीरता दिखाने वाले अपने कई सरदारों को सिरोपाव दिये।[८२]

सांभर के युद्ध में एक विशेष उल्लेखनीय बात यह हुई कि दुर्गादास राठौड़ महाराजा अजीतसिंह से अप्रसन्न होकर, मेवाड़ के राणा अमरसिंह की शरण में चला गया।[८३]

---

८०. वाकिआ १८५ अ ब व १८६ अ; रोजनामचा ११८-९; कामवर. ३१५; खफी खाँ भाग २, ६४०-१; इरविन. भाग १, ६९-७०; दी थर्टी डिसास्टरस ईयर्स ऑफ जयपुर. ६९-७०; बहादुरशाह. १६३-४।
राजस्थानी ग्रन्थों एवं ख्यातों. में इस घटना का विवरण सैयदों की स्पष्ट पराजय के रूप में किया गया है।

८१. ख्यात. भाग २, १३९-४० व १४१; जूनी. ८७; दानेश्वर. २२५; आसोपा २६५।

८२. ख्यात. भाग २, १४०-१; जूनी. ८८; मूंदियाड़ २३६; वीर. भाग २, ८३७; राठौड़ा. ४८; प्राचीन राजवंश २१७-७।

८३. दुर्गादास ने अपने जीवन के अन्तिम दस वर्ष राणा की सेवा में ही व्यतीत किये। राणा की आज्ञा से रामपुरा के हाकिम के रूप में कार्य करते हुये वहीं पर, सन् १७१८ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। (विस्तार के लिये देखिये श्री विश्वेश्वरनाथ द्वारा लिखित राठौड़ दुर्गादास. ४७ ५२।

अजीतसिंह और दुर्गादास में यह विरोध किस कारण हुआ, इस विषय में कई मत मिलते हैं। कहा जाता है कि दुर्गादास के शरीर में सैंकड़ों घाव थे, इसलिये वह झुककर अभिवादन नहीं कर सकता था। उसके विरोधी सरदार अजीतसिंह को भड़काते थे कि दुर्गादास उसे समुचित आदर नहीं देता है। अत: अजीतसिंह ने उसे निकाल दिया।[८४] परन्तु यह मत पूर्णतया तर्कहीन प्रतीत होता है। कुछ लेखकों का मत है कि बहादुरशाह ने अजीतसिंह को राज्य की सनद देते समय यह आदेश दिया कि दुर्गादास मारवाड़ में न रहने पाये। इसी कारण अजीतसिंह ने उसे निष्कासित किया था।[८५] परन्तु यह मत भी भ्रामक है क्योंकि इस समय तक बादशाह ने अजीतसिंह का जोधपुर, पर अधिकार स्वीकार नहीं किया था। इसके साथ ही दुर्गादास को मुगल सम्राट से बाद में सम्मान मिलता रहा, इसका प्रमाण अखबारात व अन्य ग्रन्थों में मिलता है।

ख्यातों में लिखा है कि सांभर की विजय के उपरान्त दुर्गादास ने अपनी सेना सहित अलग डेरा किया। जब अजीतसिंह ने उसे मिसल (सरदारों की पंक्ति) में डेरा करने के लिये कहा तो उसने प्रार्थना की कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ। (दुर्गादास की आयु इस समय लगभग सत्तर वर्ष की थी) अतएव मुझे इस सेवा से मुक्त कर दिया जाय। उसने यह भी कहा कि मेरे वंशज अन्य सरदारों के साथ ही डेरा किया करेंगे। महाराजा उसके उत्तर से अप्रसन्न हो गया और दुर्गादास भी इस बात को ताड़ गया उसने अजीतसिंह के समक्ष प्रस्ताव रक्खा कि जब शाही सेना से भागकर हम मेवाड़ गये थे तो महाराणा ने हमारा स्वागत किया था, अत: हमें भी उसे निमंत्रित करना चाहिये। अजीतसिंह ने उसकी बात स्वीकार करली और दुर्गादास को उदयपुर जाकर राणा को लाने का आदेश दिया। दुर्गादास उदयपुर जाकर वापस नहीं लौटा।[८६] ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि दुर्गादास ने सांभर के युद्ध के बाद अपना अलग हिस्सा माँगा था। इसी बात को लेकर जयसिंह ने अजीतसिंह को दुर्गादास के विरुद्ध उत्तेजित किया और उसने दुर्गादास को मारवाड़ से निकाल दिया।[८७] सम्भव है अजीतसिंह व दुर्गादास के मतभेद का तात्कालिक कारण रहा हो, परन्तु इसे मूल कारण नहीं माना जा सकता।

वीर विनोद में लिखा है कि दुर्गादास को यह गर्व हो गया था कि मैंने अजीतसिंह को राज्य दिलवाया है और मैं बादशाह मनसबदार हूँ। इसी बात पर विरोध हुआ और अजीतसिंह ने दुर्गादास को मारवाड़ से निष्कासित कर दिया।[८८]

---

८४. वीर दुर्गादास राठौड़ ले० जगदीशसिंह गहलोत-११३।

८५. तुहफए राजस्थान. ले० फरहती १८५; जिसका उल्लेख रामरतन हालदार ने वीर शिरोमणी दुर्गादास. (१३९) में किया है।

८६. ख्यात. भाग २, १८५; मूंदियाड़ २३६-८।

८७. मूल. २१५-६; । ३ भाग १, २६५ टि.।

८८. वीर. भाग २, ६६१।

वास्तव में अजीतसिंह के प्रकट होने के बाद से दुर्गादास का व्यवहार उसके प्रति विशेष अच्छा न था। सन् १६८७ ई० में अजीतसिंह के प्रकट होने तथा सन् १६६२ ई० में दुर्गादास की सलाह न मानकर अजीतसिंह के अजमेर पर आक्रमण करने पर वह अजीतसिंह से अप्रसन्न होकर अपने गांव भीमरलाई चला गया था। जब ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० (श्रावण वदि १३ सम्वत् १७६५) को अजीतसिंह ने प्रधान का पद चांपावत मुकुन्ददास को दे दिया,[८९] तो दुर्गादास को यह स्पष्ट हो गया कि वह शासन की समस्त बागडोर अपने हाथ में नहीं ले सकता। सम्भवतः इसी कारण वह अजीतसिंह की सेवा छोड़कर चला गया था।

सांभर का प्रबन्ध करने के बाद अजीतसिंह ने सम्भवतः अक्तूबर के महीने में ही टोडाना पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया और फिर दोनों आम्बेर गये। आम्बेर के सिंहासन पर जब जयसिंह बैठा तो अजीतसिंह ने उसे टीका किया। कुछ ही दिन बाद अजीतसिंह सांभर होता हुआ जोधपुर लौट गया।[९०]

अब अजीतसिंह ने नागोर पर आक्रमण करके राव इन्द्रसिंह तथा उसके पुत्र मोहकमसिंह को दण्ड देने का निश्चय किया। बृहस्पतिवार, २५ नवम्बर (पौष वदि ६) को उसने नागोर के लिये प्रस्थान किया। अभी वह कूचे नामक स्थान तक ही पहुँचा था कि उसे यह समाचार मिला कि मोहकमसिंह नागोर से भाग गया है। जब वह मूंडवा नामक स्थान पर पहुँचा तो इन्द्रसिंह की माँ अपने पौत्र अजबसिंह को साथ लेकर आई और उसने नागोर पर आक्रमण करने के लिये अजीतसिंह से बहुत अनुनय-विनय की। अजीतसिंह ने अपनी भाभी की बात स्वीकार कर ली। इन्द्रसिंह स्वयं भी आकर उससे मिला और उसने एक लाख रुपया नकद तथा हाथी, घोड़े आदि भेंट दिये। अजीतसिंह ने उसे तथा उसके पुत्रों को घोड़े व सिरोपाव दिये और कुछ दिन उपरान्त जोधपुर लौट आया।[९१]

उधर बहादुरशाह के दरबार में इन दिनों उसके दूसरे पुत्र अजीमुश्शान का प्रभुत्व बढ़ रहा था। अजीमुश्शान चूँकि जुल्फिकार खाँ से सम्बन्ध रखता था, वह भी अजीतसिंह और जयसिंह को विस्तृत अधिकार देने के पक्ष में था। सम्भवतः उसी के प्रभाव के फलस्वरूप बादशाह ने रविवार, २६ सितम्बर (२२ रजब) को अजीतसिंह को चार हजार जात साढ़े तीन हजार सवार का मनसब तथा एक लाख दाम दिये और २ अक्तूबर (२८ रजब) को उसे राजा की पदवी, खिलअत तथा हाथी दिया। इसी दिन दुर्गादास को भी एक हजार जात दो हजार सवार का मनसब, राव की पदवी,

---

८९. ओहदावही नं. १, १८।

९०. ख्यात. १४१ व १४२; जनी. ८८ दानेश्वर २२५-६; गुटका ३१० अ; कूर्म्मवंसविलास. १८६ ब;। ३. भाग १, २६७; ओझा. भाग ४, खंड २, ५५३।

९१. ख्यात. भाग २, १४३-४; जुनी; ८८; गुटका ३१० अ ब; अजितोदय. सर्ग १६; श्लोक १-७; अजितचरित्र सर्ग १०, श्लोक ८-१०; वीर. भाग २, ८३८; दानेश्वर २२६-७; राठौड़ा. ५४; रेउ. भाग १, ६६८; ओझा. भाग ४, खंड २, ५४५।

खिलअत, घोड़ा व तलवार दिया गया। जयसिंह को भी ढाई हजार जात दो हजार सवार का मनसब, पचास लाख दाम, राजा की पदवी, खिलअत तथा हाथी दिया गया।[६२]

अजमेर का सूबेदार शुजात खाँ अजीतसिंह तथा जयसिंह का दमन न कर सका था, अतः बहादुरशाह ने उसे अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया और सैयद अब्दुल्ला खाँ बारहा को उसके स्थान पर नियुक्त किया। अब्दुल्ला खाँ ने अपनी कई माँगें प्रस्तुत कीं, जिनमें से एक यह भी थी कि जोधपुर व मेड़ता की क़िलेदारी भी उसे दी जाय और इन स्थानों पर क्रमशः हसनअली और सैयद अबदुल्ला को नियुक्त करने की अनुमति दी जाय। उसकी यह माँगें स्वीकृत हो गई परन्तु वह अजमेर नहीं गया। सम्भवतः उसे यह भय था कि यदि वह शाही दरबार से हट जायेगा तो उसके विरोधियों का प्रभुत्व बढ़ जायेगा। अब्दुल्ला खाँ के अजमेर न पहुँचने के कारण शुजात खाँ ही पूर्ववत् कार्यभार सम्भालता रहा।[६३]

इधर जब शुजात खाँ को अपने हटाए जाने का समाचार मिला, तो उसने अजीतसिंह को परास्त करने के लिए प्रयत्न करने का निश्चय किया। उसने अजीत-सिंह को एक छलयुक्त पत्र लिखा कि राजाओं के सांभर व डीडवाना में सफल होने का समाचार सुनकर बादशाह ने अप्रसन्न होकर मुझे अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया है। जिस व्यक्ति को मेरे स्थान पर नियुक्त किया गया है वह आप लोगों के भय से नहीं आ रहा है। इस प्रकार मैं बादशाह तथा आप दोनों की दृष्टि में बुरा बन रहा हूँ। फलतः मैं चाहता हूँ कि आप अजमेर आयें और अपना अधिकार स्थापित करलें। यह पत्र पाकर अजीतसिंह ने तुरन्त अजमेर जाने का निश्चय किया। बृहस्पतिवार, ३ फरवरी, सन् १७०९ ई० (फाल्गुन सुदि ५) को उसने विट्ठलदास को आगे भेज दिया और शीघ्र ही स्वयं भी बीस पच्चीस हजार सैनिकों को लेकर उस ओर प्रस्थान किया। वह जोधपुर से चलकर मेड़ता में रुका और फिर अजमेर की ओर बढ़ा।

---

६२. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष २, १०९ व ११०; सतीशचन्द्र ३५ ने लिखा है कि अजीतसिंह को पूर्ण मनसब तथा जयसिंह को दो हजार जात दो हजार सवार एक हजार अस्पा का मनसब व पन्द्रह लाख दाम मिले थे। परन्तु मनसब के विषय में अखबारात को ही प्रमाणिक मानना उचित है।

ख्यात. (भाग २, १४२-१); जुनी. (८८) व दानेश्वर (२२६) के अनुसार रूप नगर के राजा राजसिंह ने शाहजादा अजीम-उश शान से अनुरोध किया कि वह बादशाह से कहकर दोनों राजाओं को उनका वेतन दिलवा दें। अजीम-उश-शान ने उसकी बात स्वीकार की और बहादुरशाह से प्रार्थना करके राजाओं को उनके देश दिलवा दिये। वंश (भाग ४, ३०२३-४) के अनुसार राव राजा बुधसिंह ने बादशाह से प्रार्थना करके राजाओं को स्वदेश दिलाये थे। अभय विलास (११ अ) में लिखा है कि अजीतसिंह, को जोधपुर मिल गया था; परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि फारसी इतिहासकारों ने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है साथ ही यदि राजाओं को अपने देश मिल गये होते तो उनका विरोध अवश्य दब जाता।

६३. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष २, ११९-२०; रोजनामचा. १२९-२०; इरविन. भाग १, ७१।

मार्ग में दोराहा नामक स्थान पर उसे विदित हुआ कि शुजात खाँ ने उसे धोखा दिया है, उसने युद्ध की पूरी तैयारी कर रखी है, और पुर तथा मांडल के थानेदार फीरोज-खाँ मेवाती के पुत्र को अपनी सहायता के लिए बुला लिया है। अजीतसिंह ने वहीं रुककर अपनी सेना व तोपखाने का संगठन किया और शनिवार, १६ फरवरी (चैत्र वदि ७, संवत् १७६६) को आगे बढ़कर अजमेर पर आक्रमण कर दिया।[९४]

अजीतसिंह ने मेड़ता से ही जयसिंह को भी एक पत्र लिखा था जिसमें उसे अजमेर जाने की सूचना देते हुए और वहाँ पहुँचने के लिए लिखा था। यह पत्र पाकर जयसिंह ने उस ओर जाने का विचार भी किया।[९५] परन्तु बाद में वह शुजात-खाँ के विरुद्ध अजमेर के घेरे के समय अजीतसिंह की सहायता के लिए नहीं गया।[९६] सम्भवतः आम्बेर पर अधिकार करने के बाद उसने वहाँ की शासन व्यवस्था सम्भालना अधिक उचित समझा।

शुजात खाँ अजीतसिंह की विशाल सेना को देखकर घबरा गया और उसने बादशाह को सब समाचार भेजा। बहादुरशाह ने सोमवार, २८ मार्च (२७ मुहर्रम, ११२१ हि०) को खानेजहाँ बहादुर, हाकिम खाँ, तथा मुहम्मद अमीन खाँ को आज्ञा भेजी कि वे अजीतसिंह के विरुद्ध जाएँ। दो दिन बाद ३० मार्च (२९ मुहर्रम) को बहादुर शाह ने गुजरात के सूबेदार फीरोज जंग के नाम एक फरमान भेजा जिसमें उसे शुजात खाँ की सहायता के लिए जाने की आज्ञा दी।[९७]

अजमेर का युद्ध कई दिन तक चला। फलतः नगरवासियों के लिए खाद्यान्न की कमी होने लगी। शुजात खाँ व उसके साथियों को भी कठिनाई होने लगी। शुजात खाँ ने राजा जयसिंह को लिखा कि वह किसी प्रकार अजीतसिंह को घेरा उठाने के लिए मनाएँ।[९८] जयसिंह ने दौलतसिंह व कुछ व्यक्तियों को अजीतसिंह के पास भेजा।[९९] सम्भवतः वह स्वयं भी अजमेर गया और उसने अजीतसिंह से बातचीत की। परन्तु अजीतसिंह व उसके साथी वतन और अन्य जागीर से सम्बन्धित शाही फरमान न पाने के कारण बहुत व्यग्र थे।[१००] अन्त में रूपनगर के राजा राजसिंह के माध्यम से सन्धि हुई। अजीतसिंह ने पैंतालीस हजार रुपया लेकर घेरा हटा लिया।[१०१] इस प्रकार शुजात खाँ की योजना पूरी तरह असफल रही और अजीतसिंह की धाक जम गई।

---

९४. ख्यात. भाग २, १४५-६; ओझा. भाग ४, खंड २, ५४६।
९५. जयपुर रिकार्ड्स, हिन्दी, भाग २, खंड २, १४।
९६. फारसी. पत्र; रा. पु. बी. नं. १३४७।
९७. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष २, २५; वर्ष ३, ४०; कामवर. ३२३; मीरात. २४१।
९८. मुफरिक महाराजगान, नं. २१६७, रा. पु. बी.।
९९. वही., नं० २१७० व २१७२।
१००. वही, नं. २१९२।
१०१. ख्यात, भाग २, १४६-७; चुनी, ८८; वीर. भाग २, ८३८; अजीतोदय. सर्ग १६; श्लोक. ९-१३; अजीतचरित्र. सर्ग १०; श्लोक. १-६; दानेश्वर. २२७; रेउ. भाग १. १९९; ओझा. भाग ४, खंड २. ५४६।

अजमेर से अजीतसिंह देवलिया गया, जहाँ ११ मार्च (चैत्र सुदि १२) को उसका विवाह वहाँ की राजकुमारी से हुआ। देवलिया के राव ने एक हथिनी, आठ घोड़े तथा दो सौ वस्त्र दहेज में दिया। तत्पश्चात् वह जोधपुर के लिए रवाना हुआ और शनिवार, १९ मार्च (वैशाख वदि ५) को वहाँ पहुँचा।[१०२]

राजपूतों की समस्या पूरी तरह सुलझ न पाई थी। बहादुरशाह ने अब आसफुद्दौला असद खाँ को यह आदेश दिया कि वह अजीतसिंह और जयसिंह को शान्त करने का प्रयत्न करे।[१०३] सम्भवत: यह आज्ञा शाहजादा अजीमुश्शान के प्रभाव के फलस्वरूप ही दी गई थी। असद खाँ ने अजीतसिंह तथा जयसिंह के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि यदि वे सांभर व डीडवाना से अपना अपना अधिकार हटालें तो उन्हें उनके वतन जागीर में दे दिए जायेंगे। इस प्रस्ताव के अनुसार अजीतसिंह की नियुक्ति काबुल में तथा जयसिंह की अहमदाबाद में की गई थी। असद खाँ ने वासल खाँ के द्वारा वतन जागीर के लिए अपनी मुहर का फरमान अजीतसिंह और जयसिंह को भेज दिया। उसने अपने इस कार्य की सूचना बादशाह को दे दी और प्रार्थना की कि वह भी उन्हें वतन देना स्वीकार करले। असद खाँ का पत्र पाकर बादशाहने भी इस आशय के फरमान जारी किए। परन्तु अजीतसिंह और जयसिंह इस प्रस्ताव को मानने के लिए तैयार न थे, क्योंकि उनकी नियुक्ति उनके वतन से बहुत दूर की गई थी। काबुल जोधपुर से और अहमदाबाद आम्बेर से काफी दूर था, फलत: इतनी दूर रहकर अपने राज्यों का प्रबन्ध सुचारू रूप से करना उनके लिए सम्भव न था। इसके साथ ही इस प्रस्ताव के अनुसार वे एक दूसरे से बहुत दूर हो जाते थे। चूँकि दोनों ही बादशाह के विरोधी थे और दोनों की समस्याएँ समान थीं, अत: वे एक दूसरे के निकट रहकर एक दूसरे की सलाह से काम करना चाहते थे। सम्भवत: असद-खाँ ने भी यह प्रस्ताव इसी विचार से रक्खा था कि एक दूसरे से दूर रहकर उनकी शक्ति संगठित न हो सकेगी और उन पर ही प्रभुत्व बढ़ सकेगा।[१०४]

असद खाँ ने साँभर की ओर वासल खाँ के पुत्र को भेजा था। अजीतसिंह के आदेशानुसार उसके कर्मचारियों ने उसे साँभर का अधिकार नहीं सौंपा। वे लोग सारी वसूली तथा शासन के अन्य सभी कार्य पूर्ववत् करते रहे। वासल खाँ के पुत्र

---

१०२. ख्यात. भाग २, १८७; जुनी. ८८. अजीतोदय. सर्ग १९, श्लोक. १३-५; वीर. भाग २, ८३९ व १७६२; अजीतचरित्र. सर्ग १० श्लोक ७; दानेश्वर. २२७; खरीता जयपुर रिकार्ड, २९ मार्च (वैशाखवदी १४) का लिखा हुआ अजीतसिंह का जयसिंह को पत्र, रा. पु. बी.; जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ३, ४२; ओझा. भाग ४, खंड २, ५४७।

१०३. वकील रिपोर्टस, रा. पु. बी., नं. १४५७।

१०४. जयपुर रिकार्डस्, हिन्दी, भाग २, खंड २, १५ व ६२-४; भाग २, खंड ४, १७०-१ १८२-३ व १७४; जयपुर अखबारात, रा. पु. बी. नं. १२८, १२३ व १३८; मुतफरिक महराजगान, रा. पु. बी नं. १७७; वकील रिपोर्ट्स, रा. पु. बी. नं. ३७३, ३७६ व ३७७।
बहादुरशाह (१६५-६) में असद खाँ द्वारा सन्धि के लिये किये गये इस प्रयत्न का उल्लेख अजमेर के लिये किये गये युद्ध से पूर्व किया गया है, परन्तु तिथिक्रम के अवलोकन से यह ठीक प्रतीत नहीं होता।

अजीतसिंह को भेजे और दोनों राजाओं को वतन दिलाने का वचन भी दिया। उसने यह भी कहलाया कि यदि बादशाह उसकी बात स्वीकार नहीं करेगा तो अपना मनसब छोड़ देगा। उसने यह संदेश भेजा कि वह ससैन्य अजमेर आ रहा है, परन्तु यह केवल दिखावा है, उससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।[११०]

परन्तु अजीतसिंह व जयसिंह—दोनों ही फ़ीरोज़ जंग पर विश्वास नहीं कर सके। अजीतसिंह ने सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करने का निश्चय किया और स्थान-स्थान से अपने प्रमुख सरदारों को बुलाया। उसने सभी परगनों में सेनाएँ एकत्र करने के लिए आदेश भेजे और जोधपुर, मेड़ता, सोजत, फलोदी, जालोर, सांचोर, सिवाना आदि सभी परगनों से स्त्री बच्चों को हटाने की आज्ञा दी तथा राज परिवार को भी सुरक्षित स्थान में भेजने का प्रबन्ध किया। उसने जयसिंह को भी एक पत्र लिखा जिसमें अपने सुरक्षात्मक प्रबन्ध का विवरण देते हुए बताया कि वह शाही सेना से युद्ध करने के लिए सदैव तैयार रहेगा और जहाँ तक सम्भव होगा शाही मुल्क भी लूटेगा। अजीतसिंह ने अपने पत्र में जयसिंह को भी इसी नीति का पालन करने की सलाह दी। अजीतसिंह व जयसिंह ने निश्चय किया कि वे सांभर में एकत्र होकर भावी योजना बनाएंगे।[१११] सांभर की ओर जाते हुए मार्ग से अजीतसिंह ने नागोर के राव इन्द्रसिंह को लिखा कि वह मार्ग में मेड़ता में आकर ससैन्य उससे मिले। परन्तु इन्द्रसिंह ने उत्तर भेजा कि मैं शाही नौकर हूँ अतः बादशाह के विरुद्ध में सहायता नहीं दूँगा। अजीतसिंह ने क्रोधित होकर अपने लड़के को सेना देकर इन्द्रसिंह पर आक्रमण करने के लिए भेजा व शीघ्र ही स्वयं भी उस ओर गया। यह घेरा कई दिन चला। तब उदयपुर के राणा अमरसिंह ने अपने वकील मुन्नाराम को अजीतसिंह के पास भेजा और नागोर से हट जाने के लिए कहा। चार दिन तक बात चीत चलती रही। इस बीच इन्द्रसिंह का दूत भी अजीतसिंह के पास आया। उसने कुछ धन दिया और यह भी कहा कि यदि महाराजा घेरा उठाने के लिए कुछ और धन चाहता है तो इन्द्रसिंह कुछ दिन उपरान्त दे देगा। इन्द्रसिंह, ने

---

११०. जोधपुर खरीता ७/८ रा. पु. वी. ५ सितम्बर (भाद्रपद सुदी १२); का लिखा जयसिंह को अजीतसिंह का पत्र जयपुर अखबारात. (नं. १३७, रा. पु. वी.) के अनुसार १६ जून, सन् १७०६ ई० (२१ रबीउस्सानी, ११२२ हि०) को बादशाह को पता चला कि सम्भवत: फिरोज जंग राजाओं को सहायता देने के लिये तैयार है, इसी कारण वह अजमेर नहीं गया है। एक राजस्थानी. पत्र नं. १४३१, रा. पु. वी.. १६ जून आषाढ़ बदी ५, छैलदास का पत्र (जयसिंह को) में लिखा है कि फिरोज जंग ने असद खां को एक पत्र लिखकर यह सूचित किया है कि दोनों राजा आज्ञाकारी हैं और उन्होंने थाना उठा लिया है अतः उसे (फीरोज जंग) को अजमेर न भेजा जाय, अन्यथा अजीतसिंह व जयसिंह को सन्देह होगा।

१११. जोधपुर खरीता ७/८, रा. पु. वी., अजीतसिंह का पत्र जयसिंह को, ५ सितम्बर (भाद्रपद सुदी १३); जोधपुर खरीता ७/५, रा. पु. बी., अजीतसिंह का पत्र जयसिंह को, २६ सितम्बर (आश्विन सुदी ७)।

अजीतसिंह को सहायता देने का वचन दिया और अपने पुत्र को भी उसके साथ भेज दिया।[११२]

मार्ग से ही अजीतसिंह ने हिम्मतसिंह के नेतृत्व में दो हजार सवार मालपुरा भेजे। उन्होंने कई गाँव लूटे, परन्तु अन्त में वहाँ के अधिकारी रज़ा मुस्लिम ख़ाँ ने उन्हें परास्त करके भगा दिया। बादशाह को यह समाचार ४ दिसम्बर को (१२ रमजान) को मिला।[११३]

अजीतसिंह ने मारोठ को भी घेरा। वहाँ के अधिकारी अधिक समय तक उसका सामना न कर सके और अन्त में मेड़तिया कल्याणसिंह राजसिंहोत के माध्यम से १६ अप्रेल सन् १७१० ई० (वैशाख वदि १४, संवत् १७६७) को शान्ति स्थापित हुई और मारोठ पर अजीतसिंह का अधिकार मान लिया गया। महाराजा ने भण्डारी विजयराज को वहाँ का हाकिम नियुक्त किया।[११४]

सम्भवतः यहीं से अजीतसिंह ने भण्डारी खींवसी को कुछ सैनिकों के साथ देवगांव (जिला अजमेर) पर अधिकार करने के लिए भेजा। वह २८ जुलाई (श्रावण सुदि १४) को वहाँ पहुँचा और उसने वहाँ के अधिकारी नाहर ख़ाँ से गढ़ी ख़ाली करने के लिए कहा। नाहर ख़ाँ ने उत्तर दिया कि मुझे दुर्गादास राठौड़ ने यहाँ का अधिकार सौंपा था, इसलिए उसकी आज्ञा के बिना मैं यहाँ से नहीं हटूँगा। इसके बदले में मुझसे जो कुछ कहा जाय मैं करने के लिए तैयार हूँ। अन्त में सन्धि हुई जिसके अनुसार नाहर ख़ाँ ने सत्रह हजार रुपया पेशकश देना तथा अपने बेटे को अजीतसिंह की सेवा में भेजना स्वीकार किया।[११५]

इस प्रकार मार्ग में कई स्थानों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के बाद अजीतसिंह सांभर पहुँचा और जयसिंह से मिला। इसी बीच बादशाह के साथ सुलह के विषय में बातचीत होती रही और पूर्ण आश्वस्त होकर अजीतसिंह और जयसिंह ने एक साथ बादशाह के पास जाने के लिए सांभर से प्रस्थान किया।[११६]

(ब) द्वितीय सन्धि (१७०९–१२ ई.)

कामबख्श की स्वातन्त्र्य घोषणा का समाचार सुनकर बादशाह बहादुरशाह को अजीतसिंह व जयसिंह की समस्या का समाधान किए बिना ही दक्षिण जाना पड़ गया था। नर्मदा नदी के निकट तक साथ आने के बाद जब ये दोनों राजा बिना उसकी अनुमति लिए शाही शिविर से भाग गए, तब भी दक्षिण की समस्या की

---

११२. जोधपुर खरीता ७/१२, रा. रा. बी.; अजीतसिंह का पत्र जयसिंह को, २६ जनवरी सन् १७१० ई० (माघ सुदी १० संवत् १७६६); जयपुर रिकार्ड्स, हिन्दी, भाग २, पृ. ४, १८०-१; अखबारात, लन्दन संग्रह, भाग ३, ५८ व ६८; अजीतोदय, सर्ग १६, श्लोक १०-५; राजरूपक, ४४५-६; टॉड, भाग २, ३३; रेउ, भाग. १, ३०० ।

११३. जयपुर अखबारात, नं. १२४८, रा. रा. बी. ।

११४. ख्यात, भाग २, ६३५; जुबिलाट. २४५; अजितोदय, सर्ग १६, श्लोक २७-८; कुलनंद विलास ११८ ब; राजरूपक, ४५१; वीरविनोद, २३३; राठौड़ा. ४६; रेउ, भाग १, ३०० ।

११५. ख्यात, भाग २, ६५७; मुनौ. ८८-६; वीरविनोद. ६३०; ओझा, भाग ४, खंड २, ५४६-५० ।

११६. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ६६ ।

गम्भीरता को देखते हुए बहादुरशाह उनके विरुद्ध सेना न भेज सका। बादशाह के दक्षिण की ओर चले जाने के बाद जोधपुर व आमेर में नियुक्त शाही कर्मचारी वहाँ अपना अधिकार स्थाई न रख सके और अजीतसिंह और जयसिंह का विद्रोह निरन्तर बना रहा। एसी परिस्थिति में ४ जनवरी, सन् १७०६ ई. को जब बहादुरशाह के अन्तिम प्रतिद्वन्द्वी कामबख्श की मृत्यु हो गई[११७] तो उसने तुरन्त उत्तर भारत लौटकर अजीतसिंह व जयसिंह की समस्या को सुलझाने का निर्णय किया। दक्षिण में यद्यपि मरहठों की समस्या गम्भीर हो रही थी, परन्तु उत्तर-भारत में दो प्रबल राजपूत शासकों का विद्रोह होना अधिक गम्भीर समझकर उसने दक्षिण में आवश्यक अधिकारियों को नियुक्त किया और १८ जुलाई को औरंगाबाद से उत्तर-भारत के लिए प्रस्थान किया। १५ दिसम्बर को नर्मदा पार करके वह माण्डू व नालचा के मार्ग से आगे बढ़ा और ६ जनवरी, सन् १७१० ई. को दीपालपुर पहुँचा। तत्पश्चात् कलियादह, मुकुन्ददर्रा, कालीसिन्ध तथा लोकोरी से होते हुए वह ५ मई को टोंक पहुँचा और वहाँ से दन्दवा सराय गया जो अजमेर से केवल तीस कोस दूर थी।[११८]

बहादुरशाह के अजमेर के इतने निकट पहुँचने का समाचार सुनकर अजीतसिंह को घबराहट हुई। उस समय उनकी आर्थिक दशा अच्छी न होने के कारण[११९] सेना इकट्ठा करना भी कठिन था। विरोध से कोई लाभ न देखकर उन्होंने समझौते की नीति अपनाने का निश्चय किया। फलतः कामबख्श पर विजय पाने के उपलक्ष में अजीतसिंह ने दो सौ मुहरें तथा दो हज़ार रुपया भेजा जो सोमवार, १५ अगस्त, सन् १७०६ ई. (१६ जमादिउस्सानी) को बादशाह को मिला। जयसिंह ने भी इतनी ही धन राशि बादशाह को भेजी थी। दोनों राजाओं ने अजमेर व अहमदाबाद के फ़ौजदार फ़ीरोज़ जंग को भी लिखा कि वे बादशाह से क्षमा चाहते हैं। अजीतसिंह के वकील गुलाबराय तथा जगजीवनदास शनिवार, ८ अप्रेल (१६ सफ़र) को चम्बल नदी के किनारे बादशाह से मिले। उनके साथ ही जयसिंह के वकील भी थे। दूसरे दिन इन लोगों ने अपने-अपने राजाओं के प्रार्थना-पत्र बहादुरशाह के समक्ष रक्खे, जिनमें अजीतसिंह तथा जयसिंह दोनों ने ही अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी थी। बादशाह ने इन दूतों को एक-एक खिलअत दी।

---

११७. बहादुरशाह १६६।

११८. इरविन भाग १,७१।

११९. २१ अप्रैल सन् १७०६ ई० (२१ सफर, ११२१ हि०) को बादशाह को समाचार मिला कि राणा अमरसिंह ने एक लाख रुपया तथा पाँच घोड़े अजीतसिंह को दिये हैं। ७ अक्तूबर (१३ शाबान) को पता चला कि जोधपुर के साहूकार. अजीतसिंह से दो लाख रुपया माँग रहे हैं और १२ जनवरी सन् १७१० ई० (२२ जिलकाद) को सूचना मिली कि अजीतसिंह ने अपने और जयसिंह के आदमी सांभर भेजे हैं जो एक रुपये एक बार नमक के थैले बेचकर धन वसूल कर रहे हैं। (जयपुर अखबारात; नं० १६१०, १२६६, १२८०, रा. पु. बी.)।

२३ अप्रेल (५ रबीउलअव्वल) को सोर नामक स्थान पर अजीतसिंह की एक अर्जी पुनः आई जो खानेखाना के द्वारा बादशाह के सम्मुख रखी गई।[120]

बादशाह ने मंगलवार, १४ मार्च, सन् १७१० ई. (२४ मुहर्रम, ११२२ हि०) को नाहर खाँ को सांभर भेजा था और यह आदेश दिया था कि वह अजीतसिंह और जयसिंह को मुगल-सम्राट् की ओर से आश्वस्त करके दरबार में लाए। नाहर खाँ और यार मुहम्मद कोल शाही आज्ञानुसार दोनों राजाओं से मिले और अजीतसिंह के वकील भण्डारी खींवसी तथा जयसिंह के वकील भिखारीदास को लेकर लौटे। १० मई (२२ रबीउलअव्वल) को दन्दवा सराय में शाहज़ादा अज़ीमुश्शान की मध्यस्थता से अजीतसिंह व जयसिंह के वकील जब बादशाह से मिले और उन्होंने राजाओं के प्रार्थना-पत्र उसके सम्मुख रखे तो उसने इन दोनों राजपूत शासकों के अपराध क्षमा कर दिए और उनके प्रतिनिधियों को खिलअतें दी[121] सम्भवतः इसका कारण यह था कि उत्तर पश्चिम सीमा में इस बीच एक गम्भीर समस्या उठ खड़ी हुई थी और २३ अप्रेल को बादशाह को यह समाचार मिल चुका था कि लाहौर व सरहिन्द में सिक्खों ने विद्रोह कर दिया है।[122]

राजाओं के वकीलों ने बादशाह से अजीतसिंह के लिए अहमदाबाद तथा जयसिंह के लिए मालवा की सूबेदारी माँगी। बहादुरशाह के मैत्री पूर्ण रुख़ को देखकर उन्होंने दोनों राजाओं को भी दरबार में आने के लिए लिखा।[123]

१७ मई (२९ रबीउलअव्वल) को मुनीम खाँ की प्रार्थना पर उसके बड़े लड़के बख्शिउलमुल्क महावत खाँ को राजाओं को लाने के लिए विदा किया गया, और उसे यह आदेश दिया गया कि उनके पास पहुँच कर उन्हें समझाए कि बादशाह से मिलने में किसी प्रकार का भय नहीं है। कुछ ही दिन बाद मुनीम खाँ ने बहादुरशाह

---

१२०. जयपुर अखबारात; बहादुरशाह, वर्ष ३, ७२; वर्ष ४, ५० व ६७; अखबारात, लन्दन-संग्रह, भाग १, १५, २०, ४५, ५० व १५४; जयपुर अखबारात, नं. ११०४, रा. पु. बी. राजस्थानी पत्र, नं. ३६१, रा. पु. बी.; कामवर, ३३३।

ख्यात, (भाग २,१५५); मूंदियाड़ (२४४) दानेश्वर (२३०); राठौड़ां (५५); कूर्मवंशविलास (१८६ ब) में भी लिखा है कि अजीतसिंह ने भंडारी खींवसी तथा जयसिंह ने भिखारीदास को बादशाह के पास भेजा था।

१२१. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ३३; कामवर ३४६ व ३४७; ख्यात भाग २, १५५; मूंदियाड़ २४४-५; दानेश्वर २३०; राठौड़ां ५५ व ५६; इरविन भाग १, ७२।

राजस्थानी ख्यातों में लिखा है कि इसी समय भंडारी खींवसी ने अजीतसिंह के लिये काबुल के सूबे में नियुक्ति स्वीकार कर ली थी और परवाना लेकर लौट आया। परन्तु अजीतसिंह को यह स्वीकार नहीं हुआ और उसने खींवसी को पुनः भेजा। तब उसने बादशाह से प्रार्थना करके यह नियुक्ति रद्द करवाई।

१२२. बहादुरशाह २२१।
१२३. वकील रिपोर्ट्स राजस्थानी, नं. १५, १६ व २६, रा. पु. बी।

था यह सूचना दी कि उसके पुत्र ने गंगवाना नामक स्थान पर राजाओं से मिलकर उन्हें १० जून को बादशाह से मिलने के लिए राज़ी कर लिया है।[१२४]

कुछ ही दिन बाद बहादुशाह को यह समाचार मिला कि सरहिन्द का फौजदार वजीर खां ११ मई को युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया है।[१२५] इससे बहादुरशाह उत्तर-पश्चिमी सुरक्षा के लिये विशेष चिन्तित हो उठा और उसने शीघ्रातिशीघ्र राजपूतों की समस्या को सुलझाकर स्वयं उस ओर जाने का निश्चय किया। यह परिस्थिति अजीतसिंह तथा जयसिंह के लिये बहुत हितकर हुई। बादशाह की इस विवशता का उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया और निम्नलिखित मांगें अपने वकीलों के द्वारा बादशाह के सम्मुख रखवाई :

(१) अजीतसिंह और जयसिंह बादशाह की सवारी के समय सेवा में उपस्थित होंगे।

(२) बादशाह से मिलने के उपरान्त वे तत्काल अपने राज्यों को लौट जायेंगे।

(३) राजाओं को ६ माह का अवकाश दिया जायेगा, ताकि वे अपने राज्यों का प्रबन्ध कर सकें।

(४) छः माह उपरान्त उन्हें जहां भी नियुक्त किया जायेगा उसे वे स्वीकार करेंगे।

(५) बादशाह से भेंट के समय शाहजादा अजीमुश्शान उनके साथ रहेगा।

अपने शासनारम्भ में बहादुरशाह ने अजीतसिंह और जयसिंह को आतंकित करके उनकी विद्रोह करने की शक्ति को कुचलना चाहा था; परन्तु धीरे-धीरे उसे यह स्पष्ट हो गया था कि अजीतसिंह और जयसिंह को इस प्रकार अधीन रखना सम्भव नहीं है। इसके साथ ही सिक्खों के विद्रोह के कारण स्थिति इतनी गम्भीर हो चुकी थी कि उसने अजीतसिंह और जयसिंह की उक्त शर्तों को स्वीकार करना ही उचित समझा।[१२६]

मई के तीसरे सप्ताह (रबीउस्सानी के प्रथम सप्ताह) में यार मुहम्मद खां और नाहर खां को अजीतसिंह व जयसिंह के पास इस आशय का फरमान देकर भेजा गया कि उनका राज्य उन्हें वापस दिया जाता है और वे तुरन्त दरबार में उपस्थित

---

१२४. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष-४, ८८; कामवर ३४८; इरविन भाग १, ७२।

१२५. बहादुरशाह २२१।

१२६. रोजनामचा १२१-२; मआसिर १७४; इरादत खां ६१; अहवाल ३२ व ३३ अ; सतीशचन्द्र २२१।

अजित चरित्र (सर्ग १०, श्लोक १३-९) में भी लगभग इसी प्रकार की शर्तों का उल्लेख है।

हों। दोनों राजदूतों को आदेश मिला कि वे दोनों राजाओं को समझा-बुझाकर दरबार में लायें। इनके साथ ही राजाओं के वकीलों को भी विदा किया गया। इसी समय महाबत खां, इतमाम तथा राजा गोपालसिंह को यह आज्ञा दी गई कि जब दोनों राजा एक मंजिल की दूरी पर रह जाय तो वे आगे जाकर उनका स्वागत करें और उन्हें तसल्ली दिलाकर बादशाह की सेवा में लायें।[१२७]

बार-बार आश्वासन पाकर अजीतसिंह तथा जयसिंह ने बादशाह से मिलने का निश्चय किया। रविवार, २८ मई (१० रबीउस्सानी) को बहादुरशाह को यह समाचार मिला कि राजाओं ने दरबार में आने के उद्देश्य से सांभर से मनोहरपुर की ओर कूच किया है।[१२८] रविवार, ११ जून सन् १७१० ई० (२४ रबीउस्सानी ११२२ हि०) को जब बादशाह अजमेर के निकट देवराई नामक स्थान पर ठहरा हुआ था, तब दोनों राजा आकर उससे मिले। शाही आज्ञानुसार महाबत खां ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उसी दिन वे अजीमुश्शान के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित किये गये। इस अवसर पर अजीतसिंह ने दो सौ मुहरें और दो हजार रुपये भेंट किये। जयसिंह ने भी इसी प्रकार भेंट की।[१२९] शनिवार, १७ जून (३० रबीउस्सानी) को अजीतसिंह को चार हजार जात चार हजार सवार का मनसब मिला।[१३०] बहादुरशाह ने अजीतसिंह व जयसिंह दोनों को ही तत्काल वतन लौट जाने की अनुमति दी। विदा होते समय अजीतसिंह को खिलअत, बड़ी

---

१२७. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ८६; कामवर ३४८।

रा. पु. वी. में एक फरमान (नं. २०) है जो १६ मई (१ रबीउस्सानी) को अजीतसिंह के नाम लिखा गया है जिसमें लिखा है कि शाही सेवा करने की शर्त पर अजीतसिंह को जोधपुर दिया गया है।

१२८. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ९६।

१२९. कामवर ३४८; रोजनामचा १२२; इरादत खाँ ६१; ख्यात भाग २, १५५; मूंदियाड़ २४५; कूर्मवंशविलास १८९ ब; इरविन भाग १, ७३; ओझाभाग ४, खंड २, ५४८।

इस भेंट के समय दोनों राजपूत शासक बादशाह की ओर पूर्णतया आश्वस्त नहीं थे; वे पूरी सैनिक तयारी के साथ बादशाह से मिलने आये थे। रोजनामचा में लिखा है कि राजाओं की बारह हजार सेना तैयार थी और एक हजार इनके साथ उपस्थित थी। कामवर खां, जो इस समय शाहजादा रफीउश्शान के साथ था, लिखता है कि मैंने स्वयं देखा कि सारा जंगल राजपूतों से भरा हुआ है। हजारों ऊंट जंगलों व पहाड़ों में खड़े हैं और प्रत्येक ऊंट पर दो-तीन व्यक्ति सशस्त्र बैठे हैं। जबकि बादशाह के शिविर में उसके चार पुत्रों तथा प्रमुख सरदारों के अतिरिक्त और कोई भी नहीं था।

१३०. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह; वर्ष ४, ११-२।

इस अखबार में लिखा है कि अजीतसिंह के पुत्र तख्तसिंह को एक हजार जात पांच सौ सवार, समरसिंह को एक हजार जात दो सौ सवार और जैतसिंह को सात सौ जात दो सौ सवार का मनसब दिया गया था। परन्तु इस नाम के अजीतसिंह के कोई पुत्र नहीं थे। सम्भवतः बख्तसिंह को ही तख्तसिंह लिखा गया है।

तलवार, जड़ाऊ जमधर, हाथी तथा ईराकी घोड़े उपहार स्वरूप दिया। जयसिंह को भी इसी प्रकार के उपहार मिले।[131]

जोधपुर के राठौड़ों तथा मुगल सम्राट् के बीच जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद जो संघर्ष आरम्भ हुआ था और जोधपुर में निरन्तर अस्थाई स्थिति बनी हुई थी, उसका अब अन्त हो गया। अजीतसिंह ने प्रथम बार मुगल बादशाह से जोधपुर राज्य का अधिकार प्राप्त किया। अजीतसिंह और जयसिंह एक साथ पुष्कर गये, वहाँ स्नान करने के उपरान्त वे अपने-अपने राज्यों को चले गये। अजीतसिंह जुलाई, सन् १७१० ई० को जोधपुर पहुंचा।[132]

अगले कुछ महीनों में अजीतसिंह जोधपुर में ही रहकर वहाँ सुव्यवस्था स्थापित करने में संलग्न रहा। बादशाह के साथ उसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने रहे। बादशाह ने उसके बड़े पुत्र अभयसिंह को धोलका का परगना दिया।[133] अजीतसिंह को उसने अपनी सन्धि की शर्तों के अनुसार कहीं भी नियुक्त नहीं किया।

बहादुरशाह इस बीच सिक्खों के विद्रोह को दबाने में व्यस्त रहा। शाही अधिकारियों द्वारा बार-बार प्रयत्न किये जाने पर भी सिक्खों के गुरु बन्दा को पकड़ा न जा सका था। वहाँ की समस्या गम्भीर रूप लेती जा रही थी, अतः वहाँ और सैन्य-शक्ति की आवश्यकता थी। अतः जैसे ही अजीतसिंह का छः महीने का अवकाश-काल समाप्त हो गया, बहादुरशाह ने उसे सिक्खों के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने का आदेश भेजा। ऐसी ही आज्ञा जयसिंह को भी दी गई और इन दोनों को बुलाने के लिये तुराब अली को भेजा गया। परन्तु न तो अजीतसिंह ने उसकी आज्ञा का पालन किया और न उसके मित्र जयसिंह ने २१ मार्च; सन् १७११ ई० (१३ सफर,

---

१३१. कामवर ३२८; खफी खां भाग २, ६६२; इरविन भाग १, ७३; ओझा भाग ४, खंड २, ५४८; पूर्व १४८; । उमराए १०५ तथा फारूकी २४२-३ राजाओं का हाथ बांधे हुये बादशाह से मिलना लिखा है। परन्तु यह ठीक नहीं है। राजा इस समय ससम्मान बादशाह से मिले थे।

राजपूतों के साथ इस संधि में अजीमउश-शान का बड़ा हाथ था इरादत खां (६०) का मत है कि सम्भवतः शाहजादे ने राजपूतों का पक्ष इस विचार से लिया था कि वे भविष्य में जब उसके पिता की मृत्यु के उपरान्त उत्तराधिकार—युद्ध में उसे सहायता दें।

अजितोदय (सर्ग १६, श्लोक २६–३७) में अन्य स्थानों की भांति यहाँ भी बादशाह की सेना से युद्ध व महाराजा अजीतसिंह की विजय लिखी है। इस पराजय को सुनकर खानेखाना ने बादशाह को संधि करने की सलाह दी जिसे बादशाह ने स्वीकार कर लिया। तब खानेखाना जाकर अजीतसिंह को लेकर आया। अजीमउशशान तथा बादशाह ने उसका स्वागत किया। परन्तु यह विवरण केवल पक्षपात पूर्ण है।

१३२. कूर्म्मवंसविलास. १८६ ब; राजरूपक. ४४६; अजित चरित्र सर्ग १०, श्लोक २०; टॉड. भाग २, ६१; इरविन. भाग १, ७३; ओझा. भाग ४, खंड २, ५४६।

१३३. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ४१८।

११२३ हि.) को अब्दुलगनी बेग व अजीज बेग को राजाओं को बुलाने के फरमान देकर पुनः भेजा गया।[१३४]

इसी बीच फरवरी, सन् १७११ ई० में मुनीम खां की मृत्यु हो गई।[१३५] इससे अजीतसिंह व जयसिंह के समर्थक अजीमुश्शान तथा जुल्फिकार खां का प्रभाव दरबार में बढ़ गया था, और इन दोनों मित्रों को यह आशा हुई कि सम्भवतः अब उन्हें अहमदाबाद व मालवा के सूबे प्राप्त हो जायेंगे। अजीमुश्शान ने उनके पास बार-बार संदेश भेजा कि उनके स्वयं दरबार में उपस्थित होने पर ही उनकी मांगे पूरी हो सकतीं हैं। एक निशान द्वारा उसने उन्हें साधौरा पहुंचने का आदेश दिया और उनके लिये सिरोपाव भी भेजा। दरबार में उपस्थित अजीतसिंह और जयसिंह के वकीलों द्वारा भी उसने कहलाया कि राजाओं को यथाशीघ्र शाही सेवा में उपस्थित हो जाना चाहिये। शेख कुदरतुल्ला[१३६] ने उन्हें इसी आशय के पत्र लिखे और वकीलों ने भी उन्हें बार-बार साधौरा जाकर शाही सेवा में उपस्थित होने की सलाह दी।[१३७] फलस्वरूप अजीतसिंह व जयसिंह ने दरबार में जाने का निश्चय किया और यह भी तय किया कि इस यात्रा में वे साथ-साथ रहेंगे। जयसिंह आम्बेर से निकलकर मनोहरपुर के निकट अजीतसिंह की प्रतीक्षा में रुका रहा। उसने अजीतसिंह को बार-बार शीघ्र आने के लिये लिखा और अपने वकीलों को भी लिखा कि जब अजीतसिंह आ जायेगा तभी वे दोनों एक साथ शाही दरबार में पहुंचने के लिये यात्रारम्भ करेंगे। अजीतसिंह राजगढ़ के केसरसिंह की कन्या के साथ विवाह करने के लिये राजगढ़ गया हुआ था, और विवाह का कार्य समाप्त होते ही मई के महीने में जयसिंह के पास पहुंच गया। तब दोनों ने यात्रारम्भ की।[१३८]

रविवार, ३ जून (२७ रबीउस्सानी) को अजीतसिंह और जयसिंह नाहरखेरा पहुँचे और १० जून (५ जमादिउलअव्वल) को नरनौल पहुचे। इन्हें देखकर नरनौल की प्रजा भय के कारण भागने लगी। तब दोनों राजाओं ने लोगों को दिलासा दिया और कहा कि हम शाही सेवक हैं और बादशाह के पास जा रहे हैं, अतः हमसे डरने की कोई बात नहीं है। बहादुरशाह व्यास नदी पार करने के बाद जब निकट ही रुका हुआ था, तब २७ जून (२२ जमादिउलअव्वल) को उसे यह समाचार मिला

---

१३४. वही, १३ व १५७।

१३५. बहादुरशाह २३०।

१३६. शेख कुदरतुल्लमा शाहजादा अजीमुश्शान का कृपा पात्र था और इन दिनों उसका महत्व भी बढ़ गया था। पत्रों में इसे शाह कुदरतुल्ला लिखा गया है।

१३७. वकील रिपोर्ट्स, नं० ८१; ८२ व ९०, रा. पु. बी; राजस्थानी पत्र, नं. १९५ व १९८, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक महाराजगान, तिथिहीन; ५२७ व ५४५, रा. पु. बी; मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन, ७०७, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक अहलकारान; नं. १७६१. रा. पु. बी.।

१३८. मुतफर्रिक महाराज गान, नं, ६४७. ६४९, ६५५, ६६४, ६६८, ६८०, २४३०, २४७७, रा. पु. बी,; खरीता, जोधपुर, पुरालेखागार. से प्राप्त फाइल नं. १, बुक नं, १. ४ व ५।

कि अजीतसिंह व जयसिंह नारनौल पहुँच गये हैं। शनिवार, २८ जुलाई (२३ जमादि-उस्सानी) को जब बादशाह लाहौर के निकट पहुँचा, राजाओं के वकीलों ने यह सूचना दी कि अजीतसिंह नारनौल से चलकर रविवार, १५ जुलाई (१० जमादि-उस्सानी) को दिल्ली से बारह कोस की दूरी पर पहुंच गये हैं। कुछ ही दिन उपरान्त बहादुरशाह ने अजीतसिंह और जयसिंह के पास यह आदेश भेजा कि वे यथाशीघ्र दावर[१३९] की ओर जायें।[१४०] शाही आज्ञानुसार राजपूत सेनाएँ आगे बढ़ी। सिक्खों का गुरू बन्दा इन दिनों अपने सहयोगियो के साथ कानपुर की पहाड़ियों में उपद्रव कर रहा था। उसे जब राजपूतों की इस विशाल सेना के आने का समाचार मिला तो वह कानपुर की पहाड़ियों को छोड़कर ससैन्य रामपुर की पहाड़ियों में चला गया और वहां लूटमार करने लगा। इधर अजीतसिंह और जयसिंह ६ अक्तूबर (५ रमजान) को साधौरा जा पहुंचे। यहां से उन दोनों ने पांच-पांच हजार रुपया बादशाह को भेंट करने के लिये लाहौर भेजा।[१४१]

राजस्थान से साधौरा तक के मार्ग में राजाओं ने निरन्तर बख्शिउलमुल्क महावत खां और शेख कुदरुतुल्ला आदि शाही अधिकारियों से पत्र व्यवहार किया और अहमदाबाद उन्होंने लिखा कि उनके पास उनके मनसब से अधिक सेना है. फलतः वे उसका व्यय उठाने में असमर्थ हैं। इसलिये जब तक अहमदाबाद व मालवा की सूबेदारी उन्हें नहीं दी जाती, अस्थाई रूप से इन प्रान्तों की फौजदारी ही दे दी जाय।[१४२] परन्तु अजीतसिंह व जयसिंह की इच्छाएं पूर्ण नहीं हुईं। बहादुरशाह ने अजीतसिंह को उसका इच्छित सूबा नहीं दिया, और शनिवार, १०

---

१३९. दावर नामक स्थान साधोरा से ७-८ कोस दूर है। सिक्खों के गुरु बन्दा का सैनिक केन्द्र यहीं था। (इरविन भाग १, १०८ व १०९)

१४०. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ५, २०३, २५१, ३५७।

बहादुरशाह (१७३) में लिखा है कि दोनों राजा २७ जून को रावी नदी के किनारे से हुआ नामक स्थान पर बहादुरशाह से मिले थे और २ जुलाई को रावी नदी पार करते समय बादशाह ने उन्हें साधौरा जाने की आज्ञा दी। परन्तु यह कथन ठीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि जून-जुलाई के महीनों में ये दोनों राजा दिल्ली के निकट थे; इसका स्पष्ट उल्लेख अखबारात में मिलता है। साथ ही राजाओं द्वारा लिखे गये पत्रों में अथवा उनको लिखे गये पत्रों में सधौरा में नियुक्त किये जाने का उल्लेख पहले ही बार बार मिलता है। (मुतफर्रिक महाराजगान, ६८७, ६९३, ७१८, ७४८, २५७६, २५७७, रा. पु. बी.; मुतफर्रिक अहलकारान. १८२३, रा. पु बी.)

१४१. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ५, ३९० व ४०६; मुतफर्रिक अहलकारान, नं. १८२२, रा. पु. बी; मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन नं. ७२. रा. पु बी। विभिन्न राजस्थानी ग्रन्थों में भी लिखा है कि अजीतसिंह व जयसिंह नारनौल, बदली, कुरुक्षेत्र होते हुये सिक्खों के विरुद्ध साधौरा गये थे। (राजरूपक ८५२; कूर्मवंसविलास १९० अ; अजितोदय. सर्ग १६, श्लोक ६९-७१ व गुटका ३१० ब)

१४२. मुतफर्रिक अहलकारान, नं १८२२, रा. पु. बी. मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन, नं. ३, १२ व १०१२, रा. पु. बी.।

नवम्बर (१० शव्वाल) को चार हजार जात चार हजार सवार का मनसब देकर सोरठ की फौजदारी प्रदान की। अजीतसिंह की ही भांति जयसिंह को भी मालवा न देकर अहमदाबाद सोरा की फौजदारी दी गई।[१४३]

अजीतसिंह ने सिक्खों के विरुद्ध अपना सैनिक अभियान प्रारम्भ किया। उसने अपने एक हजार सैनिक पहाड़ियों में गश्त लगाने के लिये नियुक्त किये ताकि वे हर समय विद्रोहियों का पता लगाते रहें। साथ ही अपने वाख्शियों को हर समय तैयार रहने की आज्ञा दी। यह समाचार पाकर वन्दा ने अजीतसिंह को यह सन्देश भेजा कि चूंकि अजीतसिंह ने सिक्खों के विरुद्ध अभियान में भाग लिया है और पीछा करते हुए उनके प्रदेश में प्रवेश किया है अतः वह (वन्दा) भी अपना बदला लेने के लिये शीघ्र ही राजपूताना पहुंच जायेगा। परन्तु अजीतसिंह ने इसकी कुछ चिन्ता नहीं की, और उसके दूत को मरवा दिया। उसने यह निश्चय किया कि वह जल्दी ही वन्दा को कैद कर लेगा अथवा कत्ल कर लेगा। उसने अपनी सेना में यह घोषणा करवा दी कि उसके सैनिक जहां भी गुरु के साथियों को पायें, उसे तत्काल कत्ल कर दें। सिक्खों के विरुद्ध किये गये सभी कार्यों में जयसिंह अजीतसिंह के साथ-साथ रहा।[१४४]

इन्हीं दिनों अजीतसिंह व जयसिंह बादशाह की आज्ञा से नाहन नामक पहाड़ी राज्य की ओर गये और वहां के उपद्रवी शासक भूप प्रकाश का दमन किया।[१४५] कुछ दिनों बाद भूपप्रकाश कैद कर लिया गया। बहादुरशाह ने उसे सलेमगढ़ में रखने की आज्ञा दी। वन्दी-गृह से उसने राजाओं के पास भेंट भेजी और यह प्रार्थना की कि वे बादशाह से कहकर उसे मुक्त करा दें। परन्तु अजीतसिंह और जयसिंह ने इसे स्वीकार नहीं किया और उसे सलाह दी कि वह नाहन में उपस्थित अपने कर्मचारियों को यह लिखे कि वे सिक्खों के गुरु को पकड़ने अथवा मारने का प्रयत्न करे। उसकी इस सेवा से प्रसन्न होकर बहादुरशाह स्वयं ही उसे मुक्त कर देगा।[१४६]

अजीतसिंह सोरठ की फौजदारी पाकर सन्तुष्ट नहीं था, अतः वह बादशाह से निरन्तर अपने वतन वापस जाने की अनुमति मांग रहा था। जयसिंह की स्थिति भी इसी प्रकार की थी। इनकी प्रार्थनाओं से तंग आकर बहादुरशाह ने उन्हें आदेश दिया कि वे साधौरा में अपनी अपनी सेनाएं छोड़कर अपने वतन चले जायें। जनवरी, सन् १७१२ ई० में अजीतसिंह और जयसिंह ने एक साथ राजस्थान की ओर प्रस्थान

---

१४३. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ५, ४४६; रा. पु. धी. में बहादुरशाह का एक तिथिहीन, फरमान नं. ५; कूर्मवंशविलास. १६० ग्र.।
कामवर (३७२) ने इस नियुक्ति की तिथि २३ जनवरी सन् १७१२ ई० (२५ जिल्हिज) स्वीकार की है। परन्तु अखबारात की तिथि को ही प्रमाणिक मानना उचित है।

१४४. जयपुर अखबारात; बहादुरशाह, वर्ष ५, ४८१-२।

१४५. राजरूपक ४५०; टॉड भाग २, ६५; ओझा भाग ४; खंड २, ५५०; मूल २१७-८।

१४६. जयपुर अखबारात; बहादुरशाह, वर्ष ५, ४०४ व ४८२।

किया।[१४७] कुछ ही दिन उपरान्त १८ फरवरी को लाहोर में बहादुरशाह की मृत्यु हो गई।[१४८]

—

इस प्रकार बहादुरशाह के राज्यत्व-काल के प्रारम्भिक कई वर्षों में अजीतसिंह तथा मुगल सम्राट् के बीच विरोध रहा। अन्तिम लगभग डेढ़ वर्ष में इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध यद्यपि शान्तिपूर्ण था, परन्तु अजीतसिंह को उसका इच्छित सूबा गुजरात कभी न मिल सका। फलस्वरूप वह मन ही मन असन्तुष्ट रहा। इन वर्षों में अजीतसिंह ने आसपास के कई स्थानों पर अधिकार करके अथवा पेशकश वसूल करके अपनी शक्ति काफी बढ़ा ली थी। राजस्थान के दो प्रमुख राज्यों—उदयपुर व जयपुर—के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखकर उसने अपनी स्थिति को और भी सुदृढ़ कर लिया था।

---

१४७. रोजनामचा १२२; सतीशचन्द्र ३९; बहादुरशाह १७४।

१४८. बहादुरशाह २३४।

अजीतसिंह का चरमोत्कर्ष

(सन् १७१२ ई. से सन् १७१९ ई.)

(क) अजीतसिंह व जहांदारशाह (सन् १७१२-१३ ई०)

उत्तराधिकार की समस्या को युद्ध द्वारा सुलझाना मुगल राजनीति का एक अंग बन चुका था। बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकार-युद्ध की पुनरावृत्ति हुई। फलस्वरूप साम्राज्य में अशान्त और अनिश्चित वातावरण फैल गया। अजीतसिंह के लिये यह स्वर्णिम अवसर था। पांच वर्ष पूर्व एक बार ऐसी ही परिस्थिति में उसने जोधपुर पर अधिकार कर लिया था। अबकी बार भी उसने अपनी शक्ति बढ़ाने का पूरा प्रयास किया। जोधपुर राज्य के विभिन्न परगनों में नियुक्त शाही अधिकारियों को भगा कर उन पर अपना अधिकार करना और उनकी सुरक्षा के लिये अपने कर्मचारी नियुक्त करना, नये थाने स्थापित करना तथा शाही कर्मचारियों से पेशकश वसूल करना आरम्भ कर दिया। बघवाड़ा, भिणाय, विजयगढ़, रूपनगर और मालपुरा उसके अधिकार में आ गये।[1]

शीघ्र ही उसे समाचार मिला कि जहांदारशाह ने जुल्फिकार खां की सहायता से अपने विरोधियों को हटाकर १९ मार्च, सन् १७१२ ई. को गद्दी पर अधिकार कर लिया है।[2] तुरन्त उसने नये बादशाह को अपनी बधाई की अर्जदाश्त के साथ-साथ एक सौ अशर्फी और एक हजार रुपया भेंट स्वरूप भेजा ताकि आरम्भ से ही वह उसका कृपा-पात्र बन जाय। साथ ही गुजरात की सूबेदारी के लिये भी प्रार्थना की। उसकी अर्जदाश्त बुधवार, २८ मई (३ जमादिउलअव्वल, ११२४ हि.) को दरबार में पहुंची।[3] इधर जहांदारशाह ने गद्दी पर बैठते ही अजीतसिंह और जयसिंह को उनके राज्य का वैध अधिकारी मान लिया था और २४ मई (१८ रबीउस्सानी) को उसने एक फरमान अजीतसिंह को भेजकर उसे यह सूचित किया कि उसे सात हजार

---

१. अजितोदय, सर्ग २६; श्लोक ४-५; गुटका ३१० व ३११ व; राजस्थानी. पत्र. सं. २३७. रा. पु. बी.; मुतफर्रिक महाराजगान. नं. १५२७ रा. पु. बी; रेउ भाग २. ३०४।

२. इरविन. भाग १, १८६।

३. जयपुर अखबारात, जहांदारशाह, वर्ष १ १०५; मुतफर्रिक अहलकारान, नं. १८०१. रा. पु. बी.; मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन, नं. ६३८, रा. पु. बी.।

जात सात हजार सवार का मनसब तथा महाराजा की पदवी दी गई है। साथ ही उसे हर प्रकार की सुविधाएं देने का आश्वासन भी दिया गया।[४]

जहांदारशाह के सिंहासनारोहण से पूर्व ही २७ मार्च (२९ सफर) को पटना में उसके भाई अजीमुश्शान के पुत्र फर्रुखसियर ने अपने को बादशाह घोषित कर दिया था। यह समाचार पाकर जहांदारशाह ने अपने पुत्र ऐज्जुद्दीन को एक बड़ी सेना के साथ फर्रुखसियर के विरुद्ध जाने का आदेश दिया और २७ अप्रेल (१ रबीउस्सानी) को अजीतसिंह के पास यह आदेश भेजा कि वह शाहजादे की सेना में तुरन्त सम्मिलित हो जाय। इसी दिन उसने फखरुद्दीन खाँ को सांभर की फौजदारी, अजमेर की दीवानी तथा मेड़ता की फौजदारी की अमीनी पर नियुक्त किया। अजीतसिंह के साथ-साथ आम्बेर के शासक जयसिंह को भी इसी प्रकार का आदेश भेजा गया।[५] यह समाचार पाकर अजीतसिंह ने सांभर जाकर जयसिंह से विचार-विमर्श करने का निश्चय किया। जयसिंह ने सांभर पहुँचकर उसे शीघ्र आने के लिये कई पत्र लिखे।[६] फलस्वरूप अजीतसिंह सांभर में जयसिंह से मिला और विचार-विमर्श किया। तदुपरान्त उसने शाहबेग नामक शाही दूत के साथ अपने वकील रघुनाथदास को इस आदेश के साथ दिल्ली भेजा कि वह बादशाह से महाराजा के लिये गुजरात की सूबेदारी प्राप्त करने का प्रयास करे। जयसिंह ने भी अपने वकील भिखारीदास के द्वारा मालवा के सूबे के लिये प्रार्थना करवाई।[७] अजीतसिंह तथा जयसिंह के विभिन्न शाही अधिकारियों तथा उनके वकीलों ने कई पत्र लिखे, जिनमें उनसे बार-बार सांभर से अधिकार हटाने का अनुरोध किया, और जहाँदारशाह ने बार-बार अपने दूत भेजकर उन्हें बुलाया।[८] परन्तु अजीतसिंह ने शाही सेवा के लिये जाना स्वीकार नहीं किया, न जयसिंह ही उधर गया। इन दोनों ने सांभर से अपना अधिकार भी नहीं हटाया। सम्भवतः इसका कारण यह था कि अजीतसिंह गुजरात का अधिकार पाये बिना सांभर से हटना नहीं चाहता था, और साथ ही मुग़ल शाहज़ादों के गृह-कलह में भाग लेकर अपनी शक्ति व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहता था। अजीतसिंह की इस अवज्ञा पर जहाँदारशाह ने ध्यान नहीं दिया। सम्भवतः इसका कारण यह था कि फर्रुखसियर इन दिनों तेजी के साथ दिल्ली की ओर बढ़ रहा था। इस गम्भीर स्थिति में अजीतसिंह व जयसिंह से सम्बन्ध न बिगाड़कर और

---

४. मुतफर्रिक अहलकारान, नं १८०१, रा. पु, बी. मुतफर्रिक अहलकारान, तिथिहीन, नं. ६३८, रा. पु. बी.; फारसी पत्र, नं० १५२७, रा. पु. बी, मुतफर्रिक महाराजगान, नं २६४६, रा. पु. बी. फरमान नं. २६ रा. पु. बी।

५. जयपुर अखबारात. जहाँदारशाह, वर्ष १, ७६; वकील रिपोर्ट्स, राजस्थानी, नं १४३, रा. पु. बी.।

६. जयपुर खरीता, फाइल नं. १. बुक नं. ६, जोधपुर रिकार्ड्स. ऑफिस, १२, १३, १५, १६ व १८।

७. जयपुर अखबारात, जहाँदारशाह. वर्ष १, २९८; राजस्थानी पत्र नं. ४२२, रा. पु. बी.।

८. राजस्थानी पत्र, नं, १६३, रा. पु बी.; फारसी पत्र, नं. १५२८ व १६२६, रा. पु. बी; वकील रिपोर्ट्स राजस्थानी, नं. १६७, रा. पु. बी.।

उन्हें प्रलोभन देकर अपनी ओर बनाये रखने का प्रयास करना ही जहाँदारशाह ने उचित समझा। शुक्रवार, १४ नवम्बर (२४ रमज़ान) को अजीतसिंह को नौ हज़ार ज़ात नौ हज़ार सवार का मनसब तथा गुजरात की सूबेदारी दी गई, और जड़ाऊ सिरपेच, झंडा, खास खिलअत, पीत थान, और एक हाथी भी पुरस्कार-स्वरूप दिया गया। जयसिंह के मनसब में भी वृद्धि करके उसे मालवा की सूबेदारी और उचित पुरस्कार दिया गया।[९]

उधर शाहज़ादा ऐज़ुद्दीन फर्रुख़सियर के विरुद्ध युद्ध में असफल रहा। उसकी असफलता का समाचार पाकर जहाँदारशाह ने २६ नवम्बर, (११ ज़िल्काद) को फर्रुख़सियर का दमन करने के लिये स्वयं प्रयाण किया और लगभग चौदह मील चलकर गुरुवार, ४ दिसम्बर (१९ ज़िल्काद) को जिवन नामक स्थान से उसने अजीतसिंह को शीघ्र आने का आदेश भेजा।[१०] इधर अजीतसिंह और जयसिंह को अपनी इच्छित सूबेदारियों पर नियुक्त होने का समाचार सांभर में ही मिला था और समाचार पाते ही वे अपने-अपने राज्यों को लौट चुके थे। अजीतसिंह ने नवम्बर, सन् १७१२ ई. के अन्त (मार्गशीर्ष, संवत् १७६९) में जोधपुर से गुजरात के लिये प्रस्थान कर दिया था।[११] फलतः वह दरबार में स्वयं उपस्थित न हो सका। इस समय पुनः वही स्थिति हो गई थी जो औरंगज़ेब की मृत्यु के समय थी। जहाँदारशाह और फर्रुख़सियर मुगल-सिंहासन के दो प्रतिस्पर्धी थे। अजीतसिंह ने पहले की ही भाँति इस बार भी एक का पक्ष लेकर दूसरे को अप्रसन्न करना उचित न समझा। बादशाह का बार-बार आदेश मिलने पर उसने भंडारी विजयराज के नेतृत्व में एक सेना तो भेजी, परन्तु उसे स्पष्ट आदेश दिया कि वह युद्ध में सक्रिय भाग न ले और, जो पक्ष विजयी होता दिखाई दे, सावधानीपूर्वक उसी की ओर हो जाय। परन्तु इस सेना के पहुँचने से पूर्व ही युद्ध का निर्णय हो चुका था। २२ दिसम्बर (१३ ज़िल्हिज) को जहाँदारशाह युद्ध-भूमि से भाग निकला था और ९ जनवरी, सन् १७१३ ई. (२२ ज़िल्हिज, ११२४ हि.) को फर्रुख़सियर को बादशाह घोषित कर दिया गया था।[१२]

---

९. जयपुर अखबारात, जहाँदारशाह, वर्ष १, ३०६; राजस्थानी, पत्र, नं. २५५, २६६, रा. पु. वी.; रोजनामचा, १२२; गुटका, २११ अ; राजरूपक, ४५४; टॉड भाग २, ६५।
गुलफ़र्दिक अहलकारान (नं. २२०३, रा. पु. वी.) में लिखा है कि अजीतसिंह के वकील गुलाबचन्द को गुजरात (१) की फौजदारी का परवाना भी दिया गया था।

१०. जयपुर अखबारात, जहाँदारशाह, वर्ष १, ३२५; इरविन, भाग १, २२२-३।
कामवर (३६२) ने लिखा है कि बादशाह ने २३ जनवरी (७ मुहर्रम) को राजाओं को बुलाने के लिये दूत भेजे थे, परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि जहाँदारशाह तथा फर्रुख़सियर के बीच युद्ध इससे पूर्व हो चुका था।

११. जयपुर अखबारात, नं. १८६२, रा. पु. वी.; गुलफ़र्दिक महाराजगान तिथिहीन, नं. ५४, रा. पु. वी.; राजरूपक, ४५५।

१२. गुलफ़र्दिक महाराजगान, नं. १०३६, रा. पु. वी.; गुलफ़र्दिक अहलकारान तिथिहीन, नं. ४८ व ५४; रा. पु. वी. ख्यात, भाग २, १५६; सूंदियाड़, २४५; दानेश्वर २३२; राठौड़ां, ५९; ओझा, भाग ४, खंड २, ५५१-२; इरविन, भाग १, २२३।

अजीतसिंह को जहाँदारशाह के पराजित होने का समाचार गुजरात पहुँचने से पूर्व ही मिल गया, अतः उसने अपने मित्र जयसिंह से पत्र-व्यवहार किया। दोनों का विचार था कि नये बादशाह की अनुमति पाये बिना आगे नहीं जाना चाहिये। फलतः अजीतसिंह जोधपुर वापस चला गया और जयसिंह मालवा न जाकर आम्बेर लौट गया।[13]

इस प्रकार जहाँदारशाह के अल्पकालीन शासनकाल में अजीतसिंह ने आस-पास के कई स्थानों पर अधिकार करके अपना प्रभुत्व बढ़ा लिया था। जयसिंह से उसकी घनिष्टता पूर्ववत् बनी रही। मुगल-सम्राट् ने भी उसका प्रभाव एवं समय की आवश्यकता को समझते हुए उसे उच्च मनसब एवं चिर-इच्छित गुजरात का सूबा दे दिया था। फलतः बादशाह से उसके सम्बन्ध अच्छे रहे, लेकिन गृह-युद्ध में उसने जहाँदारशाह को किसी प्रकार का सहयोग नहीं दिया और सदैव अवसर को देखकर लाभ उठाने के लिये ही प्रयत्नशील रहा।

(ख) फर्रुखसियर के साथ प्रारम्भिक सम्बन्ध (सन् १७१३-५ ई.)

मुगल-सिंहासन पर किसका अधिपत्य रहेगा, इससे अजीतसिंह की स्थिति में विशेष अन्तर नहीं पड़ता था। फलस्वरूप जहाँदारशाह के बाद जब फर्रुखसियर बादशाह हुआ तो उसने उसके साथ अच्छे सम्बन्ध रखने का प्रयास किया और उसके पास बधाई का एक पत्र भेजा जो रविवार, १८, जनवरी, सन् १७१३ ई. (२ मुहर्रम, ११२५ हि.) को उम्दतुलमुल्क के द्वारा दरबार में प्रस्तुत किया गया। इसके बाद भी अजीतसिंह के पत्र बादशाह के पास आते रहे, और उसने मुगल-सम्राट् को उपहार भी भेजे।[14] फर्रुखसियर ने भी बुधवार, २५ फरवरी (१० सफ़र) को

---

१३. जयपुर खरीता, फाइल नं.१, बुक नं. ६, २३ व २७। रोजनामचो (१२३) में भी लिखा है कि अजीतसिंह गुजरात की ओर गया था, और जहाँदारशाह की पराजय का समाचार सुनकर वापस जोधपुर चला गया।

१४. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर. वर्ष १, २७।

सोमवार, २६ जनवरी (१० मुहर्रम) को अजीतसिंह द्वारा भेजे गये फल तथा बृहस्पतिवार, ५ फरवरी (२० मुहर्रम) को इसका पत्र दरबार से पहुँचा। सोमवार, ९ फरवरी (२४ मुहर्रम) को अजीतसिंह द्वारा भेजी गई अर्जदाश्त, एक सौ मुहर और एक हजार रुपया दरबार में बादशाह को भेंट किया गया। बृहस्पतिवार, २३ अप्रेल (८ रबीउस्सानी) को महाराजा द्वारा भेजा गया पेशकश, चार चीते और चार घोड़े फर्रुखसियर को नजर किये गये।

(जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष १. ४०, ६६, ७९; वर्ष २. खंड १, १७९)

यह कहना कठिन है कि अजीतसिंह के पत्रों का विषय क्या था? वह सदैव गुजरात की सूबेदारी का अधिकार पाना चाहता था। सम्भव है कि उसने इसी विषय में प्रार्थना की हो। कामवर (३९४) ने मुहरें व रुपया भेंट करने की तिथि ६ फरवरी (२१ मुहर्रम) स्वीकार की है, परन्तु इस विषय में अखबारात को ही प्रामाणिक मानना अधिक उचित है।

पाँच हजार जात, पाँच हजार सवार का मनसब और समय-समय पर विभिन्न पुरस्कार देकर अजीतसिंह को सन्तुष्ट रखने का प्रयास किया।[१५] परन्तु फर्रुखसियर सम्भवतः इतने से सन्तुष्ट न था और चाहता था कि अजीतसिंह स्वयं दरबार में उपस्थित हो। फलतः उसने अजीतसिंह को कई बार दरबार में बुलाया। शनिवार, १ अगस्त (२० रजब) को नाहर खाँ को अजीतसिंह के लिये कुछ जवाहरात और खास-खिलअत के साथ यह आदेश देकर भेजा कि वह महाराजा को साथ लेकर आये। ३ अगस्त (२४ रजब) को उसे बुलाने के लिये एक दूत को पुनः भेजा गया। इस बार अजीतसिंह के लिये बरसाती खिलअत भेजी गई।[१६] परन्तु बार-बार बुलाये जाने पर भी अजीतसिंह दरबार में नहीं गया। सम्भवतः उसे मुगल-सम्राट् पर विश्वास नहीं था। फर्रुखसियर ने जहाँदारशाह के वजीर जुल्फिकार खाँ को धोखा दिया। जब जुल्फिकार खाँ पहली बार बादशाह से मिला तो उसने उसके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार किया। परन्तु बाद में उसे धोखे से कैद करवा दिया था और फिर उसे मरवा डाला था। सम्भवतः इसी कारण अजीतसिंह को यह आशंका थी कि दरबार में जाने पर फर्रुखसियर उसके साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार न करे। जब बादशाह ने बार-बार दूत भेजकर उसे शाही दरबार में आने का आदेश दिया तो उसने यह प्रार्थना की कि उसे दरबार में आने से डर लगता है, अतः जोधपुर राज्य के समीप ही उसे कहीं भी नियुक्त कर दिया जाय। एक-दो वर्ष में जब वह बादशाह की ओर से आश्वस्त हो जायेगा तो स्वयं ही दरबार में आ जायेगा।[१७] इसके साथ ही उसने दरबार में उपस्थित अपने वकीलों के द्वारा बादशाह से गुजरात की सूबेदारी के लिये प्रार्थना भी करवाई। उसके मित्र जयसिंह ने भी बादशाह से मालवा की सूबेदारी देने का अनुरोध कराया था।[१८] इन्हीं दिनों

---

१५. जयपुर अखबारात, नं. २००४, रा. पु. बी.।
कामवर (३९५) ने मनसब मिलने की तिथि २ मार्च (१५ सफर) स्वीकार की है, परन्तु इसे ठीक नहीं माना जा सकता।
शनिवार; १८ अप्रेल (३ रबीउस्सानी) को अजीतसिंह को एक तलवार व जड़ाऊ पदक भेजा गया और सोमवार, ११ मई (१६ रबीउस्सानी) को फर्रुखसियर ने उनके लिये खास खिलअत, तलवार व जड़ाऊ चुगा विजयराज तथा गुलाबचन्द नामक उसके वकीलों को दिया। इन वकीलों को भी एक-एक खिलअत देकर अजीतसिंह के पास जाने के लिये विदा किया गया। कुछ महीनों के बाद शनिवार, १८ जुलाई को इसे एक जोड़ा कुन्डल का, मोती और एक जड़ाऊ पदक पुरस्कार में भेजा गया।
(जयपुर अखबारात, नं. २०६४, रा. पु. बी.; जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष २, खंड १, २२४ व २२६; खंड २, ६)
ख्यात (भाग २, १५७); मूंदियाड़ (२४६); दानेश्वर (२३२) राठौड़ा (५७) में भी लिखा है भंडारी विजयराज फर्रुखसियर से मिलकर लौटा था।

१६. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष २, खंड २, ३८ व ४७ ८।

१७. रोजनामचा १२३; सतीशचन्द्र ९९।

१८. मुतफर्रिक महाराजगान, नं. १५५४, रा. पु. बी.।

मालवा में कुछ उपद्रव हुआ तो अमीर-उल-उमरा हुसैन अलीखाँ ने अजीतसिंह और जयसिंह दोनों को यह सन्देश भेजा कि यदि वे उधर जाकर उपद्रवकारियों का दमन करें तो बादशाह उन पर प्रसन्न हो जायेगा। परन्तु न तो अजीतसिंह ने इस सलाह को माना, न जयसिंह ने।[१९] सम्भवतः गुजरात व मालवा के सूबे पाने से पूर्व वे किसी शाही सेवा में भाग नहीं लेना चाहते थे।

अजीतसिंह के इस व्यवहार से बादशाह उससे अप्रसन्न हो गया था। संभवतः बादशाह का यह रुख देखकर ही नागोर के राव इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह ने फर्रुखसियर को अजीतसिंह के विरुद्ध भड़काकर जोधपुर लेने का प्रयास करना आरम्भ किया। जब अजीतसिंह को यह समाचार मिला तो उसने इस काँटे को अपने मार्ग से हटाने का निश्चय किया और इस कार्य के लिये शनिवार, १५ अगस्त, सन् १७१३ ई. (भाद्रपद सुदि ५, संवत् १७७०) को व्यास दीपचन्द, भाटी अमरसिंह, राठौड़ अमरसिंह व उसके भाई मोहकमसिंह, राठौड़ कर्णसिंह तथा राठौड़ दुर्जनसिंह को कुछ सैनिकों के साथ दिल्ली भेजा। वहाँ पहुँचकर ये लोग कुछ दिन तक उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करते रहे। कुछ दिन उपरान्त एक दिन जब मोहकमसिंह जुम्दतुलमुल्क के घर से लौट रहा था तो इन लोगों ने उसका पीछा किया। इन्हें देखकर वह भागकर किनारे के खेतों में छिप गया, परन्तु धूप में उसकी पगड़ी का तुर्रा चमक उठा जिससे राठौड़ों ने उसे देख लिया और भाटी अमरसिंह ने खेत में घुसकर उसे मार डाला। तत्पश्चात् तुरन्त ये लोग जोधपुर लौटे। अजीतसिंह ने प्रसन्न होकर हाथी, घोड़े, सिरोपाव, कड़े व मोतियों की जोड़ियाँ पुरस्कार रूप में दीं और भाटी अमरसिंह को तीस हजार का पट्टा भी दिया। इधर मोहकमसिंह के मारे जाने का समाचार सुनकर बादशाह का रोष अजीतसिंह के प्रति और बढ़ गया।[२०]

जहाँदारशाह के समय में अजीतसिंह ने रूपनगर में अपने-अपने थाने स्थापित कर लिये थे, इससे वहाँ का शासक राजसिंह असन्तुष्ट था। अब सुअवसर देखकर उसने भी फर्रुखसियर से अजीतसिंह की शिकायत की। रूपनगर के अतिरिक्त टोडा व मालपुरा में भी अजीतसिंह ने नये थाने स्थापित किये थे। अजीतसिंह के इन कार्यों से फर्रुखसियर असन्तुष्ट था। फलतः उसने राजसिंह की सहायता के लिये अजमेर जाने का निश्चय किया। परन्तु अमीर-उल-उमरा ने उसे समझा-बुझा कर

---

१९. मुतफर्रिक महाराजगान, नं. १५४७, १५४९, रा. पु. बी; वकील रिपोर्ट्स राजस्थानी, १९७ व २०४, रा. पु. बी.।

२०. राजरूपक ४५९ ८; ख्यात-भाग २, १५७-९; मूंदियाड़ २४६-७; जुनी. ९०; अजितोदय सर्ग २०, श्लोक २४-३२; वीर-भाग २, ८४१; दानेश्वर. २३३; राठौड़ा. ५७; जयपुर अखबारात, नं. २२२५, रा. पु. बी.; टॉड. भाग १, ६५; रेउ. भाग १, ३०५-६; ओझा. भाग ४, खंड २, ५५४-५।

इरविन (भाग १, २८५ टि.) ने मोहकमसिंह के स्थान पर मुकुन्द अथवा मुलकान नाम लिखा है। जो ठीक नहीं है।

रोक लिया। इस प्रकार अजीतसिंह के विरुद्ध शाही अभियान कुछ दिनों के लिये टल गया।[२१]

अजीतसिंह के इन कार्यों के कारण फर्रुखसियर उनसे यद्यपि असन्तुष्ट था,[२२] तथापि १९ अक्तूबर (९ शव्वाल) को उसने उनके मनसब को बढ़ाकर सात हजार जात सात हजार सवार कर दिया और थट्टा की सूबेदारी पर नियुक्त कर दिया। इसी दिन जयसिंह को भी सात हजार जात, सात हजार सवार का मनसब देकर मालवा की सूबेदारी दी गई। मंगलवार, २० अक्तूबर (११ शव्वाल) को खानसामाँ को अजीतसिंह के लिये फरमान, खास खिलअत, सिरपेच व आलाबंद देकर जोधपुर भेजा गया और कुछ दिन बाद रविवार, १ नवम्बर (२३ शव्वाल) को एक जड़ाऊ पदक, मोतियों का गोशवारा, खिलअत, पाँच थान और एक जड़ाऊ तलवार अजीतसिंह के वकील गुलाबचन्द को महाराजा के पास भेजने के लिये दिया गया।[२३] फर्रुखसियर का सम्बन्ध अपने वजीर सैयद अब्दुल्लाखाँ और मीर बख्शी सैयद हुसैनअलीखाँ से सिंहासनारूढ़ होते ही मनमुटाव पूर्ण हो गये थे। संभवतः यही कारण था कि बादशाह यद्यपि अजीतसिंह से रुष्ट था, तथापि उसने महाराजा के साथ अच्छा व्यवहार करके उसे अपनी ओर बनाये रखने का प्रयास किया। एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि बादशाह ने अजीतसिंह को उच्च मनसब तो दिया परंतु गुजरात की सूबेदारी नहीं सौंपी; इसके विपरीत जयसिंह को उसका इच्छित मालवा का सूबा प्रदान कर दिया। सम्भवतः फर्रुखसियर यह समझता था कि अजीतसिंह तथा जयसिंह की सम्मिलित शक्ति किसी भी समय हानिकर हो सकती है। साथ ही यह भी स्पष्ट था कि जबतक दोनों राजाओं की समस्याएँ समान हैं, इनकी घनिष्ठता कम नहीं हो सकती। ऐसा जान पड़ता है कि दोनों राजाओं को एक दूसरे से दूर करके उनकी शक्ति कम करने के लिये ही फर्रुखसियर ने अजीतसिंह को गुजरात न देने का निश्चय किया था। यह निश्चय अजीतसिंह के विपक्ष में क्यों किया गया, इसका कोई स्पष्ट कारण नहीं जान पड़ता। अनुमानतः अजीतसिंह के विभिन्न विद्रोही कार्यों से बादशाह मन ही मन अप्रसन्न था और वह उसे ही दण्डित करना चाहता था।

अजीतसिंह को जब यह समाचार मिला कि मुगल सम्राट ने उसे गुजरात की सूबेदारी न देकर थट्टा में नियुक्त किया है, तो वह अप्रसन्न हो गया, और उसने थट्टा

---

२१. मुतफ़र्रिक महाराजगान, नं. १५२७, १५६२ व १५५८; रा. पु. बी.; राजस्थानी पत्र, नं. २३७, रा. पु. बी.;

२२. हुसैनअली खाँ और जयसिंह के पत्रों में इसका संकेत मिलता है। (मुतफ़र्रिक महाराजगान, नं. ११५३, १५६० व २०४१, रा. पु. बी.)

२३. रोजनामचा. १२३; जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष २, खंड १, १४१, १५१ व १६६; कामवर ४००; वकील रिपोर्ट्स. राजस्थानी, नं. २१४ व २७३, रा. पु. बी.; मुतफ़र्रिक महाराजगान, नं. २८८१, रा. पु. बी; मु विमाड़ २५७।

की सूबेदारी को अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझ कर वहाँ जाना अस्वीकार कर दिया। महाराजा की इस अवज्ञा से फर्रुखसियर का उसके प्रति रोष सम्भवतः बढ़ गया और उसने जोधपुर पर आक्रमण करने का निश्चय किया।[२४]

फर्रुखसियर ने कुतुबुलमुल्क अब्दुल्लाखाँ, अमीर-उल-उमरा हुसैनअलीखाँ, खानेदौरां समसामुद्दौला व मीर जुमला आदि अपने उच्चाधिकारियों को बुलाकर विचार-विमर्श किया। बादशाह का विचार अजीतसिंह के विरुद्ध स्वयं जाने का था; परन्तु अमीर-उल-उमरा ने सलाह दी कि चूँकि बादशाह बीमारी से उठा है[२५] अतः उसे आराम करना चाहिये। उसने यह भी कहा कि यदि अजीतसिंह शाही सेना को देखकर रेगिस्तान से भाग गया तो बादशाह के सम्मान को धक्का लगेगा। अतएव उसने प्रार्थना की कि इस कार्य के लिये उसे भेज दिया जाय। बादशाह ने उसकी सलाह को स्वीकार कर लिया और उसे अजीतसिंह के विरुद्ध भेजी जाने वाली सेना का नेतृत्व सौंप दिया।[२६]

हुसैनअलीखाँ के साथ एक बड़ी सेना नियुक्त की गई जिसमें नवाब औलिया सैयदखाँ, नजमुद्दीनअलीखाँ, सैफुद्दीनअलीखाँ, आलमअलीखाँ, सैयद हसनखाँ, रुस्तमखाँ, मीर मुशर्रफ अमानतखाँ, तुर्राबाजखाँ, जांबाजखाँ, अलीअजहरखाँ,

---

२४. रोजनामचा. १२३; मूंदियाड़. २४७; राठौड़ा. ५८; वकील रिपोर्ट्स राजस्थानी, नं. २७४, रा. पु. बी.।
अजीतसिंह पर फर्रुखसियर ने क्यों आक्रमण किया, इस विषय में विभिन्न मत मिलते हैं। अहवाल (६९ ब); इबरतनामा (८३ अ ब); मीरात-उल-वारिदात (वारिद-१३४ ब); तारीख-ए-हिन्द (रुस्तम अली. २२७ ब. २२८ अ) सीयर (६७); तारीख-ए-मुजफ्फरी (२०६); वीर. भाग २, (११३५-६) में लिखा है कि अजीतसिंह ने अपने राज्य में गो-वध, अजान व नमाज बन्द करवा दिया था, मस्जिदों को तोड़ा था और मुसलमानों को देश से निकाल दिया था और वह अजमेर और उसके आगे तक शाही प्रान्तों में लूटमार किया करता था, जिससे बादशाह उससे अप्रसन्न था। आधुनिक इतिहासकार इरविन (भाग १, २८५) ने भी इसी मत का समर्थन किया है। परन्तु यह मत उपयुक्त नहीं है। अजीतसिंह पर लगाये गये यह आरोप औरंगजेब की मृत्यु के तुरन्त बाद के हैं। साथ ही सन् १७०९ ई० के बाद से जोधपुर पर अजीतसिंह का ही अधिकार था।
खफी खाँ (भाग २७३, ८) व शिवदास (४ अ) ने लिखा है कि अजीतसिंह ने बधाई पत्र व भेंट नहीं भेजा था, अतः शाही सेना को भेजा गया था; परन्तु अखबारात में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि महाराजा ने बधाई व भेंट भेजा था। इस प्रकार यह स्वीकार करना ही न्यायोचित प्रतीत होता है कि अजीतसिंह से बादशाह कई कारणों से अप्रसन्न था और जब उसने थट्टा जाना अस्वीकार कर दिया तब फर्रुखसियर ने उस पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

२५. फर्रुखसियर. ८ दिसम्बर से १६ दिसम्बर (९ जिल्हिज से १ जिल्हिज) तक बीमार था (इरविन भाग १, २८६ टि.)।

२६. अहवाल. ६९ ब ७० अ ब; इरविन-भाग १, २८५-६।

दिलावर खाँ, सैयद शेर ख़ाँ, बसालत खाँ, सैफ़ख़ाँ, सलावत ख़ाँ, दाऊद ख़ाँ, जाँनिसार खाँ, नाहरखाँ, शाकिरख़ाँ, शुकरुल्लाखाँ तथा अजीजबेग आदि प्रमुख सरदार थे।[२७] इस अभियान के लिये हुसैनअलीख़ाँ को तीन करोड़ रुपया नक़द, पचास हाथी, ख़ासख़िलअत, छः लिबास, जड़ाऊ तलवार, खंजर, मोतियों की माला, साज सहित दस अरक़ी-ईराक़ी घोड़े, पचास छोटी-बड़ी तोपें तथा बहुत-सा गोला बारूद दिया गया।[२८] मंगलवार, १७ नवम्बर, सन् १७१३ ई० (१० जिल्काद, ११२५ हि०) को अहमदाबाद के सूबेदार दाऊद खाँ को एक फरमान द्वारा जालोर जाने की आज्ञा दी गई।[२९] अमीर-उल-उमरा को रविवार, ६ दिसम्बर (२९ जिल्क़ाद) को दरबार से विदा किया गया। विदा के समय उसे जड़ाऊ खंजर, दो ईराकी घोड़े और दो हाथी दिये गये। हुसैनअलीखाँ ने २७ दिसम्बर (२० जिल्हिज) को अपने हरावल को दिल्ली से भेजा और कुछ ही दिन बाद स्वयं भी जोधपुर के लिये चल पड़ा।[३०]

उधर अजीतसिंह ने अपने मुंशी रघुनाथ को एक हजार सवारों के साथ सन्धि की बातचीत करने के लिये भेजा। रघुनाथ ने सरायस हल से अमीर-उल-उमरा के पास महाराजा का सन्देश भेजा, परन्तु हुसैनअलीखाँ ने उसकी बात स्वीकार नहीं की और अपनी सेना को सराय अलाहवर्दीखाँ से सराय सहल की ओर बढ़ने का आदेश दिया। जोधपुर जाते हुए मार्ग में हुसैनअली को समाचार मिला कि राठोड़ सैनिक सांभर से बारह कोस दक्षिण में झाड़ियों में छिपे है, और अवसर पाते ही शाही सेना पर आक्रमण करने की उनकी योजना हैं। परन्तु यह सूचना सत्य नहीं निकली। अमीर-उल-उमरा ने साँभर परगने को पार करते हुए सनमगढ़ का विनाश किया। राठोड़ों ने कहीं भी उस पर आक्रमण नहीं किया।[३१]

---

२७. अहलवाल ७० ब। इबरतनामा (८३ अ) में शाही सेना की संख्या ११,००० सवार, रोजनामाचा. (१२३-४) में ४०,००० तथा राजरूपक (४६०) में १,००,००० स्वीकार की गई है। राजरूपक में स्वीकृत संख्या को स्वीकार करना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि शिवदास (४ अ) ने भी लिखा है कि हुसैनअली जब जोधपुर की ओर जा रहा था तो मार्ग में स्थान-स्थान से शाही कर्मचारी अपनी-अपनी सेनाओं सहित उसके पास आने लगे, और मेड़ता पहुँचने तक उसकी सेना में पचास हजार सवार पचास हजार पैदल हो गये।

२८. शिवदास. ४ अ।

२९. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष २, खंड २, २११।

३०. अहवाल ७० ब; इरविन भाग १, २८६।
इसी बीच २२ दिसम्बर (१५ जिल्हिज) को उस्मान खाँ अजीतसिंह का एक पत्र और उसके द्वारा भेजा हुआ घोड़ा लेकर आया। यह कहना कठिन है कि अजीतसिंह ने इस पत्र में क्या लिखा था। इस पत्र का बादशाह पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा और युद्ध की तैयारियां जारी रहीं। (जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष २, खंड २, २६५-६ कामवर ४०२; वकील रिपोर्ट्स राजस्थानी. नं. २१७, रा. पु. बी.; इरविन भाग १, २८७)।

३१. इरविन. भाग १, २८७।

अमीर-उल-उमरा मार्च-अप्रेल, सन् १७१४ ई० (वैशाख, संवत् १७७१) को अजमेर पहुँचा।[३२] विशाल शाही सेना के आने से अजमेर के आस-पास के और मेड़ता की ओर के ग्रामवासी भयभीत होकर अपने-अपने गांव से भाग खड़े हुए थे। हुसैनअली खाँ ने इन खाली गांवों को जला देने की आज्ञा दी। इन स्थानों पर अजीतसिंह तथा जयसिंह के गांव पास-पास थे, अतः जोधपुर वालों ने जयसिंह के क्षेत्र के किसानों के द्वारा हुसैनअली से प्रार्थना करवाई कि वह गांव विनष्ट न करे। उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई, और अमीर-उल-उमरा ने अपना आदेश वापस लेकर लूट का सारा माल लौटा देने का आदेश दिया[३३] इसके बाद वह पुष्कर होता हुआ मेड़ता की ओर बढ़ा। मार्ग में उसे पानी की कमी, अत्यधिक गर्मी, अनाज की महँगाई और अकाल जैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था। अपने सरदारों से परामर्श कर उसने अजीतसिंह से सुलह का प्रयत्न करने का निश्चय किया, और मियाँ जी गिरि को महाराजा के पास इस संदेश के साथ भेजा कि यदि अजीतसिंह अपने लड़के को शाही सेवा में भेज दे और अपनी लड़की का विवाह फर्रुखसियर से कर दे तो शाही आक्रमण रोक दिया जायेगा। यह संदेश भेजने के बाद भी शाह सेना निरन्तर मेड़ता की ओर बढ़ती गई। कुछ ही दिन उपरान्त हुसैनअली खाँ ने मेड़ता पहुँचकर अपना थाना स्थापित कर लिया।[३४]

उधर महाराजा अजीतसिंह को जब हुसैनअलीखाँ के निरन्तर आगे बढ़ने का सामाचार मिला तो वह जोधपुर के किले से निकल कर नगर के बाहर स्थित राई के बाग में चला गया और युद्ध की तैयारी करने लगा। उसने अपने सभी सरदारों को यह आदेश दिया कि वे शीघ्र ही उसके पास पहुँचें। धीरे-धीरे उसकी सेना बढ़ती गई, और जब लगभग अट्ठारह हजार सैनिक एकत्र हो गए तो उसने प्रस्थान किया और आगे बढ़कर रांहण नामक गांव में डेरा डाला।[३५]

सम्भवतः इन्हीं दिनों चूड़ामन जाट जोधपुर आकर अजीतसिंह से मिला था। अजीतसिंह प्रथम शासक था जिसने चूड़ामन जाट को अपने समकक्ष बैठाकर सम्मान दिया। परन्तु शाही सेना के विरुद्ध जाटों ने कोई सैनिक सहायता दी हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, अजीतसिंह ने जयसिंह के विरुद्ध उसे सुरक्षा देने का कुछ आश्वासन अवश्य दिया था।[३६]

सम्भवतः इसी बीच मियाँ जी गिरि आकर अजीतसिंह से मिला।[३७] अजीतसिंह ने भी अमीर-उल-उमरा की विशाल सेना को देखकर सुलह कर लेना ही उचित

---

३२. राजरूपक. ४५६।

३३. मआसिर ६३०; अहवाल. ७२ अ; इरविन भाग १, २८८।

३४. अहवाल. ७१ अ ब; कामराज. ५६ अ; इरविन. भाग १, २८७-८।

३५. ख्यात-भाग २, १६१; मूंदियाड़. २४७–८; राजरूपक ४६०; राठौड़ां ५८।

३६. हिस्टोरिकल एसेज—ले० कानूनगो. ६० व ६३।

३७. राजरूपक में लिखा है कि अजीतसिंह व मियाँ के बीच सन्धि की बातचीत हुई थी।

समझा। इस कार्य के लिए उसने चांपावत भगवानदास, भंडारी रघुनाथ, खीची जोधा हरनाथ, ऊदावत लालसिंह, ऊदावत हृदयराम तथा मेड़तिया कल्याणसिंह आदि को कुछ सैनिकों के साथ हुसैनअली के पास भेजा। ये लोग शाही सेना से कुछ दूर जाकर रुके और भंडारी रघुनाथ कुछ लोगों को साथ लेकर हुसैनअली से मिलने गया। सम्भवतः इनके ससैन्य आने के कारण शाही सेनापति को उनपर विश्वास नहीं हुआ। उसे यह आशंका हुई कि सम्भव है, राजपूत उसे धोखा दे रहे हों। अतः उसने कहा कि यदि वे सचमुच सुलह करना चाहते हैं तो कुछ समय तक बन्धन में रहना स्वीकार करें। पहले तो इन लोगों ने यह प्रस्ताव अपमानजनक समझकर अस्वीकार कर दिया, परन्तु बाद में विचार–विमर्श करके उन्होंने हुसैनअली की बात मान ली। इन राजपूतों को बन्धन में देख कर शाही सैनिकों ने यह अनुमान लगाया कि सम्भवतः राजपूत पराजित हो गये हैं, अतः उन्होंने राजपूत शिविर पर भी आक्रमण कर दिया। अजीतसिंह को सूचना देने के लिये जोधा हरनाथसिंह ने चांपावत भगवानदास को भेज दिया और स्वयं शाही सैनिकों का सामना करता हुआ अपने बहुत से सैनिकों सहित मारा गया। शाही सैनिकों के इस कुकृत्य का समाचार पाते ही हुसैनअली ने उन्हें रोका और राजपूत नेताओं से भी क्षमा–याचना की। अजीतसिंह को भी यह सूचना तुरन्त भेज दी गई।[३८]

उधर चांपावत भगवानदास से शाही सैनिकों के आक्रमण का समाचार पाकर अजीतसिंह भी चिन्तित हुआ, और उसने खीची जोधा को जोधपुर जाकर राजपरिवार को वहां से किसी अन्य सुरक्षित स्थान में ले जाने का आदेश दिया, और भंडारी पोमसी को जोधपुर के किले की सुरक्षा का भार सौंपा।[३९] जब उसे यह

---

३८. मआसिर. ६३१; ख्यात. भाग २, १६२; मूंदियाड़. ५८; दानेश्वर. २३४; राठौड़ां ५८; इरविन. भाग १, २४६।

जयपुर अखबारात (फर्रुखसियर, वर्ष २, खंड २, २८५) में भी लिखा है कि मंगलवार, १६ जनवरी, सन् १७१४ ई. (१४ मुहर्रम, ११२६ हि०) को बादशाह को विदित हुआ कि रघुनाथ भंडारी पांच सौ सवारों को लेकर नाहर खां के साथ आया और अमीर-उल-उमरा से उसने बात की।

राजस्थानी ख्यातों में लिखा है कि हुसैनअली ने राठौड़ों को धोखा देकर उन पर पहरा बैठा दिया था। परन्तु चूंकि हुसैनअली भी सुलह करने का विचार रखता था, अतः यह मत उचित प्रतीत नहीं होता।

३९. ख्यात. भाग २, १६३; मूंदियाड़. २४६; दानेश्वर. २३४; राठौड़ां ५६; राजरूपक ४६०; खफी खां भाग २, ७३८, टॉड भाग २,६५।

रोजनामचा (१२४); मीरात-उल-वारिदात (वारिद १२५ अ); इबरतनामा (८४ ब); इबरतनामा (कामराज. ५५ ब); मुनतखब-उल-कलाम (मिर्जा मुहम्मद. ४ ब); तारीख-ए-मुजफ्फरी (२०७) आदि अधिकांश फारसी ग्रन्थों में लिखा है कि अजीतसिंह शाही सेना से डरकर पहाड़ों व जंगलों में भाग गया था और उसकी सेना तितर-बितर हो गई थी। मआसिर. (६३०) में उसका बीकानेर भाग जाना लिखा है। परन्तु यह मत भ्रामक प्रतीत होता है। अजीतसिंह अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करके ससैन्य मेड़ता की ओर बढ़ रहा था, इसकी पुष्टि ख्यातों के विवरण से होती है। साथ ही यदि स्थिति इस प्रकार की होती तो हुसैनअली संधि के लिये उत्सुकता प्रकट न करता।

विदित हो गया कि राजपूतों पर शाही सैनिकों ने जो आक्रमण किया था वह हुसैन अली की आज्ञा से नहीं हुआ था, तब उसने भंडारी खींवसी को सन्धि की बातचीत करने के लिए हुसैनअली के पास भेजा।[४०]

ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय दोनों ही पक्ष सुलह करने के लिए उत्सुक थे। हुसैनअली के साथ विशाल सेना थी और वह मेड़ता पर अधिकार कर चुका था। जालोर पर भी अहमदाबाद के सूबेदार ने अधिकार कर लिया था और शाही आज्ञानुसार, फ़ीरोज़ खां जालोरी को वहां का अधिकार सौंप दिया था।[४१] इसके साथ ही अन्य किसी राजपूत शासक ने उसे कोई सहायता नहीं दी थी। सम्भवतः वे बादशाह के साथ सम्बन्ध बिगाड़ना नहीं चाहते थे। यहां तक कि पिछले सात वर्षों से उसके अन्तरंग मित्र जयसिंह ने भी उसका साथ नहीं दिया था। फर्रुख़सियर के शासनकाल में जयसिंह ने कोई ऐसा कार्य नहीं किया था जिससे बादशाह अप्रसन्न हो जाय। फलस्वरूप उनके पारस्परिक सम्बन्ध सदैव अच्छे रहे और बादशाह ने उच्च मनसब व मालवा की सूबेदारी देकर उसे पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया था। परन्तु केवल मालवा की सूबेदारी पाकर जयसिंह ने अपनी पुरानी मैत्री छोड़ दी हो, यह संगत प्रतीत नहीं होता। सम्भवतः पिछले एकाध वर्षों से अजीतसिंह और जयसिंह के सम्बन्धों में कुछ तनाव आ गया था। अजीतसिंह ने चूड़ामन जाट को जयसिंह के विरुद्ध जो आश्वासन दिया था उससे इस मत की पुष्टि होती हैं। निश्चितरूप से यह कहना कठिन है कि इसका कारण क्या था। जहांदारशाह के समय में मालपुरा में जयसिंह के थाने हटाकर अपने थाने बनाने तथा टोडा में भी अपने थाने स्थापित करने का अजीतसिंह ने प्रयत्न किया था। सम्भव हैं, जयसिंह को अपने राज्य में अजीतसिंह का यह अनधिकार प्रवेश भला न लगा हो और धीरे-धीरे उनका पारस्परिक खिंचाव बढ़ता गया हो। दूसरी ओर अमीर-उल-उमरा भी दिल्ली से आने वाली सूचनाओं के कारण इस कार्य को जल्दी समाप्त करना चाहता था। दिल्ली में उसकी अनुपस्थिति में मीरजुमला का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था और सैयदों के विरोधी उसके बड़े भाई कुतुबुलमुल्क अब्दुल्ला खां के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे। अब्दुल्ला खां उसे बार-बार शीघ्र लौटने के लिए लिख रहा था। अतः वह भी अजीतसिंह से सुलह करने के लिए उत्सुक हो रहा था।[४२]

परिस्थिति सुलह के अनुकूल थी। बृहस्पतिवार २६ अप्रेल (२५ रबीउस्सानी) को तीसरे प्रहर महाराजा का ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह हुसैनअली से मिला।[४३] विचार-विमर्श के उपरान्त दोनों के बीच एक गुप्त समझौता हुआ, जिसके फलस्वरूप महाराजा अजीतसिंह तथा सैयदों के बीच मैत्री का बीजारोपण हुआ। इस गुप्त

---

४०. ख्यात. भाग १, १६३; मूंदियाड़. २४६; शिवदास. ४ ब।

४१. जयपुर अखबारात. फर्रुखसियर. वर्ष ३. खंड १, १६६-७०।

४२. खफी खाँ. भाग २, ७३८; मआसिर ६३१; तारीख-ए-मुजफ्फरी २०७।

४३. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड १, ६६।

समझौते के अनुसार अजीतसिंह ने पट्टा जाना स्वीकार कर लिया । हुसैनअली ने गुप्त रूप से उसे यह आश्वासन दिया कि वह पट्टा की ओर प्रस्थान करके अपनी स्वामिभक्ति का केवल प्रदर्शन करे; उसे पट्टा पहुँचने से पूर्व ही गुजरात का सूबा दे दिया जायेगा ।[४४] सन्धि की अन्य शर्तों के अनुसार महाराजा अजीतसिंह ने अपनी लड़की का विवाह फर्रुखसियर से करना तथा अपने पुत्र अभयसिंह को दिल्ली दरबार में भेजना तथा बादशाह के बुलाने पर स्वयं भी दरबार में उपस्थित होना स्वीकार किया ।[४५]

---

४४ रोजनामचा, १२४; ख्यात. भाग २ १६३; मुंदियाड़. २४६ ।

४५. रोजनामचा १२४; वारिद. १३५ ब; कामराज ५९ अ; अहवाल. ७२ ब ७३ ब; इबरतनामा ८४ ब ८५ अ; खफी खां भाग २; ७३८ मआसिर. ६३०–१; सीयर. ६८; तारीख-ए-मुजफ्फरी २०२; स्काट १३६; वीर. भाग २, ११३६; ख्यात. भाग २, १६३; मुंदियाड़ २४६; दानेश्वर. २३४; राठौड़ा ५६; गुटका. ३११ अ ।

अहवाल० में लिखा है कि अजीतसिंह ने शाही सेना का खर्चा देना भी स्वीकार किया था । इबरतनामा के अनुसार उसने घोड़े, हाथी भी दिये और कुछ दिनों बाद पेशकश देने का वचन दिया था । सीयर; तारीख-ए-मुजफ्फरी और वीर० में लिखा है कि महाराजा ने धन व भेंट दिया था ।

वारिद (१३५ ब) तथा सैयद गुलाम हुसैन खाँ (सीयर ६७) ने लिखा है कि फर्रुखसियर ने एक ओर तो हुसैनअली खाँ को अजीतसिंह पर आक्रमण करने के लिये भेजा था, और दूसरी ओर महाराजा को गुप्त पत्र लिखकर हुसैनअली खाँ को मार डालने का आदेश दिया था । इसके बदले में उसने अजीतसिंह को अमीर-उल-उमरा की समस्त सम्पत्ति और अन्य अनेक सुविधाएं देना स्वीकार किया था । कविराज श्यामलदास (वीर. भाग २, ११३६) तथा जेम्स स्काट (१३६) ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया है । मीरात उल वारिदात (१३५ अ) के अनुसार अजीतसिंह ने इन पत्रों के द्वारा अपने देश को रक्तपात से बचाने की योजना बनाकर स्वयं ही सब पत्र हुसैनअली खाँ के पास भेज दिये । सीयर-उल-मुताख्खरीन में लिखा है कि अजीतसिंह ने अपनी कन्या को जब दिल्ली भेजा तो ये पत्र उसे सौंपकर बादशाह को वापस देने के लिये कहा । मार्ग में अथवा हुसैन अली के घर में निवास के दिनों में यह पत्र किसी प्रकार अमीर-उल-उमरा के हाथ में पड़ गये ।

परन्तु इस बात को स्वीकार करना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता । प्रथम, किसी भी समकालीन फारसी अथवा राजस्थानी ग्रन्थ अथवा ख्यात. में इसका उल्लेख नहीं मिलता । अजीतसिंह तथा बादशाह का सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण न था । गुजरात न पाकर अजीतसिंह उससे असन्तुष्ट था और अजीतसिंह द्वारा शाही अवज्ञा किये जाने के कारण बादशाह उससे अप्रसन्न था । अतएव इस स्थिति में बादशाह का उस पर विश्वास करना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता । इसके अतिरिक्त बादशाह से मित्रता रखकर भावी उन्नति की संभावना अधिक थी । अतः यदि अजीतसिंह को इस प्रकार के पत्र मिले होते तो वह हुसैन अली को अवश्य ही जोधपुर के रेगिस्तानों में बढ़ने देता और फिर बन्दी बनाने का प्रयत्न करता । पुनः यदि महाराजा के बादशाह से गुप्त सम्बन्ध होते तो वह हुसैनअली के साथ गुजरात के विषय में गुप्त समझौता न करता । अन्त में इन इतिहासकारों ने हुसैनअली के हाथ पत्र लगने की जो सम्भावनाएँ बताई हैं, वह कपोल कल्पित अधिक जान पड़ती हैं । यदि वारिद का कथन स्वीकार किया जाय तो अजीतसिंह द्वारा निश्चित शर्तों पर सन्धि स्वीकार करना मूर्खतापूर्ण लगता है । सैयद गुलाम हुसैनखाँ की बात मानने पर पत्रों को वापस करने की कोई आवश्यकता दिखाई नहीं देती । अतएव फर्रुखसियर के विरुद्ध इस आरोप को स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

सन्धि के पश्चात् हुसैनअली खाँ तुरन्त अभयसिंह को साथ लेकर मेड़ता से अजमेर लौट गया, जहां वह शुक्रवार, २१ मई (१८ जमादिउलअव्वल) को पहुँचा।[४६] यहां से उसने अपनी अधिकांश सेना को वापस भेज दिया और स्वयं शासकीय प्रबन्ध के लिए अजमेर में रुका रहा। मंगलवार ८ जून (६ जमादिउस्सानी) को उसने अजमेर से कूच किया और चार कोस की दूरी पर कंकराणा नामक गाँव में डेरा डाला। यहीं पर अभयसिंह उससे पुनः मिला। बातचीत के उपरान्त विदा के समय अमीर-उल-उमरा ने उसे हाथी, घोड़े व वस्त्र दिये।[४७] अभयसिंह को साथ लेकर हुसैनअली खाँ ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया। मंगलवार, ६ जुलाई (५ रजब) को बादशाह को यह समाचार मिला कि अमीर-उल-उमरा सराय अलाहवर्दी तक आ पहुँचा है। अगले दिन ७ जुलाई (६ रजब) को हुसैनअली खाँ बादशाह से मिला और उसने बताया कि महाराजा ने पूर्ण रूप से समर्पण करके सन्धि की सभी शर्तों को स्वीकार कर लिया है।[४८] शुक्रवार, ९ जुलाई (८ रजब) को हुसैनअली खाँ अभयसिंह को पालकी में लेकर दीवाने-आम गया। फिर स्वयं दीवाने-खास गया और बादशाह से अनुमति लेकर अभयसिंह को अन्दर ले गया। अभयसिंह ने एक सौ अशर्फी तथा एक हजार रुपया नजर व निछावर किया। उसे एक घोड़ा, एक हाथी, सिरपेच तथा मोतियों की माला दी गई। उसके साथियों ने भी मुहरें व रुपये बादशाह को भेंट किये, और बादशाह ने उन्हें खिलअतें दीं। अगले दिन १० जुलाई (९ रजब) को अभयसिंह बख्शिउलमुल्क के साथ दरबार में पुनः आया। सोमवार २ अगस्त (२ शाबान) को जन्म-दिवस के अवसर पर अभयसिंह ने इक्कीस अशर्फियां निछावर कीं। तब उसे खास खिलअत, सुनहरी जीन सहित एक घोड़ा तथा पान दिया गया। इसके उपरान्त भी अभयसिंह दरबार में आता जाता रहा।[४९]

इधर अजीतसिंह ने शुक्रवार, १४ मई (११ जमादिउलअव्वल) को अपने अधिकारी पट्टा की ओर भेज दिए। उसने हुसैनअली के दीवान तोलाराम को खिलअत,

---

४६. जयपुर अखबारात फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड १, १३१।

४७. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड १, १७०।

हुसैन अली खाँ अजमेर में २१ मई से ८ जून तक रहा था। चूंकि अखबारात में इन तिथियों का स्पष्ट उल्लेख है, अतः इरविन का यह कथन ठीक प्रतीत नहीं होता कि हुसैन अली दो महीने तक अजमेर में रहा था।

४८. जयपुर अखबारात नं. २४६६; रा० पु० बी०; जयपुर अखबारात; फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड १, १६७: वकील रिपोर्ट्स, राजस्थानी, नं. २३१, रा० पु० बी०।

४९. जयपुर अखबारात, वर्ष ३, खंड १, १६६ व २०५; खंड २; ६, ३३, ५७, ६१; खंड ३, १०१; जयपुर अखबारात, नं. २५१७, रा० पु० बी०; कामवर. ४०५; वकील रिपोर्ट्स. राजस्थानी, नं. २३३, रा० पु० बी०; राजरूपक. ४६८।

सूरजप्रकाश. (७५) में लिखा है कि अभयसिंह को पाँच हजार का मनसब, सिरोपाव तलवार, जमधर, जड़ाऊ; खंजर व हाथी भी दिया गया। टॉड (भाग २, ६६) ने भी पांच हजार का मनसब मिलना स्वीकार किया है। परन्तु इसकी पुष्टि किसी फारसी ग्रन्थ से नहीं होती।

घोड़ा व पाँच सौ रुपया और नाहर खाँ को खिलअत व घोड़ा देकर विदा किया और यह संदेश भेजा कि अपने सम्बन्धियों के आ जाने पर वह स्वयं भी थट्टा चला जाएगा। मंगलवार, १ जून (२९ जमादिउल अव्वल) को उसने अपना हरावल आगे भेजा और ३ जून (१ जमादिउस्सानी) को स्वयं भी उस ओर कूच कर दिया।[५०] वृहस्पतिवार, १ जुलाई (२९ जमादिउस्सानी) को उसने बादशाह फ़र्रुखसियर को एक पत्र लिखा जिसमें अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँगी थी।[५१] सोमवार, २ अगस्त (२ शाबान) को बादशाह को अजीतसिंह का एक पत्र मिला, जिसमें उसने सूचित किया था कि यद्यपि उसने दो सौ ऊँटों पर पानी भरवा कर सेना के साथ रखा हैं, तथापि पानी की अत्यधिक कमी है। फलस्वरूप उसने अपनी सेवा को तीन भागों में बांट दिया है जो बीस-बीस कोस की दूरी पर यात्रा करते हैं।[५२] इस प्रकार वह धीरे-धीरे थट्टा की ओर जा रहा था।

अजीतसिंह के सन्धि करने तथा शाही आज्ञा स्वीकार कर लेने से धीरे-धीरे बादशाह का रोष भी कम होने लगा और उसने समय-समय पर महाराजा के लिए खिलअत व अन्य वस्तुएँ भेजीं। नवम्बर-दिसम्बर (जिल्हिज) के महीने में उसने अजीतसिंह को जोधपुर, मेड़ता व सोजत के परगने जागीर में दे दिए। अजीतसिंह ने भी कई बार बादशाह को भेंट भेजी।[५३] रविवार, १७ अप्रेल (२३ रबीउस्सानी) को अजीतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अभयसिंह को अब्दुलहमीद के स्थान पर सोरठ का फ़ौजदार नियुक्त किया गया, और इसके लिए उसे एक हज़ार सवार तथा अट्ठाईस लाख दाम इनाम में दिए गए।[५४] तीन दिन बाद २० अप्रेल (२६ रबीउस्सानी) को फर्रुखसियर ने अजीतसिंह को छः हजार जात, पाँच हज़ार सवार, दो हज़ार सवार दो अस्पा का मनसब देकर गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त किया, और इसके लिए

---

५०. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड १, १३१ व १५१।

५१. मुतफर्रिक अहलकारान, नं. १५०४, रा० पु० बी।

५२. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर. वर्ष ३. खंड २, ४।

५३. मुतफर्रिक अहलकारान. नं. ६६१, रा० पु० बी०

बादशाह ने वृहस्पतिवार, ५ अगस्त (५ शाबान) को अजीतसिंह के लिये बरसाती खिलअत भेजी। १६ मार्च, सन् १७१५ ई० (२१ रबीउलअव्वल, ११२७ हि०) तथा २० मार्च (२५ रबीउलअव्वल) को अजीतसिंह के लिये खास खिलअत के साथ तथा ११ अप्रेल (१७ रबीउस्सानी) को खिलअत के साथ हाथी; घोड़ा व तलवार भेजे गये। शनिवार, १८ दिसम्बर, सन् १७१४ ई० (२२ जिल्हिज, ११२६ हि०) को उत्सव के अवसर पर अजीतसिंह द्वारा भेजी गई जहाँगीरी जड़ाव की अँगूठी तथा २२ जनवरी (२७ मुहर्रम) को जोधपुर से भेजे गये अनार बादशाह के सम्मुख प्रस्तुत किये गए (जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ३, खंड ३, ११, १८९ व २५५; वर्ष ४, खंड १, ३७ व ६६ जयपुर अखबारात, नं. २५५४ व २५९९ रा० पु० बी०)।

५४. जयपुर अखबारात. फर्रुखसियर, ४, खंड १, ७३; वकील रिपोर्ट्स, राजस्थानी, नं. २४७, रा. पु. बी.; मीरात. ३६७।

उसे एक हज़ार सवार और बीस लाख दाम दिए गए। अजीतसिंह की ओर से भंडारी विजयराज को गुजरात का नायब और अभयसिंह की ओर से कायस्थ फतेसिंह को सोरठ का नायब नियुक्त किया गया।[५५]

इस प्रकार महाराजा अजीतसिंह की मांग पूरी करने के बाद फ़र्रुख़सियर ने अपने मामा शाइस्ता खाँ को महाराजा की लड़की को लाने के लिये बृहस्पतिवार, ५ मई (१२ जमादिउलअव्वल) को भेजा।[५६] शाही आज्ञानुसार अजीतसिंह ने अपनी पुत्री इन्द्रकुँवर को दिल्ली के लिए विदा किया और भंडारी खींवसी को दहेज के समान के साथ सपरिवार राजकुमारी के साथ जाने का आदेश दिया।[५७]

यह लोग सोमवार १५ अगस्त, १७१५ ई. (२५ शाबान, ११२७ हि.) को दिल्ली पहुँचे तथा शाही आज्ञानुसार अमीर-उल-उमरा की हवेली में ठहरे। शुक्रवार,

---

५५. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ४, खंड १, ८५; मीरात, २६७; मआसिर १७४; राजरूपक. ४७१; ख्यात. भाग २; १६४; मूंदियाड़ २४६; वीर. भाग २, ८४१; दानेश्वर. २३५ अ।

ख्यात. भाग (२, पृ. २६४); मूंदियाड़ (१४६); राठौड़ा (५६) में भी लिखा गया है कि अजीतसिंह ने सितम्बर, अक्तूबर (आश्विन), (संवत् १७७१) को जोधपुर से कूच किया और जब वह सिवाना होता हुये बाड़मेर कोट पहुँचा तो भंडारी खींवसी को पत्र लिखा कि वह उस समय तक थट्टा नहीं जायेगा तथा अपनी लडकी का डोला नहीं भेजेगा। जब-तक उसे गुजरात का सूबा तथा मारोठ, परवतसर; ववाल व केकड़ी के परगनें नहीं दे दिये जायेंगें। तब भंडारी खींवसी के बादशाह से अनुनय-विनय करने पर अजीतसिंह को गुजरात का सूबा दिया गया।

यह स्वीकार करना कठिन है कि बादशाह ने भंडारी खींवसी के प्रभाव से अजीतसिंह को गुजरात का सूबा दिया हो। सम्भवतः हुसैनअली ने अपने वायदे के अनुसार प्रयत्न करके अजीतसिंह को गुजरात का सूबा दिलवाया था। परन्तु ख्यातकारों का यह कथन कि इस समय अजीतसिंह को मरोठ परवतसर, ववाल और केकड़ी के सूबे भी दिये गये, ये, सत्य जान पड़ता है। क्योंकि सन् १७२३ ई० में जब अजीतसिंह ने बादशाह मुहम्मद से सन्धि की थी तब उसे इन परगनों से अधिकार हटाना पड़ा।

५६. रोजनामचा. ७७ व १२४; खफीखाँ भाग २, ७३८; इरविन. भाग १ ३०४। मआसिर (६३१) के अनुसार हुसैनअली जब अजमेर से वापस गया था, तभी कुछ व्यक्तियों को डोला लेकर आने के लिये छोड़ दिया था। अहवाल (७२ व ७३ व) में लिखा है कि जब अमीर-उल-उमरा अजमेर में था उस समय अजीतसिंह ने अपनी लड़की को भेज दिया था और हुसैनअली ने स्वयं आगे जाकर उसका स्वागत किया था, परन्तु यह मत उपयुक्त प्रतीत नहीं होते।

५७. ख्यात. भाग २, १६४; वीर-भाग १, ८४१ व ११३६; रोजनामचा, ७७; रुस्तमअली. २२८ अ।

ख्यात के अनुसार अजीतसिंह ने अपनी कन्या को सितम्बर, सन् १७१५ ई. (आश्विन, संवत् १७७२) में विदा किया था। परन्तु यह ठीक नही है क्योंकि उसका निकाह दिल्ली में अगस्त के महीने में हुआ था।

मंगलवार, ६ दिसम्बर (२० ज़िल्हिज) को दूल्हन के घर से मेंहदी आई, जो दूल्हा के हाथों व पैरों में लगाई गई। अगले दिन ७ दिसम्बर (२१ ज़िल्हिज) को अजीतसिंह की ओर से वस्त्र, चुग़ा, जड़ाऊ सिरपेच व कीमती ख़ंजर भेजा गया जिन्हें पहनकर बादशाह, दो घड़ी रात्रि व्यतीत हो जाने के पश्चात् सिंहासन पर बैठकर दिल्ली द्वार से निकला तथा ढोल, नगाड़े, व आतिशबाज़ी के बीच अमीर-उल-उमरा की हवेली में गया। क़ुतुबुल्मुल्क ने उसका स्वागत किया तथा रुपया व मोती आदि निछावर किए।[६५] बादशाह ने राजस्थानी विधि के अनुसार तोरण बांधा। भंडारी खींवसी की पत्नी ने उसकी आरती की, केसर का तिलक करके मोती के अक्षत चढ़ाये तथा बादशाह की नाक खींची। बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पुरोहित अखेराज को गुरुपदा का सिरोपाव व हाथी, बारहठ केसरीसिंह को तोरण का सिरोपाव व हाथी दिया और भंडारी खींवसी को सिरोपाव, सिरपेच, कलंगी, पदक व हाथी दिया गया।[६६] विवाहोपरान्त रात्रि के अन्तिम भाग में बादशाह, दूल्हन को लेकर लाहौरी द्वार से क़िले में लौटा। अगले नौ-दस दिन तक विवाह के उपलक्ष में उत्सव मनाये जाते रहे।[६७] विवाह के अवसर पर राजपूतों ने बरातियों को गुलाब-जल, चीनी तथा अफ़ीम का मिश्रण पीने के लिए दिया। राजपूतों ने कहा कि यह उनके देश की रीति है। कुछ मुसलमानों ने इस पेय को ग्रहण किया, कुछ ने नहीं लिया। एक अन्य नया प्रदर्शन यह था कि एक ऐसा स्वर्ण-थाल बनाया गया जिसके पाँच भाग थे। इन पाँचों भागों में भिन्न जवाहरात रखकर उसे सजाया गया था।[६८] महाराजा ने पचास लाख रुपया नक़द, सोने व चांदी के साज़ सहित अरबी व ईराक़ी घोड़े, सोने व चांदी के हौदे सहित दस हाथी, तथा क़ीमती जवाहरात दहेज में दिए।[६९] विवाह के तुरन्त ही बाद ९ दिसम्बर (२३ ज़िल्हिज) को बादशाह ने महाराजा के नाम गुजरात सूबे की सूबेदारी का फ़रमान जारी किया।[७०]

---

६५. रोजनामचा ७८; कामवर. ४१४; शिवदास ४ ब।

रोजनामचा का लेखक मिर्जामोहम्मद तथा उसका भाई भी दीवान-ए-खास से दूल्हन के घर तक बरात के पीछे गये थे; परन्तु भीड़ की अधिकता के कारण वहाँ अन्दर प्रविष्ट न हो सके।

६६. ख्यात. भाग २, १६४; वीर भाग २, ८४१ व ११३६।
वंश (भाग ४, ३०५०) में लिखा है कि अजीतसिंह स्वयं अपनी कन्या को लेकर दिल्ली गया था और उसने डोला देकर बादशाह से क्षमा माँगी थी। परन्तु यह ठीक नहीं है।

६७. रोजनामचा ७६; कामवर. ४१४।

सीयर (७७) में विवाह की तिथि ८ दिसम्बर (२२ जिल्हज) स्वीकार की गई है परन्तु समकालीन ग्रन्थ रोजनामचा को ही मान्यता दी गई है।

६८. इरविन. भाग १, ३०५।

६९. शिवदास ४ ब।

कामवर (४१४) ने लिखा है कि १२ दिसम्बर (२६ जिल्हिज) को अजीतसिंह द्वारा दहेज में भेजे गये इकतीस घोड़े व सोने चाँदी के हौदे सहित सात हाथी नजर किये गये थे।

७०. फरमान नं.१०, रा. पू. बी.।

मुग़ल-सम्राट् अकबर ने मुग़ल शासकों के राजपूत कन्याओं के साथ विवाह की जो परिपाटी आरम्भ की थी, उसमें यह अन्तिम विवाह था। पुत्री के विवाह के लिये स्वीकृति देकर अजीतसिंह ने मारवाड़ राज्य को युद्ध एवं रक्तपात से बचा लिया और शान्ति व स्थायित्व प्रदान किया। इस विवाह के फलस्वरूप अजीतसिंह का दिल्ली दरबार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हो गया तथा उसके गौरव व मान में विशेष वृद्धि हुई। इस सम्बन्ध के कारण ही अजीतसिंह को गुजरात सूबे का फ़रमान मिल सका जिससे महाराजा तथा सैयदों से घनिष्ठता के लिए मार्ग खुल गया। औरंगज़ेब के समय से राठौड़ों व मुग़लों के बीच जो खाई बन गई थी, वह कुछ समय के लिए समाप्त हो गई। इस प्रकार इन्द्रकुँवर का विवाह भावनात्मक तथा नैतिक दृष्टि से भले ही हेय समझा जाय, राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[७१]

(ग) गुजरात की प्रथम सूबेदारी:—(सन् १७१५-७१७ ई०)

महाराजा अजीतसिंह को जब अहमदाबाद में अपनी नियुक्ति का समाचार मिला तो उसने विजयराज भंडारी को गुजरात भेजा।[७२] भंडारी विजयराज बृहस्पतिवार, २८ जुलाई, सन् १७१५ ई. (७ शाबान, ११२७ हि०) को अहमदाबाद पहुँचा और पहुँचते ही उसने राज्य के शासन प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया। अब्दुल हमीद खाँ को बख्शी तथा वाक़यानवीस के पद पर नियुक्त किया गया और साथ ही वह पहले की तरह हज़रत अहमद खट्टू की दरगाह का दरोग़ा भी बना रहा। विजयराज ने विभिन्न स्थानों पर फ़ौजदारों तथा थानेदारों की नियुक्तियाँ भी कीं।[७३]

कुछ महीनों के बाद सम्भवतः सन् १७१६ ई. के आरम्भ में अजीतसिंह ने स्वयं भी गुजरात की ओर प्रस्थान किया। उसका पहला पड़ाव जोधपुर से तीन कोस की दूरी पर व्यास के तालाब पर हुआ। तदुपरान्त वह जालोर व भीनमाल होता हुआ आबू पर्वत के निकट जा पहुँचा। वहाँ जगतसिंह नामक एक व्यक्ति ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी और यात्रियों व व्यापारियों को लूटा करता था। अतः महाराजा ने उसके स्थान को घेर कर गोलाबारी करने की आज्ञा दी। जगतसिंह ने तब घबराकर समर्पण कर

---

७१. कुछ विद्वानों ने इस विवाह को भारत में अंग्रेजी शक्ति के आरम्भ के लिए उत्तरदायी ठहराया है। फर्रुखसियर की बीमारी में डा० हैमिल्टन ने उसका इलाज किया था और बादशाह ने इसके बदले में उन्हें कई सुविधाएँ भी दी थीं। परन्तु इसके लिए फर्रुखसियर की बीमारी उत्तरदायी थी; न कि इन्द्रकुँवर का विवाह, जो कि बादशाह के स्वस्थ होने के उपरान्त हुआ था। (स्काट १३८ टि.; इरविन भाग १, ३०५-६)।

७२. मीरात ३६७; ख्यात भाग २. १६४; हुं दिवाड़ २४६; वांकीदास ३८; कविराजा ९२; राजरूपक ४७२; दानेश्वर-२३५।

७३. मीरात-३६७।

दिया और अजीतसिंह को धन व घोड़े नज़र किये। यहां से वह ससैन्य पालनपुर गया, जहां पर इस्माइल ख़ां ने उसे घोड़ा नज़र किया। यहीं से उसने निकटवर्ती बापी नामक स्थान के राजा पंचाइण पर आक्रमण करने के लिए अपने सैनिकों को भेजा। इस विशाल सेना को देखकर वह डर गया और उसने महाराजा से मिलकर धन व घोड़े भेंट किये। तदुपरांत कोलीवाड़ा के कुछ गाँवों से धन वसूलने के उपरांत उसने अनहिलपाटन पर अधिकार करके वहाँ अपना हाक़िम नियुक्त किया। मालगढ़ का अधिकारी अनूपसिंह कोलियों की सेना एकत्र करके उपद्रव कर रहा था, अतः अजीतसिंह ने अपने कुछ सैनिकों को धीरजमल के नेतृत्व में उस पर आक्रमण करने के लिए भेजा। अनूपसिंह ने भी शीघ्र ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। कुछ दिन पाटन में रुकने के बाद अजीतसिंह ने अहमदाबाद की ओर प्रस्थान किया।[७४]

बृहस्पतिवार, २२ फरवरी सन् १७१६ ई० (१० रबीउलअव्वल, ११२८ हि०) को महाराजा अजीतसिंह, अहमदाबाद के निकट शाही बाग़ में पहुँचा। विजयराज भंडारी, मेहरअली खां, सफ़दर ख़ाँ बाबी, नसीरउद्दीन अहमद ख़ाँ (सूबे का अध्यक्ष व उपदीवान), क़ाज़ी खैरुल्लाह ख़ाँ, मुहम्मद मुनीम ख़ाँ (वाक़यानवीस) मीर हसमउद्दीन ख़ां (मुहतासिब), मीर अबू तालिब (कोतवाल), मुफ्ती मुहम्मद अकबर, अब्दुल हामिद खाँ बहुत से मनसबदार अफ़सर, अमीर, हिन्दू व मुसलमान नेता, साहूकार, तथा नगर के प्रमुख नागरिक राजा के स्वागत के लिए गये। शुभ मुहूर्त में राजा ने भद्र नामक क़िले में प्रवेश किया। दरबार का आयोजन किया गया, जिसमें विभिन्न फ़ौजदार तथा थानेदार अपने-अपने स्थान पर दरबार की रीति के अनुसार खड़े हुए। अजीतसिंह ने अहमदाबाद का शासन-प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। नाहर ख़ाँ को उसने नगर का दारोग़ा नियुक्त किया।[७५] उसने ग़ज़नी ख़ाँ जालोरी को पालनपुर का तथा जवांमर्द ख़ाँ को राधनपुर का हाकिम नियुक्त किया।[७६]

उधर दरबार में शनिवार, ७ जनवरी, सन् १७१६ ई. (२३ मुहर्रम, ११२८ हि०) को अजीतसिंह द्वारा भेजे गये अनार बादशाह के सम्मुख रक्खे गये। दो दिन बाद ६ जनवरी (२५ मुहर्रम) को अभयसिंह को बादशाह

---

७४. अजितोदय; सर्ग २२, श्लोक १५-२८; राजरूपक-४७५-७; टाड. भाग २, ६६।

७५. मीरात ३६६-७०; राजरूपक ४७७; टाड भाग २, ६६।

बादशाह ने गुजरात का फरमान नाहर खाँ व तोलाराम के हाथ अजीतसिंह के पास भेजा था। नाहर खाँ ने हुसैन अली खाँ के आक्रमण के समय मध्यस्थ का कार्य किया था और अजीतसिंह से उसका पूर्व-परिचय था। अतः बादशाह ने उसे महाराजा के साथ अहमदाबाद जाने की आज्ञा दी थी, ताकि वह अजीतसिंह के कार्यों पर दृष्टि रक्खे जिससे वह उचित मार्ग से न हटे।

७६. बाम्बे गैजे. २६६।

ने ख़िलअत दी। मंगलवार, २४ जनवरी (१० सफ़र) को अजीतसिंह के लिए एक फ़रमान, ख़िलअत व जड़ाऊ सिरपेच भेजा गया, जो अगले दिन मुहम्मद वासे नामक दूत के द्वारा महाराजा के पास भेजा गया। कुछ दिन बाद सोमवार, ६ फ़रवरी (२३ सफ़र) को शिकार के समय अजीतसिंह के लिए दो बाज़ दो साहीवीन, आदि इनाम रक्खा गया।[७७] इस प्रकार अजीतसिंह तथा फ़र्रुख़सियर के सम्बन्ध अच्छे बने रहे। कुछ दिनों बाद बादशाह ने नागौर की फ़ौजदारी (ज़मींदारी) भी अजीतसिंह को दे दी। इस आशय का फ़रमान लेकर बहुमूल्य ख़िलअत तथा जड़ाऊ सिरपेच के साथ रज़ायार ख़ाँ अहमदाबाद आया। उसके साथ ही अहमदाबाद की सूबेदारी का फ़रमान लेकर मुहम्मद ज़माँ भी आया। महाराजा ने यथोचित सम्मान के साथ शाही फ़रमान ग्रहण किये।[७८]

अजीतसिंह ने अब अपनी सत्ता जमाना आरम्भ कर दिया। उसने मेड़ता के हाकिम भंडारी पोमसी तथा जोधपुर के हाकिम भंडारी अनूपसिंह को नागोर पर अधिकार करने के लिए ससैन्य जाने का आदेश दिया। उसकी आज्ञानुसार जोधपुर तथा सोजत की सम्मिलित सेना ने मंगलवार, २२ मई (ज्येष्ठ सुदि १३, संवत् १७७३) को उस ओर प्रस्थान किया। भंडारी पोमसी के नेतृत्व में यह सेना बुधवार, ६ जून (आषाढ़ वदि १३) को नारावणी नामक गाँव में पहुँची, जहां इन्द्रसिंह की सेना ने इसका सामना किया। तीन प्रहर तक युद्ध होता रहा और अन्त में नागोर की सेना भाग गई। भंडारी पोमसी ने आगे बढ़कर २३ जून (आषाढ़ सुदि १५) को नागोर के किले को घेर लिया। इसी बीच कानोत दीपावड़ी तथा कूंपावत अनूपसिंह आदि भी अपनी सेनाएँ लेकर उससे आ मिले। इन्द्रसिंह ने अब राठौड़ भीव रणछोड़ दासोत के माध्यम से सन्धि की बातचीत की परन्तु कोई आशा न देखकर अन्त में नागोर छोड़कर दिल्ली चला गया। शनिवार, ३० जून (श्रावण वदि ७) को जोधपुर की सेना ने नागोर पर पूर्णाधिकार कर लिया। जब महाराजा को यह समाचार मिला तो उसने अहमदाबाद से अपने सरदारों के लिए सिरोपाव तथा सोने की मूठ की तलवारें भेजीं, पोमसी को नागोर का हाकिम तथा भंडारी गिरधरदास को मेड़ता का हाकिम नियुक्त किया।[७९] मंगलवार, १० जुलाई (१ शाबान) को इन्द्रसिंह पर विजय पाने के उपलक्ष में अजीतसिंह की ओर से एक सौ अशर्फ़ियाँ बादशाह को नज़र की गईं।[८०] कुछ

---

७७. जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष ४, खण्ड २, २२८, २६० व २७७; जयपुर अख़बारात, नं. २७७५, रा. पु. बी ; फरमान नं. ६, रा. पु. बी.।

७८. मीरात ३७०; जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष ५, खण्ड २, २२९-३०। ख्यात (भाग २, १६५) व दानेश्वर (२३६) में लिखा है कि नागोर अभयसिंह को दिया गया था; परन्तु इस विषय में मीरात-ए-अहमदी को अधिक प्रामाणिक मानना उचित प्रतीत होता है।

७९. ख्यात भाग २, १६५-६; मूंदियाड़ २५०-१; वीर-भाग २, ८४१; अजितोदय सर्ग २३, श्लोक २-१३; राजरूपक ४७८-९; राठौड़ा ५९-६०।

८०. जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष, ५ खण्ड २, २७४।

महीनों के बाद फ़रवरी, सन् १७१७ ई. (रबीउलअव्वल, ११२९ हि०) को अजीत-सिंह के नाम नागोर की ज़मीन्दारी का फ़रमान भी जारी हुआ।[८१]

नागोर से निकलकर इन्द्रसिंह अपने पुत्र मोहनसिंह के साथ दिल्ली की ओर गया। अजीतसिंह के आदेशानुसार व्यास दीपचन्द, राठौड़ दुर्जनसिंह, राठौड़ सिवासिंह, राठौड़ मोहकमसिंह व राठौड़ फतेसिंह एक बड़ी सेना लेकर उसकी ओर गये और जब वे शेखावटी में स्थित कासली नामक गाँव में रुके हुए थे तो अवसर पाकर दुर्जनसिंह ने शिविर में प्रवेश करके मोहनसिंह को सोते में मार डाला। उसकी इस सेवा से अजीतसिंह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने दुर्जनसिंह का बहुत सम्मान किया और अपने साथ भोजन कराया।[८२]

सोमवार, ५ नवम्बर, सन् १७१६ ई. (१ ज़िल्हिज, ११२८ हि०) को फ़र्रुख़सियर ने अजीतसिंह को सात हजार जात, सात हजार सवार डेढ़ हजार दो अस्पा का मनसब दिया। इसके साथ ही जोधपुर व नागोर की फ़ौजदारी तथा अहमदाबाद की सूबेदारी और पचास लाख दाम भी दिये गये। इसके अलावा अहमदा-बाद के लिए एक करोड़ दाम तथा नागोर के लिए एक हजार सवार और मिले।[८३] अजीतसिंह ने बुधवार, २१ नवम्बर (१७ ज़िल्हिज) को अपने वकील गुलालचन्द तथा खींवसी भंडारी के द्वारा जड़ाऊ चुग़ा नज़र कराया।[८४]

अहमदाबाद में अजीतसिंह ने मुसलमानों को सन्तुष्ट रखने का प्रयास किया। ईद के दिन वह स्वयं ईदगाह गया[८५] खुतबा सुना और बाद में क़ाज़ियों को ख़िलअत व धन दिया।[८६]

इसी बीच ३० जुलाई, सन् १७१६ ई. (२१ शाबान, ११२८ हि०) को अभयसिंह से सोरठ की फ़ौजदारी वापस लेकर अहमदाबाद के दीवान हैदरक़ुली ख़ाँ को दे दी गई।[८७] यह समाचार पाकर हैदरक़ुली ने सैयद आकिल ख़ाँ को अपना नायब बनाकर भेजा। वह जम्बूसर में सेना एकत्र करके लोलियानह नामक स्थान पर रुका। फिर उसने पलिताना लूटा। चूँकि अजीतसिंह और हैदरक़ुली के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, अतः महाराजा ने उन सभी व्यक्तियों को, जिन्होंने हैदरक़ुली की सेवा स्वीकार की थी, यह धमकी दी कि यदि सोरठ में किसी प्रकार का उपद्रव किया गया तो उनके परिवारों से बदला लिया जायेगा। गृह-युद्ध की आशंका उत्पन्न हो

---

८१. फरमान, नं. ७, रा. पु. बी.।

८२. अजितोदय सर्ग २३, श्लोक ९-१०; मूंदियाड़ २५२; ख्यात-भाग १, १६०; वीर. भाग २, ८४१; दानेश्वर २३४; ओझा भाग ४, खण्ड २, ५५५।

८३. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ५, खण्ड १, १६३।

८४. वही, खण्ड २, १२२।

८५. जयपुर अखबारात, नं. २९००, रा. पु. बी.।

८६. सीरात ३७१।

८७. कामवर. ४१९।

गई, परन्तु गोहलवार के नायब सलावत ख़ाँ बाबी के प्रयत्न से बात सुलझ गई और सैयद आक़िल ख़ाँ सोरठ लौट गया और उसके स्थान पर हैदरकुली ख़ाँ ने रजा क़ुली को भेजा। जब वह अमरेली तक पहुँचा तो अभयसिंह का नायब फतेहसिंह कायस्थ स्थान छोड़कर चुपचाप चला गया।[८८]

कुछ दिनों उपरान्त अजीतसिंह स्वयं पेशकश वसूल करने के विचार से निकला। जब वह नवा नगर पहुँचा तो वहाँ के जाम तमाईची से उसका युद्ध हो गया, और कई दिन युद्ध करने के बाद जाम ने पेशकश व घोड़ा आदि देकर सुलह की। मार्च, सन् १७१७ ई. (चैत्र सुदि, संवत् १७७४) में जगतशिरोमणि के दर्शन के विचार से महाराजा द्वारिका की ओर गया। मार्ग में उसने सर्वत्र पेशकश वसूल किया। इस प्रयास में हलवद के शासक झाला जसराज से युद्ध हुआ जिसमें झाला पराजित होकर भाग गया। इसके उपरान्त अजीतसिंह द्वारिकाधीश के दर्शन करने के लिये गया।[८९]

उधर अहमदाबाद में महाराजा के नायब ने विभिन्न क्षेत्रों में कठोरता का व्यवहार किया था तथा अनुचित ढंग से धन संग्रह करना आरम्भ कर दिया था। अब्दुल हमीद के एक नौकर के साथ किसी बात पर राठौड़ों का झगड़ा हो गया। बात इतनी बढ़ गई कि गृह-युद्ध की आशंका होने लगी। चूँकि उस नगर में बहुत से शाही मनसबदार तथा सैनिक अफसर उपस्थित थे, अतः राठौड़ों ने सुलह करना ही ठीक समझा।[९०] परन्तु अहमदाबाद के कुशासन के समाचार दिल्ली तक पहुँच चुके थे और कुछ ही दिन उपरान्त मई, सन् १७१७ ई. में अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटा दिया गया।

(घ) सैयद बन्धुओं से मित्रता (सन् १७१७-९ ई.)

फ़र्रुख़सियर के राज्यत्व के आरम्भ में ही उसका सैयद भाइयों के साथ जो मतभेद आरम्भ हो गया था, वह धीरे-धीरे बढ़ता हुआ अब इस स्थिति तक पहुँच

---

८८. मीरात. ३७४-५; बाम्बे गैजे. २९९-३००।

८९. मीरात ३७५-६; राजरूपक. ४८५-९३; अजितोदय. सर्ग २३, श्लोक २३-४३; सर्ग २४; श्लोक ११-६; ख्यात-भाग २, १६७; दानेश्वर. २३६; गुटका-२११ व; जोधपुर रै राठौड़ां री ख्यात ७ व; टॉड, भाग २, ६६ व ६७।

९०. मीरात. ३७६।

ख्यातों में लिखा है कि सैयद भाईयों से महाराजा का सम्बन्ध बढ़ता देख कर फर्रुखसियर ने उसे गुजरात से हटा दिया। जब अजीतसिंह को यह समाचार मिला तो उसने दिल्ली में उपस्थित अपने वकील भण्डारी खींवसी को लिखा है कि चूँकि वह इन दिनों द्वारिका जी की यात्रा पर जा रहा है, अतः वह बादशाह से प्रार्थना करे कि उसे कुछ दिनों के लिए गुजरात में और रहने दिया जाय। भंडारी ने ऐसा ही निवेदन फर्रुखसियर से किया। फलस्वरूप उसे चार महीने के लिए गुजरात में रहने दिया गया। परन्तु मीरात के उल्लेख को ही स्वीकार किया गया है।

गया था कि उसे अब दूर करना सम्भव नहीं था। फ़र्रुख़सियर की अयोग्यता के फलस्वरूप उसके सहयोगियों की संख्या क्रमशः कम होती जा रही थी। मीर जुमला उसके व्यवहार से अप्रसन्न होकर सैयद अब्दुल्ला ख़ाँ की सहायता लेने के लिये बाध्य हो गया था। इनायतुल्ला ख़ाँ काश्मीरी के हिन्दू-विरोधी कार्यों का समर्थन करके अब्दुल्ला ख़ाँ ने हिन्दुओं की सहानुभूति भी प्राप्त कर ली थी।[61] इस प्रकार सैयदों की शक्ति काफ़ी बढ़ गई थी। यह देखकर फ़र्रुख़सियर ने विभिन्न सशक्त व्यक्तियों को अपनी सहायता के लिये बुलाने का निश्चय किया। इस कार्य के लिये उसने अपने श्वसुर अजीतसिंह को शीघ्र दिल्ली आकर सैयदों का समूल विनाश करने के लिये लिखा। उसने यह आश्वासन दिया कि इसके बदले में उन्हें बहुत-सा पुरस्कार दिया जायेगा और अच्छे स्थानों में नियुक्ति की जायेगी। इसी प्रकार का संदेश उसने पटना के सूबेदार सरबुलन्द ख़ाँ तथा मुरादाबाद के सूबेदार निज़ामुलमुल्क को भी भेजा।[62] रविवार, १३ जनवरी, सन् १७१७ ई. (१० सफ़र, ११२९ हि.) को महाराजा के नाम फ़रमान जारी हुआ जिसमें उसे जल्दी दिल्ली पहुँचने का आदेश दिया गया था। मंगलवार, २ अप्रेल (१ जमादिउल अव्वल) को पुनः एक फ़रमान उसके नाम जारी हुआ और उसके वकील को सौंपा गया।[63]

परन्तु बार-बार फ़रमान पाने के बाद भी अजीतसिंह स्वयं दिल्ली नहीं गया। उसने अपने वकील के द्वारा भेंट भेजकर ही बादशाह को आश्वस्त करने का प्रयास किया।[64] सम्भवतः इसका कारण यह था कि अजीतसिंह दिल्ली की राजनीति में स्वयं को उलझाना नहीं चाहता था। साथ ही यह भी सम्भव है कि चूँकि गुजरात की सूबेदारी उसे सैयद भाइयों के प्रयत्न से मिली थी, अतः वह उनके विरुद्ध बादशाह की सहायता करने का इच्छुक न रहा हो। बादशाह ने अजीतसिंह की इस अवज्ञा तथा गुजरात में कुशासन का समाचार पाकर ही संभवतः अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटा दिया और उसके स्थान पर समसामुद्दौला ख़ानेदौराँ नुसरतजंग को नियुक्त किया और शनिवार, २५ मई (२४ जमादिउस्सकी) को अब्दुल हमीद ख़ाँ ख़ानेदौराँ को नायब नियुक्त किया गया। यह समाचार पाकर महाराजा उत्तेजित हो उठा और तेजी के साथ अहमदाबाद लौटकर उसने शाही बाग़ को घेर लिया। अब्दुल हमीद उसका सामना करने के लिये पूरी तरह तैयार था। स्थिति गम्भीर देखकर नाहर ख़ाँ ने अजीतसिंह को समझाया कि इस समय

---

६१. सतीशचन्द्र. ११६ व १२८।

६२. रोजनामचा १६६; खफी खाँ भाग २, ७६१; सीयर ११६; मआसिर ७१०; स्काट. १५४; ख्यात भाग २, १७०; इरविन भाग १, ३४८।

६३. फरमान, नं. ८, रा. पु. बी., जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ६, खण्ड १, १६५।

६४. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ६, खण्ड १, ४३ व २५३।

सोमवार, १८ फरवरी (१७ रबीउलअव्वल) को अजीतसिंह के वकील भण्डारी खींवसी ने उसकी ओर से दो सौ मुहरें बादशाह को नजर कीं॥

वह शाही सेना का सामना न कर सकेगा, और यह भी कहा कि बादशाह की आज्ञा का विरोध न करके उसे जोधपुर वापस चले जाना चाहिये।[९५] अजीतसिंह ने उसकी सलाह मान ली और जोधपुर के लिये प्रस्थान करके जुलाई, सन् १७१७ ई. (श्रावणवदि, संवत् १७७४) के महीने में जोधपुर जा पहुँचा।[९६] उसने बादशाह को अर्जदाश्त भेजी जो ९ सितम्बर (१२ शव्वाल, ११२९ हि.) को उसके वकील भंडारी खींवसी तथा गुलालचन्द ने बादशाह के सम्मुख रक्खी। इसमें महाराजा ने फ़र्रुख़सियर से नाहर ख़ाँ को भेजने का अनुरोध किया था, और लिखा था कि जब तक नाहर ख़ाँ जोधपुर नहीं आयेगा, वह दिल्ली के लिये प्रस्थान नहीं करेगा। चूँकि पिछले कई वर्षों से नाहर ख़ाँ अजीतसिंह के पास था, सम्भवतः इसीलिये अजीतसिंह को उस पर विश्वास था। फ़र्रुख़सियर ने उसकी बात स्वीकार करके नाहर ख़ाँ को जोधपुर भेज दिया।[९७]

नाहर ख़ाँ यद्यपि बादशाह की ओर से जोधपुर गया था, परन्तु वास्तव में वह सैयदों से मित्रता रखता था। अजीतसिंह भी गुजरात वापस लिये जाने के बाद से ही बादशाह से असन्तुष्ट था। सम्भवतः वह समझ गया था कि बादशाह से मित्रता करना लाभकर नहीं है। इसके विपरीत सैयदों से एक बार गुप्त समझौता करके वह गुजरात का सूबा प्राप्त कर चुका था। अतः यद्यपि बादशाह उसका दामाद था, तथापि उसने नाहर ख़ाँ की सलाह स्वीकार करके सैयदों का साथ देने का निश्चय किया।[९८] नाहर ख़ाँ से बातचीत करके उसने यह तय किया कि वह दशहरे के उपरान्त दिल्ली के लिये प्रस्थान करेगा। बादशाह को यह समाचार १० सितम्बर, सन् १७१७ ई० (१४ शव्वाल, ११२९ हि०) को मिला और उसने ९ अक्तूबर (१४ ज़िल्क़ाद) को अजीतसिंह के नाम फ़रमान, ख़िलअत, तथा पुरस्कार भेजा।[९९]

बृहस्पतिवार, २८ नवम्बर (५ मुहर्रम, ११३० हि.) को बादशाह को पता चला कि अजीतसिंह ने बुधवार, ६ नवम्बर (१२ ज़िल्हिज) को जोधपुर से दिल्ली के लिये प्रस्थान कर दिया है। सोमवार, ३० दिसम्बर (७ सफ़र) को अजीतसिंह के मेड़ता पार करने का समाचार उसे मिला। शनिवार, ८ फ़रवरी, सन् १७१८ ई० (१८ रबीउल-अव्वल) को अजीतसिंह ने खींवसी के द्वारा एक सौ अशर्फ़ियाँ तथा दो सौ

९५. मीरात. ३७७।

९६. राजरूपक ४९४।

९७. जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष ६, खण्ड १, ४३; रोजनामचा. १९९; [illegible] भाग १, १७०।

९८. रोजनामचा. २२६।

मुन्तख़ब-उल-लुबाब (ख़फ़ी ख़ाँ भाग २, ७९२ व ७९३; शिवदास (११९) मआसिर (१७५) में भी लिखा है कि अजीतसिंह ने सैयदों का पक्ष लिया था। अजितोदय (सर्ग २५, श्लोक २२-९) तथा राजरूपक. (९२४-५) में लिखा है कि कुतुबुल्मुल्क ने महाराजा अजीतसिंह को पत्र लिखा था और सहायता देने की प्रार्थना की थी।

९९. जयपुर अख़बारात, वर्ष ६, खण्ड १, ११४ व १४४।

मुहरें बादशाह को नजर करवाई।[१००] जब अजीतसिंह दिल्ली से कुछ दूरी पर रह गया तो मंगलवार, १५ जुलाई (२७ शाबान) को पुनः अजीतसिंह के नाम फ़रमान भेजा गया। अगस्त के मध्य (शव्वाल के आरम्भ) में अजीतसिंह दिल्ली के निकट पहुँच गया। यह समाचार पाकर सोमवार, १८ अगस्त, (२ शव्वाल) को इतिक़ाद ख़ां को अजीतसिंह के लिए जड़ाऊ कमरपटका तथा फ़रमान आदि देकर उसे राजधानी में लाने का आदेश दिया गया।[१०१] इस प्रकार अजीतसिंह को जोधपुर से दिल्ली पहुँचने में लगभग आठ महीने लग गये। सम्भवतः इतना अधिक समय उसने इस कारण लगाया कि वह दिल्ली जाने के लिए विशेष उत्सुक न था।

बुधवार, २० अगस्त (४ शव्वाल) को जब अजीतसिंह मल्हूनशाह के बाग़ में ठहरा था तो इतिक़ाद ख़ां बादशाह द्वारा भेजी गई भेंट लेकर अजीतसिंह के पास गया। सम्भवतः इसी समय बादशाह ने अजीतसिंह को एक फ़रमान भी भेजा था, जिसमें जोधपुर व मुग़ल दरबार के बीच कई पीढ़ियों से चली आ रही मित्रता पर बल दिया गया था और भविष्य में भी शाही सहयोग का आश्वासन दिया था। इतिक़ाद ख़ां महाराजा से मिला और उसने उससे अगले दिन बादशाह से भेंट करने के लिए कहा। परन्तु अजीतसिंह को फ़र्रुख़सियर की बातों पर विश्वास न था, अतः उसने कहा कि जब तक अब्दुल्ला ख़ां उसके साथ दरबार में नहीं जायेगा तब तक बादशाह से नहीं मिलेगा। इतिक़ाद ख़ां ने अनेक प्रकार से अजीतसिंह को समझाया, परन्तु इसका कोई परिणाम न निकला।[१०२] सम्भवतः इसी समय अजीतसिंह ने अन्य शर्तें भी रक्खीं। उसने कहा कि उसके स्वागत के लिए कुछ बड़े-बड़े सरदार भेजे जायँ, उसके सवार पद में उन्नति की जाय, इनाम में जागीर दी जाय और माही मरातिब तथा राजराजेश्वर की उपाधि दी जाय।[१०३]

इतिक़ाद ख़ां ने बादशाह के पास जाकर सब बातें सुनाईं। सम्भवतः फ़र्रुख़सियर अभी तक यही समझता था कि महाराजा उसकी सहायता के लिए जोधपुर से आ रहा है। अब स्थिति स्पष्ट हो जाने पर स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए अथवा महाराजा को सन्तुष्ट करके अपनी ओर करने के विचार से उसने अपने वज़ीर अब्दुल्ला ख़ां को यह संदेश भेजा कि वह अगले दिन दरबार में उपस्थित हो और महाराजा को भी इस बात की सूचना देकर दरबार में आने के लिये कहे।[१०४]

---

१००. वही वर्ष ६, खण्ड २, ६१ व १७८; वर्ष ७,३३।
१०१. वही, भाग २१ वर्ष ७, ७५, ७९-८०।
१०२. रोजनामचा. १९९; फरमान, नं. २७, रा. पु. वी.।
कामवर. (४२९) ने इतिकाद खां के भेंट करने की तिथि ३० अगस्त (१४ शव्वाल) स्वीकार की है, परन्तु मिर्जा मुहम्मद के उल्लेख को ठीक मानना अधिक उचित है।
ख्यात. (भाग २, १७०) में खांनेदौरां तथा कोटा के महाराव भीमसिंह को महाराजा के पास भेजना स्वीकार किया गया है। राजरूपक (४९८) के अनुसार जब अजीतसिंह सराय अलाहवर्दी की सराय पर पहुँचा तो सैयद अब्दुल्ला खां उससे मिला और दोनों के बीच जयसिंह तथा मुगलों के विरुद्ध मित्रता हो गई। परन्तु फारसी ग्रन्थों को ही मान्यता दी गई है।
१०३. मुतफर्रिक अहलकारान, नं. ३१३, रा. पु. बी.।
१०४. रोजनामचा. २००; इरविन-भाग १, ३४९।

बृहस्पतिवार, २१ अगस्त (५ शव्वाल) को इतिक़ाद ख़ाँ तथा खानेदौराँ महाराजा को लाने के लिये गये। क़ुतुबुलमुल्क भी इस दिन दरबार में उपस्थित हुआ। महाराजा के मन में बादशाह के प्रति अविश्वास इतना अधिक था कि वह पग-पग पर रुक जाता था। सर्वप्रथम क़िले के द्वार पर पहुँचते ही वह रुक गया, और जब उसे विश्वास हो गया कि अब्दुल्ला ख़ाँ अन्दर उपस्थित है तब वह किले में प्रविष्ट हुआ। दीवाने-आम के द्वार पर पहुँचकर उसने पुनः आगे जाने से इन्कार कर दिया। इतिक़ाद ख़ाँ और खानेदौराँ ने बड़ी कठिनाई से उसे आगे बढ़ने के लिये प्रेरित किया। पुनः दीवाने-खास के द्वार पर पहुँचकर तो वह अड़ ही गया। तब क़ुतुबुलमुल्क स्वयं वहाँ आया और उस का हाथ पकड़ कर उसे अन्दर ले गया।[१०५]

भेंट के समय अजीतसिंह ने बादशाह को एक हज़ार एक सौ मुहरें तथा पाँच हज़ार रुपया निछावर किया और तीन हाथी पेशकश में दिये। बादशाह यद्यपि मन ही मन महाराजा के व्यवहार से असन्तुष्ट था, तथापि उसने उदारता का प्रदर्शन करके उसे अपनी ओर मिलाने का एक प्रयत्न और किया। उसने महाराजा को सात हजार ज़ात, सात हज़ार सवार, एक हजार सवार, दो अस्पाका मनसब तथा एक करोड़ पचास लाख दाम इनाम में दिये। पुनः पुरस्कार में एक हज़ार सवार तथा एक करोड़ दाम की वृद्धि की गई। 'राजराजेश्वर' की उपाधि जोधपुर राज्य के इतिहास में प्रथम बार अजीतसिंह को प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त जड़ाऊ सिरपेच, जड़ाऊ ख़ंजर, दो घोड़े, एक हाथी, माहीमरातिब, तथा छः थान पुरस्कार में मिले। अजीत सिंह के साथियों को भी ख़िलअतें मिलीं।[१०६]

बादशाह की इस उदारता का प्रभाव राजराजेश्वर अजीतसिंह पर तनिक भी न पड़ा। सम्भवतः हुसैन अली के आक्रमण के बाद से अजीतसिंह का सम्पर्क सैय्यद भाइयों से बना हुआ था, और उनके समर्थक नाहर ख़ाँ ने धीरे-धीरे महाराजा के मन में बादशाह के प्रति गहरा अविश्वास उत्पन्न कर दिया था। फलतः दिल्ली पहुँचने पर वह बादशाह पर विश्वास न कर सका। धीरे-धीरे अब्दुल्ला ख़ाँ से उसकी घनिष्टता बढ़ती गई। बादशाह से भेंट करने के उपरान्त अगले लगभग बीस दिन तक न तो अजीतसिंह दरबार में आया न अब्दुल्ला ख़ाँ। परस्पर एक दूसरे के घर दोनों आते-जाते रहे। ८ सितम्बर (२३ शव्वाल) को अजीतसिंह क़ुतुबुलमुल्क के घर गया और उसने महाराजा को दो घोड़े, दो थान पारचा, तथा एक तलवार देकर उसका मान बढ़ाया। उनके दूत प्रायः एक दूसरे के घर जाते आते रहे।[१०७] इस प्रकार धीरे-धीरे उनकी मित्रता पक्की होती गई।

---

१०५. रोजनामचा. २००; इरविन. भाग १, ३४९-५०।
अजितोदय. (सर्ग २९, श्लोक १-३७); राजरूपक (५०१-२); दानेश्वर (२३७) में भी अजीतसिंह के बादशाह से भेंट करने का वर्णन है।

१०६. जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, भाग २१, वर्ष ७, ८१; ख्यात भाग २, २००-१; रोजनामचा. २००-१; खफी खाँ. भाग २, ७९३; मआसिर-१७५; सीयर ११६; राजरूपक ५०२-३; दानेश्वर. २३७।

१०७. रोजनामचा. २०१ जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, भाग २१, वर्ष ७, १००। राजरूपक (५०३-४); अजितोदय. (सर्ग २९, श्लोक ४८-५१) में अजीतसिंह व कुतुबुलमुल्क की मैत्री बढ़ने का उल्लेख है।

अजीतसिंह तथा वजीर अब्दुल्ला खां की बढ़ती हुई मित्रता से फ़र्रुख़सियर शंकित हो उठा, और उसने अपने उच्चाधिकारियों को भेज-भेज कर दोनों को दरवार में आने के लिये प्रेरित किया। सर्वप्रथम इतिक़ाद ख़ां इस कार्य के लिये नियुक्त किया गया। परन्तु वह महाराजा को वादशाह की ओर से आश्वस्त न कर सका। तव अफ़ज़ल ख़ां ने प्रयत्न किये, परन्तु उसे भी सफलता नहीं मिली। अन्त में सरबुलन्द ख़ां और ख़ानेदौरां को यह कार्य सौंपा गया। यह दोनों अजीतसिंह और अब्दुल्ला ख़ां से मिले और उन्हें समझा-बुझाकर दरवार में आने के लिये तैयार कर लिया। बुधवार, १० सितम्बर (२५ शव्वाल) को वे दोनों पुन: अजीतसिंह के शिविर में गये और यह तय हुआ कि अगले दिन वह अब्दुल्ला के साथ दरवार में उपस्थित होगा।[१०८] वृहस्पतिवार, ११ सितम्वर (२६शव्वाल) को अजीतसिंह क़ुतुबुलमुल्क के घर गया। निश्चित योजनानुसार वहीं पर सरबुलन्द ख़ां और, ख़ानेदौरां भी आ गये। यह दोनों व्यक्ति एक ही हाथी पर आगे-आगे चले और उनके पीछे दूसरे हाथी पर महाराजा व वजीर दरवार की ओर गये।[१०९] अजीतसिंह ने भेंट के समय वादशाह को आठ घोड़े पेशक़श नजर किये। वादशाह ने उसे ख़ास ख़िलअत, एक जड़ाऊ कलंगी व एक मोतियों की माला दी।[११०]

---

१०८. रोजनामचा. २०१; जयपुर अखवारात: फर्रुखसियर, भाग २१, वर्ष ७, १०१। ख्यात (भाग २, २७०) व दानेश्वर (२३७) में १० सितम्बर के स्थान पर ११ सितम्बर (आश्विन वदि. १३) की तिथि स्वीकार की गई है। परन्तु समकालीन इतिहासकार मिर्जा मुहम्मद और अखवारात को ही प्रामाणिक मानना उचित है।

१०९. रोजनामचा २०२-३; कामवर-४३०; ख्यात भाग २, १७०-१; दानेश्वर-२३८। दानेश्वर व ख्यात के अनुसार अजीतसिंह व अब्दुल्ला खां लौटती वार एक ही हाथी पर वैठे थे। उन्हें एक साथ वैठता देखकर ऊदावत अमरसिंह कुशलसिंहोत (नीवाज का) सम्भवत: महाराजा की सुरक्षा के विचार से चंवर करने के निमित्त हाथी के हौदे के पीछे जा वैठा। इसी समय से सरदारों के पीछे वैठने की प्रथा चल पड़ी। इन ग्रन्थों में लिखा है कि वादशाह ने अजीतसिंह को इसी समय गुजरात की सूवेदारी दी थी जो ठीक नहीं है। गुजरात कुछ महीनों के वाद दिया गया था।

११०. जयपुर अखवारात. फर्रुखसियर, भाग २१, वर्ष ७, १०२; कामवर ४३० ख्यात. भाग २, १७०; दानेश्वर २३८।

रोजनामचा (२०३) में लिखा है कि क़ुतुबुलमुल्क के कहने पर वादशाह ने अजीतसिंह को वीकानेर दिया था। इरविन (भाग १, ३५१) ने भी इसे स्वीकार किया है। परन्तु अन्यत्र कहीं ऐसा उल्लेख नहीं है, न अखवारात में ही इसे स्वीकार किया गया है। ऐसी स्थिति में इस कथन की प्रामाणिकता में संदेह है। यदि ऐसा होता तो अजीतसिंह वीकानेर पर तुरन्त अधिकार करता, पर ऐसा नहीं किया गया।

पाउलेट (४७) ने लिखा है कि सन् १७१६ ई. में अजीतसिंह ने सुजानसिंह को पकड़ने का एक प्रयत्न किया था। उसने व्यास दीपचन्द की अध्यक्षता में लगभग पांच सौ सैनिक भेजे। यह दल अजीतसिंह के राजकुमार उत्पन्न होने की खुशी में भेंट व वधाई लेकर गया था। महाराजा ने इन्हें गुप्त आदेश दिया था कि यदि अवसर मिले तो राजा को पकड़ लाना अन्यथा भेंट देकर लौट आना। इस समय सुजानसिंह केवल थोड़े से व्यक्तियों के साथ शिकार के लिए गया था। एक जैन साधु सृपुज्जा को आन्तरिक प्रेरणा से विदित हुआ कि महाराजा का जीवन संकट में है। उसने सुजानसिंह को संदेश भेजा कि जोधपुर वाले उसकी घात में हैं। तव राजा तुरन्त किले में लौट गया। थोड़ी ही देर वाद जोधपुर का दल आया व भेंट देकर लौट गया। अजीतसिंह का आंतरिक उद्देश्य असफल रहा। ओझा. (ओझा. भाग ५, खण्ड १, १९९; भाग ४, खण्ड २, ५६८-९) ने भी इसका उल्लेख किया है। परन्तु वादशाह ने बीकानेर का अधिकार अजीतसिंह को सौंपा हो, इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

इस प्रकार फ़र्रुख़सियर ने बार-बार प्रयत्न किया कि अजीतसिंह उसके विरोधी सैयद भाइयों का साथ छोड़ दे, परन्तु महाराजा पर उसके इन प्रयत्नों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। चूंकि अजीतसिंह की पिछले कई दिनों से सैयद अब्दुल्ला खां के साथ घनिष्ठता थी, अतः सम्भवतः उसी के प्रभाव से अजीतसिंह के हृदय में बादशाह के प्रति अविश्वास दिनप्रतिदिन बढ़ता गया था। इसके साथ ही वह स्पष्ट देख रहा था कि फ़र्रुख़सियर अस्थिर मति का व्यक्ति है, और किसी भी व्यक्ति के प्रभाव में आकर बिना सोचे समझे कुछ भी कर बैठता है। बादशाह की इस दुर्बलता के कारण उसके सहयोगियों की संख्या दिनप्रतिदिन कम होती जा रही थी और सैयद भाइयों की शक्ति बढ़ती जा रही थी। सम्भवतः यही कारण था कि महाराजा ने बादशाह का पक्ष नहीं लिया।

अजीतसिंह को पुरस्कार, मनसब व पदवी देकर भी जब फ़र्रुख़सियर उसे अपनी ओर न मिला सका तब उसने उसे क़ैद करने का निश्चय किया। एक दिन वह शिकार पर गया और लौटती बार क़ुतुबुलमुल्क के घर जाने का निश्चय किया, जो उन दिनों बीमार था। योजना यह थी कि चूंकि अजीतसिंह का घर मार्ग में आता है, अतः वह निश्चय ही भेंट आदि लेकर रास्ते में उपस्थित होगा, इसलिये उसी समय उसे पकड़ लिया जायेगा। उधर अजीतसिंह को सम्भवतः बादशाह की योजना का पता चल गया अतः वह उस दिन पहले से ही अब्दुल्ला ख़ां के घर चला गया। बादशाह को जब यह समाचार मिला तो वह अपने षड्यंत्र की असफलता पर खीझ उठा। यद्यपि शाही अधिकारी बादशाह के आने की सूचना देने के लिये वज़ीर के घर जा चुके थे, और वह बादशाह के स्वागत के लिये द्वार पर खड़ा था, तथापि बादशाह ने उसके घर जाने से इन्कार कर दिया और सीधा महल में चला गया।[१११] सम्भवतः इस

---

१११. खफ़ी खां भाग २, ८०२-३; सीयर. १२२।

रोजनामचा (२११) के अनुसार बादशाह २० सितम्बर, सन् १७१८ ई० को (६, ज़िल्काद, १९३० हि०) को शिकार पर गया था। इस ग्रन्थकार ने इस घटना को साधारण रूप में दिया है, षड़यन्त्र नहीं बताया है। इरविन (भाग १, ३५३-४) का भी यही मत है। परन्तु बादशाह को दोष-मुक्त नहीं किया जा सकता। यदि उनके मन में पाप न होता तो वह अब्दुल्ला खां के घर जाने का विचार न छोड़ता। वह कई बार अजीतसिंह को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न कर चुका था। कुतुबुलमुल्क के घर उसे इसका सहज ही एक अन्य अवसर मिलता। सम्भवतः बादशाह के मन में संदेह उत्पन्न हो गया था कि महाराजा को उसके षड़यन्त्र का पता चल गया है।

राठौड़ा (६१); दानेश्वर (२३८); ख्यात—(भाग २, १७१) में इस घटना से पूर्व भी एक बादशाह द्वारा अजीतसिंह को मारने के एक प्रयत्न का वर्णन है। इनमें लिखा है कि एक बार बादशाह ने दावत दी जिसमें एक स्थान खोखला रक्खा गया तथा ऊपर चादर बिछा दी गयी। यह निश्चित हुआ कि इसी स्थान पर अजीतसिंह को बैठाया जायेगा और जब वह गिर जायेगा तो उसे कैद कर लिया जायेगा। परन्तु महाराजा की पुत्री इन्द्रकुंवर ने उसे सूचना दे दी। फलतः वह सावधान हो गया तथा निश्चित स्थान पर नहीं बैठा। प्रस्तुत घटना के विषय में ख्यातकार ने लिखा है कि बादशाह ने शिकार के बहाने महाराजा की हवेली पर आक्रमण करने का निश्चय किया था। अब्दुल्ला खां को इसका पता चल गया और वह लगभग २० हजार सवार लेकर महाराजा के डेरे पर चला गया। तब बादशाह ने विचार छोड़ दिया। अजितोदय (सर्ग २७, श्लोक १-५; सर्ग २७, श्लोक १२-३) में भी ऐसे प्रयत्नों का उल्लेख है।

महाराजा ने सीकदार दयालदास को एक पत्र लिखा था (ग्लोरीज, परिशिष्ट ब ६, ११४-५) जिसमें उसने बताया है कि बादशाह ने जयसिंह तथा मिर्जा (?) की सलाह से उसे मारने के कई प्रयत्न किये हैं। अतः इस घटना को सत्य मानना ही उचित जान पड़ता है।

घटना का परिणाम यह हुआ कि अजीतसिंह के मन में बादशाह के प्रति अविश्वास और बढ़ गया और वह अब्दुल्ला खाँ का अन्तरंग साथी बन गया और अगले वर्षों में दिल्ली की राजनीति में जो भी परिवर्तन हुये उनमें अजीतसिंह का प्रमुख हाथ रहा।

अजीतसिंह की शक्ति इस समय तक बहुत बढ़ चुकी थी। फलतः वे सभी शाही पदाधिकारी, जो फ़र्रुख़सियर से असन्तुष्ट थे, उससे अच्छा सम्बन्ध बनाये रखना हितकर समझते थे। इन्हीं दिनों इतिक़ाद खाँ (मुहम्मद मुराद काश्मीरी) को उच्च पद देने के कारण ख़ानेदौराँ तथा सरबुलन्द खाँ फ़र्रुख़सियर से अप्रसन्न हो गये, और शुक्रवार, १२ सितम्बर (२७ शव्वाल) को अजीतसिंह के डेरे पर जाकर उससे मिले। अजीतसिंह ने भी उनसे अच्छा सम्बन्ध रखना उचित समझा और उन्हें घोड़ा, सिरपेच, हाथी देकर उनका सम्मान किया। दो दिन बाद १४ सितम्बर (२६ शव्वाल) को वह स्वयं भी ख़ानेदौरां के घर गया। ख़ानेदौरां ने उसे एक हाथी, पाँच घोड़े, सात पारचा, एक जड़ाऊ तलवार तथा एक जड़ाऊ खंजर भेंट किया।[११२]

स्थिति इतनी गम्भीर हो चुकी थी कि अजीतसिंह और अब्दुल्ला खाँ बादशाह की ओर से सदैव आशंकित रहते थे और उनका जीवन भी संकट मुक्त न था। फलतः उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया। अब्दुल्ला खाँ ने बहुत से नये सैनिकों की भर्ती की। फ़र्रुख़सियर इस सूचना से चिन्तित हो उठा। इसी समय सैयद हुसैन अली खाँ के मरहठा सैनिकों के साथ दक्षिण से आने का समाचार भी उसे मिला। अब बादशाह मित्रता के लिए विशेष उत्सुक हो उठा। इसी उद्देश्य से १७ नवम्बर, सन् १७१८ ई० (५ मुहर्रम, ११३१ हि०) को वह कुतुबुलमुल्क के घर गया और उसने सुलह की बातचीत आरम्भ की। फलस्वरूप अगले ही दिन १८ नवम्बर (६ मुहर्रम) को अजीतसिंह व अब्दुल्ला खाँ दोनों दरबार में आये और दोनों पक्षों ने मेल जोल के वायदे किये।[११३] बादशाह अजीतसिंह की शक्ति से इतना भयभीत हो गया था कि उसने महाराजा को सन्तुष्ट रखने का पूरा प्रयत्न किया। ८ दिसम्बर (२६ मुहर्रम) को जब शाही तोपख़ाने के बीका (टीका) हज़ारी नामक एक सरदार के अधीनस्थों का किसी बात पर अजीतसिंह के सैनिकों से मतभेद हो

---

११२. जयपुर अखबारात फर्रुख़सियर, भाग २१, वर्ष ७, १०३ व १११; सतीशचन्द्र १३६।

इसके बाद अजीतसिंह का सम्बन्ध उन सभी शाही कर्मचारियों से अच्छा रहा जो बादशाह से असन्तुष्ट थे। कुछ दिन बाद जब सरबुलन्द खाँ को काबुल की सूबेदारी पर नियुक्त किया गया और उसने उस ओर प्रस्थान किया तो २६ जनवरी, सन् १७१९ ई० १६ (रबीउलअव्वल, ११३१ हि०) को महाराजा अपने अन्य साथियों के साथ शहर से बाहर नमक की मण्डी के पास उससे मिलने गया था। (रोज़नामचा २३६; कामवर ४३५–६; इरविन. भाग १, ३७०)।

११३. ख़फ़ी खाँ. भाग २, ८००; स्कॉट १५६; सीयर ११८; अजितोदय, सर्ग २७, श्लोक ७–११।

सीयर में लिखा है कि बादशाह ने अजीतसिंह को भेजकर अब्दुल्ला खाँ से मैत्री की थी; परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि अजीतसिंह स्वयं ही बादशाह से अप्रसन्न था।

गया और नगर में युद्ध होने लगा तो फ़र्रुख़सियर ने तत्काल ख़ुसरोनामगार, गाज़ीउद्दीन खाँ बहादुर, सैयद कुली खाँ, सैयद नजमुद्दीन अली खाँ आदि को भेजकर शान्ति स्थापित करवाई। बादशाह ने तुरन्त ही जफ़र खाँ बहादुर को अजीतसिंह के पास भेजकर उसे शान्त करवाया। फ़र्रुख़सियर के इस प्रयत्न के फलस्वरूप अजीतसिंह तथा बादशाह के सम्बन्ध ठीक रहे, और अगले ही दिन अजीतसिंह अब्दुल्ला के साथ दरबार में गया और दोनों ने मुहरें निछावर कीं।[114] शुक्रवार, १३ दिसम्बर (१ सफ़र) को शिकार से लौटते समय अब्दुल्ला खाँ के साथ बादशाह अजीतसिंह के घर गया। इसके बाद महाराजा दरबार में आता जाता रहा।[115] मंगलवार, २३ दिसम्बर (११ सफ़र) को अजीतसिंह के नाम एक फ़रमान जारी हुआ जिसके अनुसार उसे पुराना मनसब तथा जोधपुर राज्य पुनः दिया गया। पाँच दिन बाद २८ दिसम्बर (१६ सफ़र) को अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी दूसरी बार दी गई, और इसके साथ ही उसे कमरपटका, जड़ाऊ सिरपेच, घोड़ा व हाथी इनाम में दिया गया।[116]

इस प्रकार बादशाह के प्रयत्नों के फलस्वरूप अजीतसिंह व अब्दुल्ला खाँ दरबार में आने-जाने लगे। सम्भव था कि अजीतसिंह तथा फ़र्रुख़सियर के बीच धीरे-धीरे सौहार्द्र बढ़ जाता, परन्तु कुछ ही दिन बाद हुसैन अली खाँ दक्षिण से वापस आ गया और राजधानी के निकट पहुँचा तो मंगलवार, १० फ़रवरी (१ रबीउस्सानी) को अब्दुल्ला खाँ, अजीतसिंह और कोटा का महाराव भीमसिंह उससे मिले। परस्पर विचार-विमर्श हुआ। हुसैनअली खाँ बादशाह के साथ किसी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहता था और उसे सिंहासन से हटाने के पक्ष में था। अजीतसिंह भी सम्भवतः ऐसा ही विचार रखता था। बादशाह की दुर्बलता उसे स्पष्ट हो चुकी थी और सम्भवतः उसे यह आशा थी कि फ़र्रुख़सियर के बाद उसकी और अधिक प्रगति हो सकेगी। अन्त में यह निश्चय किया गया कि बादशाह से दीवाने-खास की दरोगाई तथा तोपखाने पर पूर्णाधिकार तथा जयसिंह को जयपुर

---

११४. कामवर. ४३४; इरविन भाग १, ३६३।

११५. इस अवसर पर अजीतसिंह ने बादशाह को नौ थान वस्त्र, एक जड़ाऊ तलवार, एक जड़ाऊ जमधर, एक सिरपेच, एक तुर्रा, सात घोड़े, चार हाथी व एक लाख रुपये नकद भेंट किया। बादशाह ने लौटते हुये उसे खिलअत, जड़ाऊ सिरपेच व दो घोड़े इनाम दिये। अगले ही दिन अजीतसिंह अब्दुल्ला खाँ के साथ दरबार में गया।

कुछ दिन बाद १८ दिसम्बर-(६ सफ़र) को वह पुनः दरबार गया तो उसे वस्त्र, तुर्रा व जड़ाऊ सिरपेच मिला।

(रोज़नामचा. २१६-२० व २२५; कामवर. ४३४ व ४३५; राजरूपक. ५०७; टाड. भाग २, ६७; इरविन : भाग १, ३६३)।

११६. फरमान नं० ६, रा० पु० बी०; रोजनामचा २२७; कामवर ४३४; इरविन-भाग १, ३६४।

अजितोदय (सर्ग २७, श्लोक १११) में भी लिखा है कि अजीतसिंह व अब्दुल्ला खाँ दोनों साथ-साथ दरबार में जाया करते थे।

वापस भेजने की मांग की जाय। जब वह इन बातों को स्वीकार करले और सभी स्थानों पर विश्वसनीय व्यक्ति नियुक्त हो जायें, तभी हुसैन अली ख़ाँ नगर में प्रवेश करे।[११७]

इस समय तक अजीतसिंह तथा अब्दुल्ला ख़ाँ ने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली थी। हुसैनअली ख़ाँ के दक्षिण से ससैन्य वापस आने से इन लोगों की शक्ति बहुत बढ़ गई। दूसरी ओर फ़र्रुख़सियर दिन प्रतिदिन शक्तिहीन होता जा रहा था। खानेदौरां, सरबुलन्द ख़ाँ, मीर जुमला आदि उसके सभी सहयोगी धीरे-धीरे उसका साथ छोड़ चुके थे। इस स्थिति में सैयद भाइयों की उक्त सभी मांगों को स्वीकार करने के अतिरिक्त बादशाह के पास दूसरा कोई मार्ग नहीं था। बादशाह की स्वीकृति मिल जाने के बाद यह निश्चित किया गया कि शनिवार, १४ फ़रवरी (५ रबी-उस्सानी) को महल व तोपख़ाने में अजीतसिंह और सैयदों के सैनिक नियुक्त किये जायेंगे और उनके बाद हुसैनअली ख़ाँ बादशाह से भेंट करेगा। निश्चित तिथि को अजीतसिंह और अब्दुल्ला ख़ाँ सवेरे ही दरबार में गये और उन्होंने सभी शाही अधिकारियों को हटाकर अपने व्यक्तियों को नियुक्त कर दिया। नव प्रबन्ध हो जाने पर एक प्रहर दिन बीतने के उपरान्त हुसैनअली ख़ाँ आकर बादशाह से मिला। भेंट के समय केवल दोनों सैयद भाई तथा अजीतसिंह ही उपस्थित थे। बातचीत रात तक चलती रही। परन्तु मतभेद इतने बढ़ चुके थे कि बात सुलझना दुष्प्राप्य था।[११८] इस वार्ता का परिणाम केवल इतना हुआ कि फ़र्रुख़सियर तीन दिन के लिये और मुग़ल-सम्राट बना रहा।

दीवाने-ख़ास, शयनागार तथा अदालत की कुंजियाँ भी मँगवा लीं गईं और क़िले व महल के समस्त द्वार वन्द कर दिये गये तथा महल के चारों तरफ़ कड़ी निगरानी रक्खी गई। अजीतसिंह के राजपूत, सैयद वन्धुओं की सेना तथा चूड़ामन जाट के साथी स्थान-स्थान पर नियुक्त किये गये और उन्हें सदैव सचेत रहने की आज्ञा दी गई। अजीतसिंह, अब्दुल्ला ख़ाँ तथा भीमसिंह सारी रात क़िले में रहे और रात्रि भर विचार-विमर्श करते रहे। यद्यपि क़ुतुबुलमुल्क की इच्छा फ़र्रुख़सियर को ही वादशाह वनाये रखने की थी परन्तु अन्य सभी उसको क़ैद करने के पक्ष में थे। महाराजा अजीतसिंह ने भी फ़र्रुख़सियर को हटाने की सलाह दी। वादशाह ने जव क़ुतुबुलमुल्क की माँगें मानने तथा हरम से वाहर आने से इन्कार कर दिया तो अब्दुल्ला ख़ाँ ने भी फ़र्रुख़सियर को गद्दी से उतारना स्वीकार कर लिया।[१२०] वादशाह को हरम से वाहर लाने का प्रयत्न किया गया, परन्तु वह सम्भवतः वहीं अपने को सुरक्षित समझता था, अतः वह वाहर नहीं आया। तव कुछ व्यक्ति ज़वरदस्ती अन्दर घुसे और उसे वलपूर्वक वाहर लाकर क़ैद कर लिया गया।[१२१] इस प्रकार मुग़ल-सम्राट् को गद्दी से हटाने में अजीतसिंह का मुख्य हाथ रहा।

---

१२०. रोज़नामचा २४० व २४३–४; मआसिर ६३४, ७११ व १०५६; ख़फ़ी ख़ाँ. भाग २, ८०७, ८०६; स्कॉट. १६०–१; अहवाल. १४३ व व १४५ अ; शिवदास २५ व; ख्यात. भाग २, १७२–३; दानेश्वर. १३६–४०।

शिवदास (२५व व २६अ) ने लिखा है कि इसी बीच फ़र्रुख़सियर ने अजीतसिंह की सहायता प्राप्त करने के लिये एक प्रयत्न किया था। वादशाह ने स्वयं एक पत्र अजीतसिंह को लिखा जिसमें वताया कि यमुना नदी की ओर किले का पूर्वी भाग अरक्षित है। उसने अनुरोध किया कि वह उसके प्राणों की रक्षा के लिये अपने थोड़े से व्यक्ति उस ओर भेज दे। यह पत्र पाकर महाराजा ने तुरन्त उत्तर भेज दिया कि अव अवसर नहीं रहा। ऐसा भी विचार है कि अजीतसिंह ने इस पत्र को ज्यों का त्यों अब्दुल्ला खाँ के पास भेज दिया, जिसने चूड़ामन जाट को किले के पूर्वी भाग की सुरक्षा के लिये तुरन्त नियुक्त कर दिया।

ख्यातों (ख्यात. भाग २, १७३; दानेश्वर. २४०; राठौड़ां ६१) के अनुसार वादशाह ने अपने नौकर के हाथ एक फूल की माला अजीतसिंह को भेजी और उसमें एक पत्र रक्खा जिसमें महाराजा से सहायता माँगी थी। भंडारी खींवसी, महाराव भीमसिंह तथा राजा राजसिंह ने महाराजा को इस अवसर का लाभ उठाने की सलाह दी और कहा कि वादशाह को सहायता देने से शासन की वागडोर उसके हाथ में आ जायेगी। परन्तु अजीतसिंह ने कुतुबुलमुल्क की सहायता तथा उसे दिये हुये वचन का स्मरण करके इसे स्वीकार नहीं किया।

वादशाह अजीतसिंह की प्रवृत्ति से पूर्णतया परिचित था, अतएव उक्त घटनाएँ विश्वसनीय प्रतीत नहीं होतीं।

१२१. खफी खाँ भाग २, ८१३-४; शिवदास २६ अ; ख्यात. भाग २, १७३; अजितोदय सर्ग २७, श्लोक ४६-८; ग्लोरीज़-परिशिष्ट व ६, ११४।

इस गड़वड़ी में शहर में विभिन्न प्रकार की अफवाहें उड़ीं और यह समाचार भी फैला कि अजीतसिंह तथा कुतुबुलमुल्क में मतभेद हो गया है, तथा महाराजा ने अपने दामाद की रक्षा के लिये अब्दुल्ला खाँ को मार दिया है। वादशाह के कुछ समर्थक इस वात को सुनकर किले की ओर वढ़े भी; किन्तु शीघ्र ही उन्हें सत्यता विदित हो गई। (रोज़नामचा २४२; स्काट १६१; इरविन भाग १, ३८४)।

फ़र्रुख़सियर को क़ैद करने के वाद अजीतसिंह तथा सैयद भाइयों एवं उनके अन्य साथियों के बीच नए बादशाह के चुनाव के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ। सबने वेदार-दिल को ही इसके लिए उपयुक्त समझा। इस शाहज़ादे को लाने के लिए अजीतसिंह, के भंडारियों तथा-कुतुबुलमुल्क के मीरतुज़ुक क़ादिरदाद ख़ाँ को कुछ सैनिकों के साथ भेजा गया। परन्तु हरम की स्त्रियों ने भयभीत होकर द्वार वन्द कर लिए। वहुत कहने पर भी जब वे द्वार खोलने के लिए तैयार न हुईं तो इन लोगों ने अब्दुल्ला ख़ाँ की आज्ञा से द्वार तोड़ डाले और रफ़ीउद्दरजत को ही पकड़ लिया। इस प्रकार, १८ फ़रवरी (९ रवीउस्सानी) को रफ़ीउद्दरजत को एक ओर से अब्दुल्ला ख़ाँ ने और दूसरी ओर से महाराजा अजीतसिंह ने पकड़ कर तख़्त-ए-ताऊस पर वैठाकर वादशाह घोषित कर दिया।[१२२]

महाराजा अजीतसिंह ने नए वादशाह को एक हजार मुहरें निछावर कीं और रफ़ीउद्दरजत ने उसे खिलअत दी। इसी दिन महाराजा अजीतसिंह, महाराव भीमसिंह तथा राजा रतनसिंह, के कहने पर वादशाह ने जज़िया कर हटाने की घोषणा की।[१२३] अजीतसिंह के प्रभाव से तीर्थों पर से भी कर हटा दिया गया।[१२४] रफ़ीउद्दरजत ने अजीतसिंह को पहले की भाँति गुजरात का सूवा दे दिया और महाराजा के नायव के पहुँचने तक मेहरअली ख़ाँ को वहाँ का कार्यभार सम्भालने का आदेश दिया। शुक्रवार, २० मार्च (१० जमादिउलअव्वल) को नाहर ख़ाँ को अहमदावाद का नायव सूवेदार नियुक्त किया गया।[१२५]

रफ़ीउद्दरजत के सिंहासनारोहण के लगभग दो महीने वाद शनिवार, १८ अप्रेल (९ जमादिउस्सानी) को फ़र्रुख़सियर की हत्या करवा दी गई।[१२६] फ़र्रुख़सियर के पतन में पूरी तरह से सहायक वने रहने के कारण अजीतसिंह जनसाधारण में काफ़ी वदनाम हो गया था लोग उसे 'दामाद-ए-कुश' (दामाद की हत्या करने वाला)

---

१२२. रोजनामचा २४४-५; इरविन. भाग १, ३८८-९।

१२३. खफी खाँ भाग २, ८१७; कामवर ४४२; मीरात ३८८; सीयर १३७; स्काट १६४ वीर. भाग २, ९५५; टॉड भाग १, ३२५; इरविन भाग १, ४०४; ग्लोरीज़, परिशिष्ट व ८, १११; परिशिष्ट व ६, ११४।

१२४. ग्लोरीज, परिशिष्ट-व ८, १११; परिशिष्ट-व ६, ११४।

१२५. मीरात ३८६ व ३८७; खफी खाँ भाग २, ८१९; वीर. भाग २, ८४२।

१२६. इरविन भाग १, ३९२।

फर्रुखसियर की मृत्यु किस प्रकार हुई इस सम्बन्ध में मतभेद हैं; परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि अजीतसिंह की सहमति इस कार्य में अवश्य रही होगी। वह कई वर्षों से सैयद वन्धुओं का सहयोगी था, अतः उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य करना उनके हित में ठीक न होता।

फर्रुखसियर की मृत्यु के वाद जनसाधारण में हुई अजीतसिंह की वदनामी से भी इसी मत की पुष्टि होती है।

है। यह समाचार अब्दुल्ला ख़ाँ को मंगलवार, ४ अगस्त (२६ रमज़ान) को मिला। परन्तु दोनों सैयद भाइयों में भी परस्पर अविश्वास था। अब्दुल्ला खाँ को भय हुआ कि आगरा के किले की संचित सामग्री पर हुसैनअली अपना अधिकार कर लेगा। अत: उसने तेज़ी से आगरा जाने का निश्चय किया। रविवार, १६ अगस्त (११ शव्वाल) को अजीतसिंह ओल नामक स्थान पर मथुरा से लौट कर शाही सेना में मिल गया। २२ अगस्त (१७ शव्वाल) को यह दल विद्यापुर नामक स्थान पर पहुँचा।[१३६] तीन दिन बाद मंगलवार, २५ अगस्त (२० शव्वाल) को इसी स्थान पर हुसैनअली ख़ाँ नेकुस्सियर को लेकर आ पहुँचा। कुछ ही दिन उपरान्त विद्यापुर में ही ७ या ८ सितम्बर (४ या ५ ज़िल्क़ाद) को रफ़ीउद्दौला की मृत्यु हो गई।[१३७]

बादशाह की मृत्यु का समाचार दिल्ली से दूसरे शाहज़ादे के आने तक छिपाया गया और शाहज़ादा मुहम्मदशाह के विद्यापुर पहुँचने पर, रफ़ीउद्दौला की मृत्यु की घोषणा की गई और शुक्रवार, १८ सितम्बर (१५ ज़िल्क़ाद) को नये बादशाह का सिंहासनारोहण हुआ। महाराजा अजीतसिंह ने इस अवसर पर एक हज़ार अशर्फ़ी तथा एक हज़ार रुपये निछावर किए और उसे ख़ास-खिलअत दी गई।[१३८]

इसी बीच सवाई जयसिंह आगरा के विद्रोहियों की सहायता के लिये आम्बेर से चल कर आगरा से लगभग अस्सी मील दक्षिण-पश्चिम में टोडा (टोंक) नामक स्थान तक आ पहुँचा था। उसकी इस विद्रोही प्रवृत्ति को कुचलना नितान्त आवश्यक था। सोच विचार के बाद यह निश्चित किया गया कि बादशाह अजमेर की दरगाह जाने के बहाने से सीकरी होता हुआससैन्य उधर बढ़े ताकि विशाल शाही सेना देख कर जयसिंह पीछे हट जाय।[१३९]

अजीतसिंह सम्भवत: अब मुग़ल दरबार की राजनीति से दूर जाकर अपने देश के शासन प्रबन्ध को देखना चाहता था। अत: उसने सैयद बन्धुओं के समक्ष

---

१३६. कामवर. ४५०; इरविन. भाग १, ४२६-३०।

ख्यात (भाग २, १७३); सूरजप्रकाश (८४-५) में भी लिखा कि अजीतसिंह बादशाह व सैयदों के साथ आगरा गया था।

१३७. इरविन. भाग १, ४३० व ४३१।

१३८. कामवर. ४५३; इरविन. भाग २, १।

ख्यात (भाग २. १७४); मूंदियाड़ (२५६-७); दानेश्वर. (२४१); के अनुसार नये बादशाह के पद के लिये शाहजादे को लाने के लिये राजा रत्नसिंह तथा भंडारी खींवसी को भेजा गया था। जब ये लोग दिल्ली पहुँचे और शाहजादे को माँगा तो मुहम्मदशाह की माँ ने अपने पुत्र को भेजने में आपत्ति की, तब भंडारी ने शाहजादे की सुरक्षा का आश्वासन देने के सम्बन्ध में एक कौल पंजा लिख कर दिया। परन्तु इसकी पुष्टि किसी फारसी के इतिहास से नहीं होती।

१३९. इरविन. भाग २, २।

प्रस्ताव रखखा कि यदि वे राजी हों तो वह स्वयं जाकर जयसिंह को समझाये। अब्दुल्ला ख़ाँ तथा हुसैनअली खाँ भी जयसिंह की समस्या को जल्दी हल करना चाहते थे। अतः उन्होंने अजीतसिंह की बात को स्वीकार कर उसे अहमदाबाद की सूबेदारी दी और सोमवार, ५ अक्तूबर (२ ज़िल्हिज) को उसे खास ख़िलअत सिरपेच, जड़ाऊ जमधर, मोतियों की माला, अरबी घोड़ा, सुनहरे साज सहित हाथी देकर वतन के लिये विदा कर दिया।[१४०] मार्ग में अजीतसिंह जयसिंह से मिला और उससे बातचीत की। समझाने बुझाने पर जयसिंह ने आम्बेर लौटना स्वीकार कर लिया और रविवार, १ नवम्बर (२९ ज़िल्हिज) को टोडा से आम्बेर के लिये रवाना हुआ।[१४१] जयसिंह के साथ अजीतसिंह ने जो शर्तें तय कीं, उनके अनुसार जयसिंह को अजीतसिंह की लड़की से विवाह करने के लिये भेंट के रूप में बीस लाख रुपया दिया गया[१४२] और साथ ही सोरठ की फौजदारी भी दी गई। शेष अहमदाबाद पूर्ववत् अजीतसिंह के ही अधिकार में रहा।[१४३]

उधर जयसिंह की समस्या को सुलझाने का भार अजीतसिंह को सौंपकर सैयद बन्धु आश्वस्त हो गये और मुहम्मदशाह को लेकर दिल्ली की ओर लौट चले। दिल्ली की ओर जाते हुये मार्ग में २६ अक्तूबर (२३ ज़िल्हिज) को अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी सौंप दी गई।

---

१४०. शिवदास. ३२-ब; मीरात. ३९३; राजरूपक. ५१८; ख्यात. भाग २, १७५; मूंदियाड़ २५९; अजितोदय. सर्ग २७, श्लोक ५७; बांकीदास. ३८; गुटका, ३११-ब; दानेश्वर. २४२।

१४१. कामवर. ४५५; शिवदास. ३२-ब; इरविन. भाग २, ४।

इरविन (भाग २, ३) के अनुसार अजीतसिंह आगे गया, परन्तु उसे मार्ग में ही विलम्ब हो गया। परन्तु यह ठीक नहीं लगता। कामवर ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि अजीतसिंह जयसिंह से मिला था। राजस्थानी ग्रन्थों व ख्यातों में लिखा है कि सैयद भाई जयसिंह पर आक्रमण करना चाहते थे। जयसिंह ने यह समाचार पाकर अपने वकील को अजीतसिंह के पास भेजकर यह प्रार्थना की कि वह उसकी रक्षा करे। तब अजीतसिंह ने सैयद भाइयों से आम्बेर पर आक्रमण न करने का अनुरोध किया। परन्तु सैयदों ने उसे प्रलोभन दिया कि वह अपना एक राजकुमार उनके साथ भेज दे। वह आम्बेर विजय करके वहाँ का अधिकार उसे सौंप देंगे। परन्तु अजीतसिंह ने इसे स्वीकार नहीं किया और उन पर दबाव डालकर आम्बेर पर आक्रमण करने की योजना समाप्त करवा दी। (ख्यात. भाग २, १७५; मूंदियाण. २५७ ८; राजरूपक ५१७-८; अजितोदय. सर्ग २८, श्लोक २१-८; सूरजप्रकाश. ८६-७; दानेश्वर. २४२) यह विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य प्रतीत होता है, परन्तु इससे इस बात की पुष्टि होती है कि जयसिंह व सैयद बन्धुओं के बीच सन्धि कराने में अजीतसिंह का प्रमुख हाथ था।

१४२. इबरतनामा. ११९-अ; इरविन. भाग २, ४।

१४३. खफी खाँ. भाग २. ८३८; इरविन. भाग २, ४।

खफी खाँ ने लिखा है कि संधि की मुख्य शर्त यह थी कि अजीतसिंह उन परगनों पर से हाथ हटा ले, जिन पर उसने वतन के निकट होने के कारण अधिकार कर लिया है। सम्भवतः खफी खाँ का आशय सोरठ की फौजदारी लिये जाने से ही है।

१४४. कामवर. ४५५; खफी खाँ. भाग २, ८३८; राजरूपक. ५१८; अजितोदय. सर्ग २७, श्लोक ५७; गुटका. ३११-ब ३१२-अ; इरविन. भाग २, ४।

जोधपुर की ओर जाते हुये मार्ग में आम्बेर के निकट कालाधर नामक स्थान पर अजीतसिंह ने जयसिंह से पुनः भेंट की।[१४५] और उसे अपने साथ जोधपुर चलने के लिये तैयार कर लिया। मार्ग में मनोहरपुर में गौड़ कन्या से विवाह करके अजीतसिंह जोधपुर पहुँचा और उसने जयसिंह के निवास के लिये सूरसागर में प्रबन्ध किया।[१४६] बृहस्पतिवार, १६ मई (ज्येष्ठ सुदि ६, सम्वत् १७७७) को अजीतसिंह ने अपनी कन्या सूरजकुँवर का विवाह धूमधाम से जयसिंह से कर दिया।[१४७] सम्भवतः पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करके अजीतसिंह अपने और जयसिंह के आपसी वैमनस्य को दूर करना चाहता था। परन्तु उसे अपना ध्येय प्राप्त न हो सका। उसकी सफलता के दिन सम्भवतः पूरे हो चुके थे। अगले ही वर्ष मुगल राजनीति में इतने क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये कि अजीतसिंह का महत्त्व धीरे-धीरे घटने लगा।

सन् १७१२-६ ई० तक का समय अजीतसिंह के जीवन का चरमोत्कर्ष का समय था। अजीतसिंह ने इस काल में अपने पैतृक राज्य के अतिरिक्त गुजरात और अजमेर के महत्त्वपूर्ण सूबे प्राप्त कर लिये थे। सैयदों से मित्रता करने के उपरान्त दिल्ली की राजनीति पर उसका प्रभाव क्रमशः गहरा होता गया। सैयद-बन्धु भी उसके सहयोग एवं सलाह के इच्छुक रहा करते थे। मुगल-सिंहासन पर एक के बाद एक तीन शासकों को बैठाने में उसका प्रमुख हाथ था। जजिया और तीर्थ-कर हटवाना तथा इन्द्रकुँवर को जोधपुर वापस भेजना उसके प्रभाव की आश्चर्यजनक सफलताएँ थीं। मेवाड़ तथा जयपुर के दो प्रमुख राजपूत राज्य इस समय राजनीति की दौड़ में उससे कहीं पीछे रह गये थे। निःसन्देह वह इस समय का सर्वाधिक प्रभावशाली राजपूत शासक था।

---

१४५. बालमुकुन्दनामा. पत्र ५ व ६।

१४६. ख्यात. भाग २. १७५; मूंदियाड़. २५८; अजितोदय. सर्ग २८, श्लोक ३७; राजरूपक. ५९१ टॉड. भाग २, ६८।

वंश भाग ४, ३०७५ के अनुसार अजीतसिंह मुहम्मदशाह से विदा होकर सीधा जोधपुर जाता था। वहाँ उसके सरदारों ने उसे सलाह दी कि जयसिंह से मित्रता रखनी चाहिए। सैयदों का क्या भरोसा? तब उसने जयसिंह को विवाह के लिए आमंत्रित किया। परन्तु यह ठीक नहीं है।

१४७. ख्यात. भाग २. १७६; मुंदियाड़. २५८; अजितोदय. सर्ग २८, श्लोक ३-३३; राजरूपक. ५९१-२१; वीर. भाग २, ८४२; वंश. भाग ४, ३०७५-६; दानेश्वर. २४२; टॉड भाग २, ६२।

ब्याह बही नं० १ रा. पु. बी. में इस विवाह का विस्तृत वर्णन है।

७

अन्तिम वर्ष (सन् १७१६ ई० से सन् १७२४ ई०)

(क) गुजरात की द्वितीय सूबेदारी : (सन् १७१६–२१ ई०)—

राजराजेश्वर महाराजा अजीतसिंह को बादशाह फ़र्रुखसियर ने रविवार, २८ दिसम्बर, सन् १७१८ ई० (१६ सफ़र, ११३१ हि०) को गुजरात की सूबेदारी दूसरी बार दी थी। रफ़ीउद्दरजत तथा रफीउद्दौला के शासनकाल में इस नियुक्ति की पुष्टि हुई और मुहम्मदशाह ने अपने राज्यत्व के प्रारम्भ में ही उसे पुनः इस सूबे का अधिकार दे दिया। इस पूरी अवधि में महाराजा की ओर से मेहरअली ख़ाँ इस सूबे का नायब तथा नाहर खां दीवान रहा।[1]

बादशाह मुहम्मद शाह से विदा होकर जब अजीतसिंह जोधपुर पहुँचा तो उसने अप्रेल, सन् १७२० ई० (जमादिउस्सानी, ११३२ हि०) में भंडारी अनूपसिंह रघुनाथोत को अपना नायब बनाकर अहमदाबाद भेजा।[2] भंडारी अनूपसिंह जब शाही बाग़ के निकट पहुँचा तो मेहरअली खाँ विभिन्न शाही अधिकारियों तथा प्रान्तीय मनसबदारों को साथ लेकर उसके स्वागत के लिए गया। अहमदाबाद आकर अनूपसिंह भद्र नामक क़िले में रहने लगा और उसने सूबे के प्रशासन पर अपना पूरा-पूरा नियंत्रण स्थापित करने का प्रयत्न किया। मेहरअली खाँ सम्भवत: अपना अधिकार छिन जाने से मन ही मन अप्रसन्न था। कुछ ही दिनों बाद उसका अनूपसिंह के साथ आय-व्यय के हिसाब को लेकर मतभेद हो गया। धीरे-धीरे यह मनमुटाव इतना बढ़ गया कि मेहरअली को अपने जीवन की भी चिन्ता होने लग गई। फलतः वह अहमदाबाद छोड़कर अपने अधीन खंभात नामक बन्दरगाह में चला गया।[3]

उधर मुग़ल-दरबार की राजनीति में इन दिनों क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। फ़र्रुख़सियर की मृत्यु के बाद सैयद बन्धु बहुत बदनाम हो गये थे। बादशाह भी उनके प्रभुत्व से अपने को मुक्त करना चाहता था। फलतः निज़ामुलमुल्क व मुहम्मद अमीन ख़ाँ आदि उनके विरोधियों का महत्त्व बढ़ रहा था। मई, सन् १७२० ई० में निज़ामुलमुल्क मालवा छोड़कर दक्षिण की ओर चला गया और ६ जून को

---

१. मीरात. ३६० व ३६३।

२. मीरात. ३६६; ख्यात. भाग २, १७५; मूंदियाड़. २५६; गूटका, ३११ ब, ३१२ अ; बांकीदास. ३८; कविराजा. १२।

३. मीरात. ३६६।

मरम्मत होनी चाहिए। यह समाचार पाकर बादशाह ने इस कार्य के लिये पाँच हजार रुपया देने का आदेश दिया था। परन्तु इस धन का कुछ उपयोग हुआ हो, इसमें सन्देह है, क्योंकि नाहर खाँ तथा अनूपसिंह ने प्रान्तीय कोष से क्रमशः ८५००० रुपये व ४६२३८३ रु. लेकर यह कह दिया था कि यह राशि सुरक्षा के लिये नियुक्त की गई सेना पर व्यय की गई है।[९]

अजीतसिंह का नायब अनूपसिंह अभिमानी व अत्याचारी व्यक्ति था। वह भली-भांति जानता था कि महाराजा उस पर पूरा-पूरा विश्वास करता है। वह यह भी देख रहा था कि मुगल दरबार में अव्यवस्था फैली है। इन दिनों सैयद बन्धु अपनी रक्षा का अन्तिम प्रयत्न कर रहे थे और उनके विरोधी उनका अन्त करने पर तुले हुए थे। अनूपसिंह ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया और जनता से अनुचित वसूली करना आरम्भ कर दिया तथा साधारण नागरिकों को झूठे अपराधों के लिये दंड देने लगा। फलस्वरूप साधारण जनता का जीवन अत्यन्त कष्टमय हो गया था और वे उससे बहुत असन्तुष्ट हो गये।[१०] यह स्थिति देखकर कपूरचन्द भन्सोली नामक एक प्रसिद्ध नगर-सेठ ने भंडारी से निवेदन किया कि वह जनता पर अत्याचार न करें। परन्तु अनूपसिंह ने न केवल उसकी प्रार्थना की अवहेलना की, वरन् कपूरचन्द को अपने मार्ग में बाधक समझकर उसे हटाने की चेष्टा भी करने लगा। यह देखकर कपूरचन्द ने भद्र किले में जाना-आना बन्द कर दिया और अपनी सुरक्षा के लिये लगभग पाँच सौ व्यक्तियों को उसने अपने घर के चारों ओर नियुक्त कर दिया। जब कभी वह घर से बाहर जाता था तो अपनी सुरक्षा के लिये कुछ व्यक्तियों को साथ रखता था। जब कभी उसे यह समाचार मिलता कि मारवाड़ के सैनिक किसी नागरिक पर अत्याचार कर रहे हैं तो वह अपने कर्मचारी भेजकर उस असहाय व्यक्ति की सहायता भी करता था। इस प्रकार अनूपसिंह तथा कपूरचन्द के बीच तनाव बढ़ता गया। यह स्थिति लगभग एक महीने तक चलती रही। अन्त में अनूपसिंह ने कपूरचन्द को मारने के लिए ख्वाजा बख्श नामक एक व्यक्ति को नियुक्त किया। एक दिन यह व्यक्ति एक दरबारी के वेष में कपूरचन्द के नाम कुछ पत्र लेकर रात्रि के समय उसके घर गया। संयोगवश उस समय कपूरचन्द के रक्षक वहां उपस्थित नहीं थे। जब वह पत्र पढ़ने लगा तो ख्वाजा बख्श ने उसे मार डाला और स्वयं दीवार फांदकर भाग गया। कपूरचन्द के सहयोगी उसका शव लेकर अन्तिम संस्कार के लिए ले गये। चूँकि नगर का द्वारा बन्द था, अतः उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी। भंडारी के व्यक्तियों ने इन लोगों की विवशता का लाभ उठाकर

९. मीरात. ३६६।
१०. सीयर. २२७-८; स्कॉट १८५।
मुन्तखब-उल-लुबाब (खफी खाँ. भाग २, ९३६-७); तारीख-ए-मुज्जफरी (२१३) व दानेश्वर (२४४) में लिखा है कि अजीतसिंह ने इस सूबे में गो-वध बन्द करवा दिया था व अन्य मुस्लिम विरोधी कार्य कर रहा था और मुसलमानों के धन-जन को हानि पहुँचा रहा था। सम्भव है अनूपसिंह के प्रशासन का एक अंग यह भी रहा हो।

उन्हें इतना तंग किया कि वे लोग शव छोड़कर भाग गये। सुबह हो जाने पर भी लगभग साढ़े तीन घंटे तक शव वहीं पड़ा रहा और अन्त में भंडारी की आज्ञा मिल जाने पर ही उसका अन्तिम संस्कार किया जा सका।[११] सम्भवतः इस घटना के परिणामस्वरूप जनसाधारण में अनूपसिंह की अप्रियता और भी बढ़ गई।

उधर मेहर अली ने जब से अहमदाबाद छोड़ा था, अपनी स्थिति से असन्तुष्ट था और पहले की भाँति अहमदाबाद के दीवान का पद पाना चाहता था। अनूपसिंह की अप्रियता का समाचार उसे मिल रहा था और थोड़े ही दिन बाद नवम्बर, सन् १७२० ई० का जब सैयद भाइयों का पतन हो गया तो उसने यह घोषित करवा दिया कि उसे सूबे का नायब नियुक्त कर दिया गया है। इसके साथ ही एक बड़ी सेना लेकर उसने खंभात से अहमदाबाद के लिये प्रस्थान कर दिया। सम्भवतः उसका अनुमान था कि हुसैनअली खाँ और अब्दुल्ला खाँ का प्रभुत्व समाप्त हो जाने से महाराजा की शक्ति भी इतनी क्षीण हो गई है कि उसका नायब घबराकर अहमदाबाद छोड़ देगा। मेहरअली पतवा नामक स्थान पर आकर रुका इस समाचार से सूबे के अधिकारियों में अव्यवस्था फैल गई। समस्त सूचना पाकर अनूपसिंह ने मेहरअली को अधिकार सौंपना स्वीकार नहीं किया और कहा कि जबतक शाही सनद न आ जाय वह उसकी बात पर विश्वास नहीं कर सकता। अन्त में बातचीत के उपरान्त यह तय हुआ कि शाही सनद आने तक कार्य पूर्ववत चलता रहे। सम्भवतः मेहर अली को आशा थी कि चूँकि मुग़ल दरबार में अब सैयदों का प्रभुत्व नहीं रहा है, अतः बादशाह का निर्णय उसके पक्ष में ही होगा। परन्तु आशा के विपरीत शाही सनद भंडारी के पक्ष में आ गई।[१२] सम्भवतः इसका कारण यह था सैयदों के पतन के बाद मुहम्मदशाह पर उसके वज़ीर मुहम्मद अमीन खाँ का प्रभुत्व स्थापित हो गया था जिसने सैयदों के मित्रों से भी अच्छा सम्बन्ध बनाये रक्खा था।[१३] सम्भवतः अमीन खाँ सब लोगों को सन्तुष्ट करके अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता था। इसीलिये उसने अजीतसिंह को छेड़ना भी उचित नहीं समझा। फलस्वरूप अहमदाबाद का प्रशासन पूर्ववत् चलता रहा और अनूपसिंह वहीं बना रहा।

कुछ दिनों बाद अप्रेल-मई, सन् १७२१ ई० (रजब. ११३३ हि०) मुहम्मद शाह ने अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटा दिया। उसके स्थान पर मुईज्जुद्दौला हैदरकुली बहादुर ज़फ़रजंग को वहाँ का सूबेदार और नाहर खाँ के स्थान पर ज़फ़र क़ुली खाँ को दीवान नियुक्त किया गया। काज़िम बेग को शुजात खाँ की पदवी देकर

---

११. मीरात ३६८-९; ख्यात. भाग २, १७५-६; मूंदियाड़. २५६।

मूंदियाड़ के अनुसार अनूपसिंह ने कपूरचन्द को कैद कर लिया था और वह बन्दीगृह में ही मरा था; परन्तु मीरात. और ख्यात. दोनों में हत्या करवाने का उल्लेख है। इसी को स्वीकार किया गया है।

१२. मीरात. ४०१।

१३. इरविन. भाग २, १०४-५।

अहमदाबाद की नायब सूबेदारी प्रदान की गई। हैदरक़ुली ने अहमदाबाद के समस्त मनसबदारों को लिखा कि अनूपसिंह व नाहरखाँ को पकड़ने में शुजात ख़ाँ की सहायता करें।[१४]

अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटाये जाने के लिये अनूपसिंह का कुशासन मुख्यत: उत्तरदायी था। इसके अतिरिक्त बादशाह को इस निश्चय के लिये सम्भवत: उसके दरबारियों ने भी उत्तेजित किया होगा। दरबार में इन दिनों हैदरक़ुली ख़ाँ का प्रभाव बढ़ रहा था जोकि सैयदों का विरोधी था। सन् १७१८ ई० में अब्दुल्ला ख़ाँ ने हैदरक़ुली को गुजरात के दीवान तथा सूरत के मुत्सद्दी के पद से हटाया था।[१५] अत: गुजरात में पुन: अधिकार पाने का प्रयत्न करना उसके लिये स्वाभाविक था। चूँकि अजीतसिंह को हटाकर हैदरक़ुली को अहमदाबाद की सूबेदारी सौंपी गई, अत: यह अनुमान लगाना उचित जान पड़ता है कि सम्भवत: महाराजा को हैदरक़ुली के प्रभाव के कारण ही अहमदाबाद की सूबेदारी से हटाया गया था।

उधर अजीतसिंह को सूबेदारी से हटाये जाने का समाचार जब अहमदाबाद पहुँचा तो अनूपसिंह के लिये नियन्त्रण रखना कठिन हो गया। इन्हीं दिनों मेहरअली ख़ाँ के एक नौकर तथा एक मारवाड़ी सैनिक में झगड़ा हो गया जिसमें मेहरअली का नौकर घायल हो गया। फलत: बाजार के बीच अनूपसिंह तथा मेहरअली के सैनिकों में युद्ध हो गया। साधारण जनता भी चूँकि अनूपसिंह के अत्याचारों से थक चुकी थी, अत: उन लोगों ने भी मेहरअली से सैनिकों का ही साथ दिया। जब यह समाचार मेहरअली को मिला तो वह भी सेना लेकर आगे बढ़ा और उसने भद्र नामक क़िले को घेर लिया। साधारण नागरिकों ने भी उसका साथ दिया। यह देखकर मारवाड़ के सैनिक घबरा गए। अनूपसिंह ने देखा कि नगर के सभी मार्गों में जनता के आक्रमण का भय है, अतएव उसने क़िले से बाहर निकलना उचित नहीं समझा और बाग की ओर की खिड़की से साबरमती नदी की ओर कूदकर शाही बाग में जा छिपा और अवसर पाकर वहां से भाग गया। उधर मेहरअली बलपूर्वक किले में प्रविष्ट हो गया। इसके साथ के लोगों ने राठौड़ों का सारा सामान खूब लूटा। अनूपसिंह ने क़िले के पूर्व की ओर जो नवीन इमारत बनवाई थी उसे भी मेहरअली की आज्ञा से तोड़ डाला गया।[१६] इस घटना के दूसरे ही दिन गोधरा के नायब

---

१४. मीरात ४०२; खफी खाँ. भाग २, ६३८; सीयर. २२७-८; मआसिर. १७५; तारीख-ए-मुजफरी. ३१३; स्कॉट. १८५; वीर-भाग २ ११४६; मूंदियाड़. २५६।

शिवदास. (७७ ब) ने लिखा है कि अजीतसिंह को शुक्रवार, ४ अगस्त (२१ शव्वाल) को पदच्युत किया गया था और इर्विन. (भाग २, १०८) ने २ अक्तूबर की तिथि स्वीकार की है। परन्तु इस सम्बन्ध में मीरात-ए-अहमदी के उल्लेख को ही सत्य मानना अधिक उचित है।

१५. सतीशचन्द्र. १७१।

१६. मीरात. ४०२-३।

फ़ौजदार सफ़दर मुहम्मद खाँ तथा नाहर खाँ के बीच किसी धन सम्बन्धी बात पर तनाव हो गया और युद्धारम्भ हो गया, जिसमें परास्त होकर नाहर खाँ ने एक लाख रुपया देना स्वीकार कर लिया और अहमदाबाद छोड़ दिया। सिद्धपुर नामक स्थान पर वह अनूपसिंह से मिला और फिर दोनों मित्रों ने साथ-साथ यात्रा की।[१७]

इस प्रकार अहमदाबाद का सूबा अजीतसिंह के हाथ से निकल गया। अजीतसिंह ने इसका कोई विरोध नहीं किया और न इसे पुनः लेने का ही कोई प्रयत्न किया। सम्भवतः इसका कारण यह था कि इन्हीं दिनों निज़ामुलमुल्क ने दिल्ली की विज़ारत स्वीकार कर ली थी।[१८] मुगल–दरबार में अपने साथियों के पतन के उपरान्त अजीतसिंह ने सम्भवतः इस प्रबल व्यक्ति से शत्रुता मोल लेना उचित नहीं समझा।

(ख) अजीतसिंह का अन्तिम विद्रोह (सन् १७१९–२३ ई०):—

बादशाह मुहम्मदशाह ने अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी सोमवार, २६ अक्तूबर, सन् १७१९ ई० (२३ ज़िल्हिज, ११३१ हि०) को दी थी।[१९] अगले वर्ष जब महाराजा जोधपुर पहुँचा तो सम्भवतः अप्रेल के महीने में उसने भंडारी विजयराज को अपना नायब नियुक्त करके अजमेर भेजा[२०] अजमेर पहुँचकर विजयराज ने वहाँ के निवासियों पर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। सम्भव है गुजरात के नायब अनूपसिंह की भाँति उसने भी वहाँ अनुचित वसूली की हो। इसके साथ ही उसने सूबे में हिन्दुत्व के प्रसार का प्रयत्न भी किया।[२१] इस समाचार से मुगल-सम्राट् का अजीतसिंह से अप्रसन्न होना स्वभाविक ही था। नवम्बर, सन् १७२० ई० में सैयद भाईयों का पतन हो जाने के बाद मुगल दरबार में उनके विरोधी दल का प्रभुत्व बढ़ रहा था। सम्भव है इस दल के लोगों ने मुहम्मदशाह को अजीतसिंह के विरुद्ध और उत्तेजित किया हो। परिणाम यह हुआ कि केवल दो वर्ष की सूबेदारी के

---

१७. मीरात. ४०३।

सीयर (२२९) में लिखा है कि नाहर खाँ ने बिना युद्ध के ही अहमदाबाद छोड़ दिया था; जो ठीक प्रतीत नहीं होता।

१८. खफी खाँ. भाग २, ९३७; वीर. भाग २, ११५९।

१९. पु. क्रमाङ्क २१३

२०. गुटका ३११ ब ३१२ अ; जोधपुर राठौड़ां री ख्यात. ७ ब।

२१. खफी खाँ. भाग २, ९३६–७; सीयर. २२८; स्कॉट. १८५; तारीख–ए–मुजफ्फरी. ११३; दानेश्वर. २४४।

राजरूपक (५२२–४); ख्यात (भाग २,१७८); मूंदियाड़. (२६०); सूरजप्रकाश. (९४); अभयविलास. (१२ अ ब); वीर (भाग २, ८४२); अजितोदय. (सर्ग २९, श्लोक ६८; सर्ग ३०, श्लोक १–९); चतुर कुलचरित्र (१२३); दानेश्वर. (२४३); आदि लगभग सभी राजस्थानी ख्यातों व ग्रन्थों में लिखा है कि सैयदों के पतन का समाचार सुनकर अजीतसिंह ने ससैन्य अजमेर पर आक्रमण कर दिया था और वहाँ अपना अधिकार स्थापित करके वहाँ हिन्दुत्व का प्रसार किया था। परन्तु इस कथन को पूरा-पूरा स्वीकार नहीं किया जा सकता। क्योंकि महाराजा ने अजमेर पर आक्रमण नहीं किया था वरन् बादशाह ने ही उसे दो वर्ष पूर्व वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया था।

बाद ४ अगस्त, सन् १७२१ ई० (२१ शव्वाल ११३३ हि०) को महाराजा को अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया गया। बादशाह ने उसके स्थान पर मुजफ्फर अली खाँ को सूबेदार नियुक्त किया और सिरपेच, खिलअत व हाथी देकर अजमेर के लिये विदा किया।[२२]

इस प्रकार अजीतसिंह के अधिकार से गुजरात व अजमेर--दोनों सूबे निकल गये। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों सूबों से हटाये जाने के लिये मुख्य रूप से मुगल दरबार की परिवर्तित स्थिति उत्तरदायी थी। पिछले कुछ वर्षों की राजनीति के नीति-निर्धारक सैयद भाइयों का पतन हो चुका था। मुहम्मदशाह भली-भाँति जानता था कि अजीतसिंह सैयदों का दाहिना हाथ रह चुका था और पिछले कुछ वर्षों से उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया था। अतः सैयद बन्धुओं का दमन करने के उपरान्त उसकी शक्ति कम करने का प्रयत्न स्वाभाविक ही था। इसके साथ ही गुजरात व अजमेर साम्राज्य के महत्वपूर्ण सूबे थे, अतएव इनका विरोधी दल के निकटतम सहयोगी के अधिकार में रहना हितकर न था। सम्भवतः अजीतसिंह को दोनों सूबों से विलग करने का मूल कारण यही था।

अजीतसिंह को जब यह समाचार मिला कि उसे अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया गया है तो वह उद्विग्न हो उठा। अहमदाबाद का सूबा उससे पहले ही वापस लिया जा चुका था। अब वह शान्त न रह सका उसने बादशाह का विरोध करने का निश्चय किया और अपने राज्य के प्रमुख सरदारों तथा लगभग तीन हजार सवारों को लेकर अजमेर की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने अनासागर के महलों में पड़ाव डाला और अपना अधिकार दृढ़ करने का प्रयत्न किया। बाद में उसने यह घोषित करवा दिया कि सभी व्यापारी तथा कारीगर शान्तिपूर्वक अपना कार्य करें और किसी प्रकार का भय मन में न रक्खें। उसने वहाँ के क़ाजियों और मौलवियों को बुलाकर सांत्वना दी और उनके धार्मिक कार्यों में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन दिया। इतना ही नहीं, उनकी मस्जिदों की मरम्मत के लिए उसने धन भी दिया। इसके उपरान्त उसने विभिन्न शाही अधिकारियों तथा अन्य प्रमुख व्यक्तियों को बुलाकर बादशाह के हाथ-पंजे का एक फ़रमान दिखाया, जो मुहम्मदशाह की माँ ने अपने पुत्र के सिंहासनारोहण के समय अजीतसिंह को दिया था, और जिसमें बादशाह ने अहमदाबाद तथा अजमेर के सूबे महाराजा को जन्म भर के लिए सौंपे थे। अजीतसिंह ने इस फ़रमान की नक़ल और अपना प्रार्थना-पत्र बादशाह की सेवा में भेजा, जिसमें लिखा कि उस फ़रमान के अनुसार यद्यपि बादशाह दोनों सूबों को उसके अधिकार में देने के लिए वचनबद्ध है, तथापि शाही आज्ञा मानकर उसने गुजरात से अपना अधिकार हटा लिया था। परन्तु अब उसे अजमेर से भी पदच्युत कर दिया गया है। यह प्रत्यक्ष रूप से उसका अपमान है। यदि वह शाही आज्ञा स्वीकार कर लेगा तो सभी लोग यह विचार करेंगे कि वह दुर्बल हो गया है, और अपनी प्रतिष्ठा को बनाए

२२. शिवदास ७७ ब; खफी खाँ भाग २, ९३६; मआसिर. १७५; मीरात. २२८; स्कॉट. १८५; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३१३।

रक्षा में असमर्थ है। इस प्रकार सर्वत्र उसकी बदनामी होगी। अतएव उसने प्रार्थना की कि अजमेर उसके अधिकार में छोड़ दिया जाय।[२३]

परन्तु उसकी इस प्रार्थना का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। बादशाह ने अजमेर के नए सूबेदार मुजफ्फर अली की सहायता के लिए शाही-कोष से छः लाख रुपया देने का निश्चय किया। चूँकि शाही-कोष में इतना धन नहीं था, अतः केवल दो लाख रुपया उसे तत्काल दिया गया और शेष किश्तों में देने का निश्चय किया गया। मुजफ्फर अली ने इस धन से नए सैनिक भर्ती करने प्रारम्भ कर दिए और शीघ्र ही उसकी सेना में लगभग बीस हजार सैनिक हो गए। परन्तु आशा के विपरीत उसे शाही-कोष से धन की अगली किश्त नहीं मिली और दिल्ली से अजमेर की ओर जाते हुए मार्ग में मनोहरपुर तक पहुँचते-पहुँचते उसका सारा रुपया खर्च हो गया।[२४]

उधर मुजफ्फर अली के ससैन्य अजमेर की ओर आने का समाचार जब अजीतसिंह को मिला तो उसने अपने बड़े लड़के अभयसिंह को मुजफ्फर अली का सामना करने के लिए भेजा।[२५]

बादशाह को जब यह समाचार मिला तो उसने मुजफ्फर अली को यह आदेश भेजा कि उसकी सहायता के लिए शाही सेना भेजी जा रही है, अतः वह मनोहरपुर में रुककर प्रतीक्षा करे।[२६] मुहम्मदशाह ने मुजफ्फर अली सहायता के लिए अकबराबाद के सूबेदार सआदत खाँ को जाने की आज्ञा भेजी। सआदत खाँ स्वयं तुरन्त राजधानी की ओर चल पड़ा और उसने अपनी सेना को भी शीघ्रातिशीघ्र पीछे आने का आदेश दिया। दिल्ली पहुँचकर उसने मुहम्मदशाह से सहायता माँगी, परन्तु वहाँ से उसे कोई सहायता न मिल सकी। फलतः उसने अजमेर जाने का विचार त्याग दिया।[२७]

शाही आज्ञानुसार मुजफ्फर अली तीन महीने तक मनोहरपुर में ही रुका रहा। इस बीच उसकी स्थिति दयनीय होती गई। उसका धन समाप्त हो चुका था, और शाही-कोष से धन मिल नहीं रहा था। फलतः वह अपने सैनिकों को वेतन देने में असमर्थ था। वेतन न मिलने के कारण उसके सैनिक बहुत परेशान थे। धीरे-धीरे स्थिति इतनी बिगड़ गई कि अपनी भूख मिटाने के लिए उन्हें अपने अस्त्र-वस्त्र भी बेचने पड़े। थोड़े ही दिनों बाद में वे भूखों मरने लगे। सेना का अनुशासन भंग हो गया। शाही सैनिकों ने निकटवर्ती दो-तीन गाँव लूट लिए और बहुत से जानवरों को

---

२३. सीयर २३०-१; तारीख-ए-मुजफ्फरी ३१५-६; स्काट १८५; मआसिर. १७५।

२४. शिवदास. ७७ ब; इरविन. भाग २, १०८-९।

२५. अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक १०-१; सूरजप्रकाश. १०२; अभयविलास. १२ ब; गुटका ३१२ ब; इरविन. भाग २, १०९।

२६. शिवदास. ७७ ब; अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक ९; इरविन. भाग २; १०९।
सीयर (२३०) व तारीख-ए-मुजफ्फरी (३१५) में लिखा है कि मुजफ्फर अली रेवाड़ी में ही रुक गया था। परन्तु शिवदास के कथन को मान्यता देना अधिक उचित है।

२७. सीयर २३१-२; स्काट. १८६; तारीख-ए-मुजफ्फरी ३१८; खफी खाँ भाग २, ९३६-७।
इरविन (भाग २, १२१) व कानूनगो (हिस्टोरिकल एसेज ६३) ने लिखा है कि मुहम्मद शाह ने ससैन्य आगे बढ़कर सआदत खाँ का मार्ग रोका था। फलस्वरूप वह वापस लौट गया।

पकड़ लिया। वे इतने से ही सन्तुष्ट न हुए, उन्होंने अपने सेनाध्यक्ष को भी घेर लिया और उसके व्यक्तिगत प्रयोग के हाथी, घोड़े तक छीन लिए। मुजफ़्फ़र अली अपनी जान बचाकर भाग निकला और आम्बेर के राजा जयसिंह की शरण में चला गया। वहाँ जाकर उसने अपनी शाही खिलअत तथा अजमेर की सूबेदारी की सनद दिल्ली वापस भेज दी।[२८]

इधर अजीतसिंह अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न कर रहा था। उसके मित्र चूड़ामन जाट ने इसी समय अपने पुत्र मोहकमसिंह की अधीनता में कुछ सैनिकों को उसकी सहायता के लिए भेजा।[२९] अजीतसिंह ने शाही सेना की अव्यवस्था का पूरा लाभ उठाया और शाही सूबेदार के पहुँचने से पूर्व ही राजकुमार आनन्दसिंह की अधीनता में सैनिकों को भेजकर सांभर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। महाराजकुमार अभयसिंह को एक विशाल सेना के साथ नारनौल पर अधिकार करने के लिए भेजा गया। अभयसिंह के साथ बारह हजार ऊँट थे जिन पर दो-दो बरक़न्दाज व तीरन्दाज बैठे हुए थे। जब यह विशाल सेना नारनौल से चालीस कोस की दूरी पर पहुँची, तो वहाँ के फ़ौजदार बायजीद ख़ाँ के नायब ने उसे रोकने का प्रयत्न किया; परन्तु वह असफल रहा और भागकर बायजीद ख़ाँ के पास चला गया। इसके पश्चात् राठौड़ सैनिकों ने नारनौल को अच्छी तरह से लूटा और फिर अलवर, तिजारा व शाहजहाँपुर को लूटते हुए वे दिल्ली से केवल सोलह मील दूर स्थित सराय अल्लाहवर्दी तक पहुँच गए। इन विजयों के कारण अभयसिंह धोंकलसिंह (उपद्रव करने वाला) के नाम से विख्यात हुआ।[३०]

---

२८. शिवदास ७७ ब ७८ अ; सीयर २३२; तारीख-ए मुजफ्फरी. ३१६; स्काट. १८७; राजरूपक ५२५-२४; अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक ११; सूरजप्रकाश १०२; अभयविलास १२ ब; गुटका ३१२ ब; टाड भाग २.६८; इरविन भाग २, १०६-१०।

राजस्थानी ग्रन्थों के अनुसार अभयसिंह को आता देखकर मुजफ्फर अली भयभीत होकर भाग गया था। परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि इन इतिहासकारों ने अभयसिंह को अधिक महत्व देने के लिये ही ऐसा उल्लेख किया है।

सीयर में लिखा है मुजफ्फर अली जयसिंह के नायब की शरण में गया था। इरविन का मत है कि जयसिंह का नायब उसकी सहायता के लिये आया था। परन्तु शिवदास के मत की पुष्टि अन्य ग्रन्थों से भी होती है और यही अधिक तर्क सम्मत प्रतीत होता है, अतः उसी को मान्यता दी गई है।

२९. राजरूपक ५५२; टाड भाग २, ७०; इरविन. भाग २, ११०; हिस्टोरिकल एसेज. ६३।

३०. शिवदास. ७६ अ व ८२ अ; स्काट १८६; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३१६-२०; रुस्तम अली. २५१ ब; राजरूपक. ५३५-६; ख्यात. भाग २, १७८; मूंदियाड़ २६०; अजितोदय. सर्ग ३; श्लोक १२ ८; सूरजप्रकाश ६५ व १०२-६; अभयविलास. १२ ब १३ अ; धानेश्वर. २४४; वार्ता १२६ ब; टॉड. भाग २, ७०; इरविन. भाग २, ११०।

सीयर (२३२) में लिखा है कि नारनौल का फौजदार देख रेख के लिये स्वयं नारनौल से बाहर निकला, और जब उसने देखा कि अभयसिंह ससैन्य आक्रमण के लिये आ रहा है तो वह अपने सम्बन्धियों सहित भाग गया। नारनौल के निवासियों ने राठौड़ों का सामना किया; परन्तु परास्त हुए और राठौड़ों ने नारनौल को बर्बरतापूर्वक लूटा। परन्तु इसकी पुष्टि अन्य किसी ग्रन्थ से नहीं होती।

अजीतसिंह की इन विजयों और लूटमार का समाचार सुनकर बादशाह ने अपने अधिकारियों से विचार-विमर्श किया। समसामुद्दौला ख़ानेदौरां का विचार था कि रिक्तकोष तथा दरबार की दलबन्दियों के कारण अजीतसिंह के विरुद्ध अभियान आरंभ करना उचित नहीं है। उसका कहना था कि चूँकि अजमेर मुसलमानों के लिए धार्मिक महत्त्व का स्थान है, और सूबे की राजधानी है, अतः अजमेर पर तो शाही अधिकार कर लेना चाहिए; परन्तु अजीतसिंह को अहमदाबाद का सूबा वापस देकर सन्तुष्ट रखना चाहिए। लेकिन मुहम्मदशाह तथा उसके अन्य उच्चाधिकारियों का मत था कि अजीतसिंह को उसके अपराधों के लिए दण्ड मिलना आवश्यक है।[३१]

परन्तु यह निर्णय लेना जितना सरल था, उसे कार्यान्वित करना उतना ही कठिन था। शाही-कोष रिक्त था, और दरबार के उच्चाधिकारियों में परस्पर सहयोग नहीं था। प्रत्येक को यह आशंका थी कि यदि वह दिल्ली से बाहर चला गया तो उसके विरोधी बादशाह पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेगें। इस स्थिति में अजीतसिंह के विरुद्ध भेजी जाने वाली सेना का नेतृत्व सम्भालने के लिए कोई भी तैयार न था। बादशाह ने यह कार्य सर्वप्रथम खाँनेदौरां को सौंपा। परन्तु वह अजीतसिंह के विरुद्ध सेना भेजने के पक्ष में नहीं था, अतः उसने विभिन्न बहाने बनाकर अजमेर जाने से इनकार कर दिया।[३२]

इसके उपरान्त हैदरकुली खाँ को अजीतसिंह के विरुद्ध जाने का आदेश दिया गया, परन्तु वह जानता था कि खानेदौरां युद्ध के विरुद्ध बादशाह के कान सदैव भरा करता है और समझाया करता है कि रिक्त-कोष, सैनिकों के असन्तोष व पारपरिक मतभेदों के बीच अजीतसिंह के विरुद्ध विजय की आशा नहीं, और यदि विजय हो भी गई तो महाराजा भागकर अपने राज्य के जंगलों व घाटियों में छिप जाएगा, वहाँ से उसे पकड़ना सम्भव न होगा। ऐसे विरोधी वातावरण में हैदरकुली ने इस कार्य से अपना हाथ खींच लेना ही उचित समझा। इसके अतिरिक्त हैदरकुली को यह भी भय था कि अजीतसिंह के विरुद्ध युद्ध काफी लम्बा होगा और शाही-कोष उसका भारवहन नहीं कर सकेगा।[३३]

अन्त में क़मरुद्दीन खाँ को यह कार्य भार सौंपा गया और उसने इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु प्रस्थान करने से पूर्व उसने कुछ ऐसी मांगे रखीं जो बादशाह को

---

३१. सीयर २३१; स्काट १८५-६; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३१७-८।

३२. सीयर. २३१; स्काट. १८६; तारीख ए-मुजफ्फरी. ३२०; शिवदास. ७९ अ; खफी खाँ; भाग २, ११०।

३३. सीयर २३०; शिवदास ७९ अ; खफी खाँ. भाग २, ९३६-७; वीर भाग २, ११४९; इरविन. भाग २, ११०।

तारीख-ए-मुजफ्फरी में लिखा है कि हैदरकुली खाँ को खानेदौरां के साथ ही नियुक्त किया गया था। स्काट (१८६) ने भी इसी का समर्थन किया है। परन्तु शिवदास तथा खफी खाँ समकालीन इतिहासकार हैं, अतः उनका मत स्वीकार करना ही अधिक उचित है।

अरुचिकर थीं। उसकी मुख्य माँग यह थी कि अब्दुल्ला खाँ और नजमुद्दीन अली खाँ को मुक्त करके उसके हवाले कर दिया जाय। इसका विरोध सभी दरबारियों ने किया, और इस प्रकार क़मरुद्दीन की यात्रा आरम्भ से पूर्व ही समाप्त हो गई।[३४]

अब बादशाह ने नुसरतयार खाँ को महाराजा के विरुद्ध जाने का आदेश दिया। वह एक विशाल सेना लेकर अजमेर की ओर रवाना हुआ, परन्तु उसके अजमेर पहुँचने से पूर्व ही दोनों पक्षों में सुलह हो गई।[३५]

महाराजा अजीतसिंह ने अकस्मात् ही मुग़ल-सम्राट् के साथ मैत्री करने का निश्चय किया। इस विचार परिवर्तन के दो सम्भावित कारण जान पड़ते हैं। प्रथम यह कि इस समय निज़ामुल्मुल्क दिल्ली के निकट पहुँच गया था, और दिल्ली की राजनीति में अब कुशल व कठोर शासन की सम्भावना दिखाई देने लगी थी।[३६] दूसरी बात यह है कि इस समय अजीतसिंह और खानेदौरां के बीच पत्र-व्यवहार होने लगा था।[३७] खानेदौरां की इस नीति के पीछे क्या उद्देश्य था, यह कहना कठिन है। सम्भवतः वह निज़ामुल्मुल्क के आने से पूर्व ही अजीतसिंह की समस्या को हल करके इसका श्रेय स्वयं लेना चाहता था अथवा यह भी हो सकता है कि वह निज़ामुल्मुल्क के विपक्ष में अपना एक दल संगठित करना चाहता था।[३८] वास्तविकता जो भी हो, अजीतसिंह ने बादशाह को एक प्रार्थना-पत्र लिखा जिसमें उसने फ़र्रुखसियर के समय से अपनी सेवाओं का उल्लेख करते हुए यह लिखा कि जब आपने मुझे अहमदाबाद और अजमेर के सूबे सौंपे, तो मैंने शाही आज्ञानुसार वहाँ का यथोचित प्रबन्ध किया। जब अहमदाबाद का सूबा मुझसे वापस लेकर, हैदरकुली को दे दिया गया, तब भी मैंने कोई विरोध नहीं किया और उसे चुपचाप अहमदाबाद का अधिकार दे दिया। अजमेर के सम्बन्ध में भी मैंने अपने अधिकारियों को लिखा था कि वे मुज़फ़्फ़र अली को अधिकार सौंप दें। परन्तु मुज़फ़्फ़र अली अजमेर तक पहुँचा ही नहीं। अतएव मेरा कोई दोष नहीं है। नारनौल व अन्य स्थानों पर मैंने मेवातियों के उपद्रव को दबाने के लिए अपने सैनिकों को भेजा था। मेरे विरोधियों ने मुझे व्यर्थ ही बदनाम किया है। आप यदि चाहें तो खोज करवा लें और मेरा दोष होने पर मुझे दण्ड दें। यदि आज्ञा हो तो मैं आपकी सेवा में उपस्थित होऊँ,

---

३४. सीयर २३३; स्काट. १८६; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३२०; शिवदास. ७६ अ; खफी खां भाग २; ९३६-७; वीर. भाग २, ११४६; इरविन. भाग ५, ११०-१।

३५. शिवदास. ७८ ब व ७६ अ; इरविन. भाग २, १११।

इन इतिहासकारों का मत है कि सुलह के बाद अजीतसिंह अजमेर छोड़कर अपने राज्य को लौट गया था। परन्तु यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जब अजमेर-युद्ध का दूसरा अध्याय आरम्भ हुआ तो अजीतसिंह जोधपुर में नहीं आया था। वह सदैव अजमेर ही रहा था और बादशाह से दूसरी सन्धि हो जाने के बाद ही जोधपुर गया था।

३६. शिवदास. ८३ ब; खफी खां. भाग २, ९३७; इरविन भाग २; १११।

३७. सीयर २३४; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३२१।

३८. सतीशचन्द्र. १८१।

अथवा यदि अनुमति दें तो जोधपुर जाकर वहाँ का शासन सम्भालूँ।[38]

अजीतसिंह का प्रार्थना-पत्र लेकर भंडारी खींवसी तथा नाहर खाँ शुक्रवार, ६ फरवरी, सन् १७२२ ई० (४ जमादिउल अव्वल, ११३४ हि०) को दरबार में पहुँचे।[40] मुहम्मदशाह को इस समय तक स्पष्ट हो चुका था कि उसका कोई भी सरदार दिल्ली से बाहर जाना नहीं चाहता है। फलस्वरूप अजीतसिंह के विरुद्ध शाही सेना नहीं भेजी जा सकती। सम्भवतः इसी कारण उसने अजीतसिंह की प्रार्थना स्वीकार कर ली और दोनों सूबों से हटाए जाने के लिए उससे क्षमा माँगते हुए उसे अजमेर का सूबा पुनः दे दिया और इस नियुक्ति के अवसर पर उसके लिए खास खिलअत, जड़ाऊ सिर पेच, एक घोड़ा व एक हाथी भेजा और साथ ही निकट भविष्य में अहमदाबाद भी देने का आश्वासन दिया।[41]

मुगल-दरबार के कुछ प्रमुख सरदारों का मत था कि अजीतसिंह के हाथ में अजमेर जैसा महत्त्वपूर्ण सूबा नहीं रहने देना चाहिए। सम्भवतः इसी कारण कुछ महीनों के बाद २८ नवम्बर, सन् १७२२ ई० को उसने नाहर खाँ को अजमेर का दीवान तथा सांभर का फौजदार बनाकर भेजा और उसे अपरिमित अधिकार भी दिए। इसके साथ ही उसके भाई रुहुल्ला खाँ को गढ़पुतली (अथवा गढ़ बीटली, आधुनिक तारागढ़) का किलेदार नियुक्त करके उसकी शक्ति को और भी बढ़ा दिया गया था। अतः नाहर खाँ ने भंडारी खींवसी को साथ लेकर अजमेर के लिए प्रस्थान किया।[42]

नाहर खाँ इससे पूर्व कई बार महाराजा के सम्पर्क में रह चुका था, अतः उसने अजीतसिंह पर विश्वास करके उसके निकट ही डेरा डाला। अजीतसिंह को अपने अधिकार में यह हस्तक्षेप सहन नहीं था। एक दिन नाहर खाँ ने बातचीत करते हुए महाराजा को कुछ कड़े वचन कह दिए। फलस्वरूप अजीतसिंह उससे अप्रसन्न हो गया और उसकी आज्ञानुसार उसके कुछ सैनिकों ने २७ दिसम्बर, सन् १७२२ ई० (२९ रबीउलअव्वल, ११३५ हि०) को प्रातःकाल नाहर खाँ के शिविर पर आक्रमण कर दिया और नाहर खाँ व रुहुल्ला खाँ—दोनों भाइयों को सोते हुए मार डाला। शाही सैनिकों ने उनका सामना किया। युद्ध में पच्चीस सैनिक मारे गए और नाहर खाँ के कई सम्बन्धी पकड़े गए। जो व्यक्ति जीवित बचे, वे भागकर जयसिंह की शरण में चले गए। राजपूतों ने उनके शिविर को अच्छी तरह लूटा।

---

३९. शिवदास. ८३ ब ८४ अ; खफी खाँ भाग २, ९३७; इरविन. भाग २, १११।

४०. कामवर. ४८०; इरविन. भाग २, १११।

इरविन ने लिखा है कि नाहर खां व भंडारी खींवसी ११ मार्च (२१ मार्च) को दिल्ली पहुँचे थे, जो ठीक नहीं है। दरबार में पहुँचकर इन दोनों ने बादशाह को सात घोड़े व हाथी भेंट किये। मुहम्मदशाह ने उन्हें जड़ाऊ सिरपेच दिया।

४१. शिवदास. ८५ अ; इरविन. भाग २, १११-२।

अजितोदय (सर्ग ३०, श्लोक २२-३) के अनुसार जयसिंह की प्रार्थना पर अजीतसिंह ने उपद्रव बन्द किये थे और शान्तिपूर्वक दो-तीन वर्ष तक अजमेर में था। परन्तु इसका समर्थन अन्यत्र कहीं नहीं होता।

४२. कामवर. ४८६. इरविन भाग २, ११२।

मुहम्मदशाह को यह समाचार सोमवार, २८ जनवरी, सन् १७२३ ई० (२ जमादिउल अव्वल ११३५ हि०) को मिला।[४३]

नाहर खां का वध करवाकर महाराजा ने मुग़ल सत्ता का प्रत्यक्ष अपमान किया था। सांभर, नारनौल, अलवर आदि स्थानों में वह अपना आतंक स्थापित कर चुका था। अजीतसिंह की बढ़ती हुई शक्ति से बादशाह की चिन्ता स्वाभाविक थी। दरबार में अजीतसिंह के विरोधियों को एक उचित बहाना मिल गया और उन्होंने बादशाह को अजीतसिंह पर आक्रमण करने के लिए भड़काया। फलतः मुहम्मदशाह ने पूरी ताकत के साथ अजीतसिंह की शक्ति को कुचलने का निश्चय किया। इस कार्य के लिए शरफ़ुद्दौला इरादतमन्द खां को नियुक्त किया गया। उसकी शक्ति बढ़ाने के लिए इसका मनसब बढ़ाकर सात हजार जात छः हजार सवार कर दिया गया और पचास हजार सैनिक उसके अधीन नियुक्त हुए। शुक्रवार, १ फरवरी (६ जमादिउलअव्वल) को उसे ख़ास खिलअत, छः पारचा, जड़ाऊ सिरपेच व ईराकी घोड़ा देकर विदा किया गया और चार दिन बाद उसकी सेना के वेतन के लिए शाही-कोष से दो लाख रुपया भी दिया गया।[४४]

इस विशाल सेना के आने का समाचार सुनकर अजीतसिंह ने भी सम्भवतः अपनी शक्ति और बढ़ाई। मुहम्मदशाह इससे और चिन्तित हुआ और उसने शनिवार, २३ मार्च (२६ जमादि उस्सानी) को राजा जयसिंह, मुहम्मद खां बंगश तथा राजा गिरधर बहादुर व अन्य बड़े-बड़े सरदारों को इरादतमन्द खां की सहायता के लिये जाने की आज्ञा दी।[४५] कुछ ही दिन बाद बुद्धवार, २७ मार्च (१रजब) को हैदरक़ुली खां को अजमेर की सूबेदारी तथा सांभर की फौजदारी पर नियुक्त करके अजीतसिंह के विरुद्ध जाने का आदेश दिया गया। शाही आज्ञानुसार हैदरक़ुली ने तुरन्त उस ओर प्रस्थान किया और नारनौल में शरफ़ुद्दौला से जा मिला।[४६]

---

४३. कामवर. ४८६; राजरूपक. ५५१; अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक. ३१-३; सूरजप्रकाश. ११२ व ११४; गुटका. ३१२ अ; टाड भाग २, ७०; इरविन. भाग २, ११२।

४४. कामवर ४८६; रुस्तमअली. २५१ ब; तारीख-ए-मुजफ्फरी ३२६-७; अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक ३४-८; राजरूपक. ५५३; दानेश्वर. २४६; जोधपुर रै राठोड़ा री ख्यात ७ ब; इरविन. भाग २, ११३।

इरविन ने लिखा है कि इरादतमंद खां को १६ फरवरी को विदा किया था; परन्तु यह ठीक नहीं है।

४५. कामवर. ४८८; रुस्तम अली. २५१ ब; खुजिस्ता कलाम. ३२, ८८ व १३०; फरमान नं. ११२ (प्रतिलिपि) रा. पु. बी.; राजरूपक. ५५३; टाड भाग २, ७०; इरविन. भाग २, ११३।

चतुरकुल चरित्र (१२३) में लिखा है कि महाराणा ने भी शाही आज्ञानुसार कुछ सेना अजीतसिंह के विरुद्ध भेजी थी।

४६. कामवर. ४८८; वारिद. १७८ ब; सीयर २४१; स्काट १८८; राजरूपक. ५५३; अजितोदय सर्ग ३०, श्लोक ४१; ख्यात-भाग २, १८०; दानेश्वर २४६; मूंदियाड़ १६३; जोधपुर रै राठोड़ा री ख्यात. ७ ब।

अजितोदय (सर्ग ३०, श्लोक ४५) के अनुसार हैदरकुली रेवाड़ी में ही इरादतमंद से जा मिला था। ख्यात (भाग २, १८०) में हैदरकुली के स्थान पर हसनकुली नाम लिखा गया है। परन्तु ये तथ्य ठीक नहीं है।

इस विशाल सेना के आने का समाचार सुनकर अजीतसिंह ने गढ़पुतली का प्रबन्ध भण्डारी विजयराज तथा ऊदावत अमरसिंह के अधिकार में दे दिया तथा स्वयं ससैन्य आगे बढ़कर मनोहरपुर में डेरा डाला। शाही सेना उससे केवल चार कोस की दूरी तक पहुँच गई। इसी समय राजा जयसिंह ने अजीतसिंह को यह संदेश भेजा की शाही सेना की शक्ति बहुत अधिक है वह विजय प्राप्त नहीं कर सकता और युद्ध में राजपूतों का व्यर्थ ही हनन होगा। अतएव उचित यही है कि वह वापस चला जाय। अजीतसिंह ने उसकी सलाह स्वीकार करली और अजमेर लौट गया और वहां से मेड़ता चला गया।[४७] अजीतसिंह के बिना लड़े जोधपुर वापस चले जाने का समाचार बादशाह को सोमवार, २० मई, सन् १७२३ ई० (२५ शाबान) को मिला। चार ही दिन उपरान्त उसे सूचना मिली कि हैदरक़ुली के नेतृत्व में शाही सेना ने सांभर में प्रवेश कर लिया है।[४८] शाही सेना ने आगे बढ़कर ७ जून को गढ़पुतली पर घेरा डाल दिया।[४९] गढ़ मे अजीतसिंह के लगभग चार सौ सवार उपस्थित थे। ऊदावत अमरसिंह ने शाही सेना का वीरतापूर्वक सामना किया, परन्तु अन्त में राठौड़ों को गढ़ खाली करना पड़ा और शाही सेना ने उस पर अधिकार कर लिया।[५०] अजीतसिंह ने शाही सेना से मित्रता करना ही उचित समझा। जयसिंह ने मध्यस्थ का कार्य किया।[५१] बातचीत के उपरान्त दोनों पक्षों में सन्धि हो गई जिसके अनुसार उसने अपने बड़े पुत्र को दरबार में भेजना और एक वर्ष बाद स्वयं भी दरबार में उपस्थित होना स्वीकार किया।[५२] इसके साथ ही अजमेर, भिणाय, तोड़ों, परबतसर, मारोठ, हरसोर, मैरूदो, तोसीणा, बंवाल,

---

४७. ख्यात. भाग २, १८१; मूंदियाड २६३-४; अजितोदय सर्ग ३०, श्लोक ४७-५२; दानेश्वर. २४३-७; अभयविलास. १३ अ ब; कूर्म्मवंसविलास.१६५ ब; गुटका. ३१२ अ ब; वार्ता १२६ ब; कामवर. ४८८; वादि. १७८ ब; सीयर २४१; मआसिर १७५; इरविन भाग २, ११३-४।

रुस्तमअली. (२५१ ब) ने लिखा है कि अजीतसिंह ने स्वयं गढ़पुतली में रुककर थोड़ा-सा युद्ध किया और बाद में जोधपुर गया परन्तु इसकी पुष्टि अन्यत्र नहीं होती।

४८. कामवर. ४८८; इरविन. भाग २, ११३।

४९. इरविन, भाग २, ११४।

५०. कामवर. ४८८; वारिद. १७८ ब; तारीख-ए-मुजफरी १२७; मआसिर १७५; इरविन. भाग २, ११४।

राजरूपक (५६०); अजितोदय. (सर्ग ३०, श्लोक ५२-६०); सूरजप्रकाश. (११४-१२४); जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात (७ ब) आदि में जोधपुर सेना के हारने का उल्लेख नहीं है। इनमें लिखा है कि शाही अधिकारियों ने ही संधि करने का प्रयत्न किया था, परन्तु अजीतसिंह ने बाद में शाही सेना के साथ जो सन्धि की उसे देखते हुये इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

५१. ख्यात. भाग २, १८१; मूंदियाड़. २६४; अजितोदय. सर्ग ३०, श्लोक ६३-८१; राजरूपक ५६०-२, वंश भाग ४, ३०८२।

५२. वारिद १७८ ब; रुस्तम अली २५१ ब २५२ अ; तारीख-ए-मुजफ्फ़री १२७; मआसिर १७५; वीर. भाग २, ८४२; इरविन. भाग २, ११४।

सांभर, नागोर, डीडवाना, वाहाल तथा कैंकड़ी नामक चौदह परगनों से अपना अधिकार हटाना भी अजीतसिंह ने स्वीकार कर लिया।[५३] इस सन्धि के पश्चात् महाराजा मेड़ता से मण्डोर होता हुआ नवम्बर, सन् १७२३ ई० (मार्गशीर्ष, संवत् १७७९) में जोधपुर पहुँचा।[५४]

(ग) अजीतसिंह का दुःखद अन्त : परिवार व चरित्र (सन् १७२४ ई०)

उधर अभयसिंह हैदरकुली के साथ अजमेर से दिल्ली गया जहां उसका यथोचित सम्मान किया गया।[५५] मुग़ल दरबार में इन दिनों राजा जयसिंह भी उपस्थित था जिसका प्रभाव दरबार में काफी बढ़ चुका था। महाराजकुमार ने सम्भवतः उसका प्रभाव देखते हुये उसके साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना उचित समझा। धीरे-धीरे इनका सम्बन्ध घनिष्ट होने लगा। जब जोधपुर में यह समाचार पहुँचा तो महाराजा को सम्भवतः यह आशंका होने लगी कि दरबार में उसके विरोधी अभयसिंह को विद्रोह के लिये उत्तेजित न कर दें। फलतः उसने अपने पुत्र को वापस बुलाने का निश्चय किया और इस कार्य के लिये पुरोहित जगू और चांपावत सगतसिंह को भेजा।[५६] परन्तु अभयसिंह वापस नहीं आया और महाराजा की आशंका ठीक निकली। मुहम्मद शाह के कहने पर राजा जयसिंह ने अभयसिंह को अजीतसिंह के विरुद्ध उत्तेजित किया। अजीतसिंह के दीवान भण्डारी रघुनाथ, जो-कि अभयसिंह के साथ दिल्ली आया था, ने भी अभयसिंह को समझाया कि जोधपुर राज्य की सुरक्षा के लिये जयसिंह की सलाह मानना उचित है। फलतः अभयसिंह ने अपने छोटे भाई वख्तसिंह को एक पत्र लिखा जिसमें उसे पिता की हत्या करने के लिये लिखा। तदनुसार वख्तसिंह ने मंगलवार, २३ जून, सन् १७२४ ई० (आषाढ़ सुदि १३, संवत् १७८१) को अर्द्धरात्रि के समय अपने पिता को सोते हुये मार डाला।[५७]

---

५३. ख्यात. भाग २, १८१; मूंदियाड़. २६४; दानेश्वर २४७।

५४. ख्यात भाग २, १८१; मूंदियाड़ २६५; गुटका. ३१२ ब।

५५. अजितोदय. सर्ग ३० श्लोक ८५; अभयविलास. १३ ब; इरविन भाग २, ११४।

५६. ख्यात भाग २, १८२-३; मूंदियाड़ २६५-६; दानेश्वर. २४८।

५७. ख्यात. भाग २, १८३; वीर. भाग २, ८४२ व ९९७; कविराजा १२६ ब; चतुरकुल-चरित्र १२४; दानेश्वर २४६; राजरूपक ५७६; अजितोदय सर्ग ३१, श्लोक १५; वारिद १७९ अ; रुस्तमअली. २५१ अ; खफी खां भाग २, ९७४; मआसिर. १७५; तारीख-ए-मुजफ्फरी. ३३४।

राजरूपक तथा अजितोदय में केवल मृत्यु का उल्लेख है, यह नहीं लिखा है कि वख्तसिंह ने अपने पिता की हत्या की थी। लेकिन फ़ारसी के सभी इतिहासकारों तथा राजस्थानी के अन्य ग्रन्थों एवं ख्यातों में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

केवल सतीशचन्द्र (१८२) ने लिखा है कि अजीतसिंह की मृत्यु उसके एक पुत्र द्वारा विष दिए जाने से हुई थी।

अजीतसिंह की हत्या के विशेष विवरण के लिए देखिये **परिशिष्ट ५**।

के वे दोनों परगने भी खालसा कर लिये, जो उसने जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद उसके राजपरिवार के पालन-पोषण के लिये दिये थे। इस प्रकार अजीतसिंह के होश सम्भालने से पूर्व ही उसका सारा पैतृक राज्य खो चुका था। उसका पालन-पोषण सिरोही राज्य में स्थित कालन्द्री नामक गाँव के पुष्करणा ब्राह्मण जयदेव के घर में हुआ। आठ वर्ष की अवस्था में गुप्तावस्था से बाहर आने के उपरान्त अगले लगभग तेईस वर्षों तक (सन् १६८७ ई० से १७१० ई०) वह सदैव मुग़ल-सम्राट् के विरुद्ध संघर्ष-रत रहा।

११ जून, सन् १७१० ई० को जब बहादुरशाह ने अजीतसिंह का जोधपुर राज्य पर वैधानिक अधिकार स्वीकार कर लिया, तब जोधपुर में लगभग इकतीस वर्षों के उपरान्त शान्ति स्थापित हुई। तत्पश्चात् अजीतसिंह ने धीरे-धीरे अपनी शक्ति सुदृढ़ करना आरम्भ किया। मुग़ल-दरबार से भी उसका सम्पर्क धीरे-धीरे बढ़ने लगा, और केवल नौ वर्षों के बाद ही सन् १७१९ ई० में उसका प्रभाव इतना बढ़ गया कि सैयद-भाइयों ने भी उसे अपने पक्ष में रखना आवश्यक समझा। उसके सहयोग से ही बादशाह फ़र्रुखसियर को सिंहासन से हटाया जा सका और तीन नये बादशाहों को बिठाया गया। परन्तु चरमोत्कर्ष के ये दिन अधिक समय तक न रह सके। केवल दो ही वर्ष बाद उसका महत्त्व दरबार में घट गया और स्थिति यह हो गई कि सन् १७२१ ई० में अजमेर में उसने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। तीन वर्षों के उपरान्त २३ जून, सन् १७२४ ई० को मुग़ल-दरबार के षड्यन्त्र के फलस्वरूप उसके पुत्र ने ही उसका वध कर दिया।

अजीतसिंह की शारीरिक बनावट के विषय में विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। केवल प्राप्य-चित्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उसका क़द विशेष लम्बा नहीं था, और वह स्थूलकाय शरीर का व्यक्ति था। उसकी आँखें सुन्दर तथा मस्तक चौड़ा था।

जीवन के आरम्भ से ही उसे निरन्तर कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था, अतः वीरता एवं साहस उसके स्वाभाविक गुण बन गये थे। स्थान-स्थान पर शाही सेनाओं को परास्त करके तथा अजमेर को घेर कर उसने अपने इन गुणों का यथेष्ट परिचय दिया।

अजीतसिंह एक महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। उसने अपने खोये हुये पैतृक राज्य पर न केवल अधिकार कर लिया, वरन् उसे बढ़ाने में भी वह सफल रहा। शक्ति बढ़ाने का कोई अवसर वह हाथ से नहीं जाने देता था और इसके लिये हर सम्भव उपाय अपनाता था। अपनी कन्या का विवाह मुग़ल-सम्राट् से करके और फिर अपने दामाद की हत्या में पूरा सहयोग देकर उसने यह स्पष्ट कर दिया कि वह घोर राजनीतिक व्यक्ति था।

अपने व्यक्तिगत जीवन में अजीतसिंह धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। हिंगुलाज देवी का वह उपासक था,[६२] और पूजा पाठ व यज्ञादि में वह विश्वास

---

६२. ख्यात. भाग २,१८५।

करता था।[६३] जोधपुर राज्य में उसने सर्वत्र हिन्दुत्व के सिद्धान्तों के प्रसार का प्रयत्न किया। उसने कई नये मन्दिर बनवाये तथा पुरानों का जीर्णोद्धार करवाया।[६४] साधु-सन्यासियों का वह आदर-सम्मान करता था, और विभिन्न अवसरों पर उन्हें भोजन करवाकर दान-दक्षिणा दिया करता था।[६५] विभिन्न चारणों को उसने गांव दान में दिये थे।[६६] लेकिन राजनीतिक जीवन में उसने धर्म को कभी बाधक नहीं बनाया। अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये वह समय को देखकर मुसलमानों के साथ ईदगाह में बैठकर खुतबा सुनने में[६७] भी संकोच नहीं करता था।

अजीतसिंह में प्रशासनिक गुणों का अभाव नहीं था। हुसैनअली के आक्रमण के समय जोधपुर की सुरक्षा के सम्बन्ध में उसने एक पत्र जोधपुर भेजा था।[६८] इस पत्र में दिये गये विस्तृत आदेशों से यह स्पष्ट है कि प्रशासन सम्बन्धी छोटी-छोटी बातों का भी उसे पूरा ध्यान रहता था।

अजीतसिंह साहित्य एवं कला-प्रेमी शासक था। उसने न केवल विभिन्न साहित्यकारों को प्रश्रय दिया वरन् स्वयं भी गद्य एवं पद्य—दोनों में रचनाएँ करके साहित्य की सेवा की। जोधपुर एवं मण्डोर में विभिन्न भवनों का निर्माण करवाकर उसने अपने कला-प्रेम का भी परिचय दिया।

अजीतसिंह को निष्प्रयोजन किसी से सम्बन्ध बिगाड़ना रुचिकर नहीं था। उसने लगभग सभी राजपूत राजाओं से अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास किया। कुछ राजाओं से उसके सम्बन्ध अवश्य बिगड़े; परन्तु उसका मूल कारण यह था कि उन शासकों तथा अजीतसिंह ने फर्रुखसियर के समय में मुग़ल-दरबार में भिन्न-भिन्न दलों का पक्ष लिया था। अपने सरदारों से भी वह साधारणतया अच्छा सम्बन्ध रखता था।[६९]

अजीतसिंह में कुछ स्वाभाविक दोष भी थे। वह कान का कच्चा था और लोगों पर शीघ्र ही विश्वास कर लेता था।[७०] इसके साथ ही वह अपने अधिकारियों

---

६३. ब्याव री वही नं. १, १-२६ में स्थान-स्थान पर इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

६४. पीछे देखिये पृ. १४१।

६५. ख्यात, भाग २, १८५।

६६. रेउ भाग १, ३२६ टि.।

६७. जयपुर अखबारात, बहादुरशाह, वर्ष ५, १३।

६८. ग्लोरीज. परिशिष्ट व ७, १०३-५।

६९. ८ फरवरी, सन् १७०९ ई० में अजीतसिंह भंडारी विट्ठलदास के घर गया था और मई, सन् १७१८ ई० में भंडारी खींवसी के पौत्र व पौत्री के विवाह में उसने भाग लिया था (ख्यात भाग २, १५५ व १६८)।

७०. अजमेर के सूबेदारों ने सन् १६९२ ई० तथा सन् १७०९ ई० में दो बार उसे छल-युक्त पत्र लिखे थे और महाराजा उन पर विश्वास करके अजमेर चला गया।

पर बहुत निर्भर हो जाता था, और उन पर से अपना अंकुश हटा लेता था। परिणामतः उसके अधिकारी बहुधा मनमानी करने लग जाते थे।[७१] वह अपने विरोधियों को कठोर दंड देता था और उन्हें छल से मरवा भी दिया करता था।[७२]

जोधपुर राज्य के इतिहास में अजीतसिंह का विशेष महत्त्व है। वह प्रथम शासक था जिसे मुगल-सम्राट् ने राजराजेश्वर की पदवी एवं माही मरातिब प्रदान किया। जोधपुर के राजाओं में केवल उसे ही इतना महत्त्व मिल सका कि उसने मुगल उत्तराधिकार के प्रश्न में हस्तक्षेप किया। फर्रुखसियर की मृत्यु हो जाने पर उसकी विवाहिता अपनी पुत्री को हिन्दू बनाकर वापस जोधपुर लाकर उसने भारतीय इतिहास में एक नया उदाहरण प्रस्तुत किया।

७१. अजीतसिंह सन् १६६८ ई० के बाद जालोर में रहा तो उसने धांधावत उदयसिंह पर ही सारा शासन भार छोड़ दिया था। (पीछे देखिये पृ० १२८) गुजरात तथा अजमेर में भी उसके नायब भंडारी अनूपसिंह तथा भंडारी विजयराज ने मनमानी की थी व [illegible] शासन चलाया था। (पीछे देखिये पृ० ११७ व २२०)

७२. २६ सितम्बर, १७०६ ई० में उसने विट्ठलदास के चार पुत्रों को हवेली में बंद कर दिया और उनकी सम्पत्ति छीन ली थी। इसी वर्ष उसने सोढा मदू नामक व्यक्ति को धोखे से मरवाया। मई सन् १७१८ ई० में उसने मुकुन्दसिंह के [illegible] नामक दो पुत्रों को मरवाया था। (जनत. भाग २, २४६ पृ०, १५४ व १५१-३)

अन्य राजपूत राज्यों से सम्बन्ध

महाराजा अजीतसिंह का जीवन बहुत उतार-चढ़ाव का जीवन था। मुग़ल बादशाहों के विरुद्ध कभी वह युद्ध में संलग्न रहा तो कभी उनका मित्र बना रहा, और कभी वह मुग़ल-दरबार का सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति बन गया। इसी प्रकार विभिन्न राजपूत राज्यों के साथ भी उसके सम्बन्ध समय-समय पर परिवर्तित होते रहे। विभिन्न राजपूत राज्यों के मुग़ल-सम्राट के साथ सम्बन्धों के आधार पर अथवा किन्हीं पारस्परिक व्यक्तिगत कारणों से उसका और अन्य राजपूत राजाओं का सम्बन्ध कभी मैत्रीपूर्ण रहा, कभी उदासीन। कभी किसी राज्य के साथ उसकी घनिष्ठता बहुत बढ़ गई और कभी उनमें परस्पर शत्रुता का बीजारोपण भी हो गया। मेवाड़, आम्बेर, व नागोर के साथ उसका लगभग जीवन-भर विशेष सम्पर्क रहा और बीकानेर, सिरोही, बूंदी, रतलाम किशनगढ़ व प्रतापगढ़, के साथ भी यदा-कदा सम्बन्ध बना रहा। इन राजपूत राजाओं के अतिरिक्त अपने जीवन-काल के अन्तिम वर्षों में जाट व मरहठों के साथ भी उसके मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहे।

(क) मेवाड़—

१६७८ ई. में जब महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु हुई इस समय जोधपुर राज्य के साथ मेवाड़ के राणा राजसिंह का सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण था।[1] जसवन्तसिंह के मरते ही जोधपुर राज्य में अत्यधिक अव्यवस्था फैल जाने के कारण जब औरंगज़ेब ने नवजात राजकुमार अजीतसिंह को जोधपुर का उत्तराधिकारी स्वीकार न करके इन्द्रसिंह को वहां का राज्याधिकार सौंप दिया और इससे अप्रसन्न होकर राठौड़ सरदारों ने स्थान-स्थान पर विरोध प्रगट करना आरम्भ कर दिया, तब राणा राजसिंह ने जोधपुर की राजनीति में कोई रुचि नहीं दिखाई।[2] वह सम्भवतः बिना किसी विशेष प्रयोजन के मुग़ल सम्राट के साथ अपना सबंध बिगाड़ना नहीं चाहता था। कुछ ही दिन उपरान्त जब राठौड़ों के उपद्रव ने गम्भीर रूप ले लिया तो ३ सितम्बर, सन् १६७९ ई० को औरंगजेब ने स्वयं उनके दमन के लिये दिल्ली से प्रस्थान किया। यह समाचार पाकर जब राठौड़ सरदारों ने सिंघवी दयालदास तथा राठौड़ गोपीनाथ को राणा के पास भेजकर उससे अजीतसिंह को आश्रय देने की प्रार्थना की तो उसने संभवतः

---

१. पीछे देखिये पृ० ६।

२. विस्तार के लिये देखिये अध्याय २।

यह सोचा कि दिल्ली पर शाही आधिपत्य स्थापित हो जाने से उनका अपना राज्य असुरक्षित हो जायेगा, और सम्भव है बादशाह मारवाड़ के पश्चात् मेवाड़ की ओर भी बढ़े। फलस्वरूप हुआ भी ऐसा ही, उसने अजीतसिंह को आश्रय देना स्वीकार कर लिया।[३] इस प्रकार जोधपुर तथा मेवाड़ का पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण हो गया। तत्पश्चात् लगभग पौने दो वर्ष तक जोधपुर के विद्रोही राठौड़ व उदयपुर के सीसोदिया राजपूत एक दूसरे के सहयोगी बने रहे, और उन्होंने सम्मिलित रूप से स्थान-स्थान पर शाही सेनाओं का सामना किया, शाही अधिकारियों पर आक्रमण किया और शाही चौकियों व रसद को लूटा। अन्त में उनके सम्मिलित प्रयत्नों के फलस्वरूप २ जनवरी, सन् १६८१ ई० को शाहजादा अकबर ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। परन्तु जब अकबर का विद्रोह असफल हो गया और वह राठौड़ दुर्गादास के साथ दक्षिण की ओर भाग गया, तब राणा राजसिंह के उत्तराधिकारी राणा जयसिंह ने बादशाह के साथ सन्धि करने का विचार किया। सम्भवतः जयसिंह दीर्घकालीन युद्ध से तंग आ चुका था, और वह देख रहा था कि इससे उसे कोई स्थायी लाभ नहीं है। फलतः १४ जून, सन् १६८१ ई० को राणा तथा मुगल-सम्राट के बीच सन्धि हो गई।[४] इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि जोधपुर तथा मेवाड़ राज्यों की पारस्परिक घनिष्ठता में व्याघात आ गया। राणा ने राठौड़ों के साथ अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।

सन् १६८१–७ ई० तक जब मारवाड़ के राठौड़ सरदार निरन्तर विरोध प्रकट करने तथा युद्धकार्य में व्यस्त रहे, मेवाड़ के सीसोदिया राजपूतों ने उन्हें किसी प्रकार का सहयोग नहीं दिया। १८ मार्च, सन् १६८७ ई० को अजीतसिंह के गुप्तावस्था से बाहर आ जाने के बाद भी राणा जयसिंह ने उससे किसी प्रकार का सम्बन्ध रक्खा हो, ऐसा विवरण नहीं मिलता। सम्भवतः वह बादशाह के विरोधियों से सम्पर्क रखकर मुगल-सम्राट से अकारण अपना सम्बन्ध नहीं बिगाड़ना चाहता था। परन्तु अजीतसिंह के प्रकट होने के पाँच वर्ष बाद मार्च–अप्रैल सन् १६९२ ई० में जब राणा तथा उसके ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह के बीच मनमुटाव हो गया, तब मारवाड़ तथा मेवाड़ के राज्यों के बीच एक बार फिर सम्बन्ध स्थापित हो गया। इस समय राणा को पुत्र का विद्रोह दबाने के लिये सैनिक सहायता की आवश्यकता थी। चूँकि मेवाड़ के दक्षिण में स्थित डूंगरपुर, प्रतापगढ़ तथा बांसवाड़ा के शासकों से राणा का सम्बन्ध विशेष सौहार्द्रपूर्ण नहीं था, अतः उनसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिल सकती थी। इतना ही नहीं, यह भी सम्भव था कि वे विद्रोही राजकुमार की सहायता करें अथवा मेवाड़ के गृह-कलह से स्वयं लाभ उठायें। बीकानेर, जयपुर तथा बूँदी के शासक दक्षिण में शाही सेना में नियुक्त थे, अतः इन राज्यों से भी इस संकट में सहायता मिलने की

---

३. पीछे देखिये पृ. ६८।
४. विस्तार के लिये देखिये अध्याय १।

आशा नहीं थी। इस स्थिति में जयसिंह ने जोधपुर की ओर दृष्टि फेरी और अजीतसिंह को पत्र लिखकर सैनिक सहायता भेजने का अनुरोध किया। उधर अजीतसिंह को इस समय तक जोधपुर का अधिकार नहीं मिल सका था और उसके सरदार शाही प्रभुत्व के विरुद्ध अकेले ही यत्र-तत्र उपद्रव कर रहे थे। इस स्थिति में जब अजीतसिंह के पास राणा का पत्र पहुँचा तो उसके सामने एक सशक्त राजपूत राज्य के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का एक सुअवसर सहज ही उपस्थित हो गया। भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर उसे भी मेवाड़ से सहायता मिल सकेगी, इसकी पूर्ण आशा थी। इसके साथ ही इसी वर्ष जोधपुर के फ़ौजदार शुजात ख़ाँ ने राठौड़ सरदारों को भूमि के पट्टे तथा तत्सम्बन्धी विस्तृत अधिकार दिये थे। फलतः राज्य में अपेक्षाकृत शान्ति थी। इस स्थिति में अजीत-सिंह ने इस सुअवसर को खोना उचित नहीं समझा और तत्काल ही एक विशाल सेना देकर दुर्गादास को मेवाड़ जाने का आदेश दिया। वहां पहुँचकर दुर्गादास के प्रयत्न से पिता-पुत्र का मेल हो गया। इस प्रकार लगभग ग्यारह वर्ष बाद मारवाड़ तथा मेवाड़ में पुनः सम्बन्ध स्थापित हो गया। केवल चार वर्ष बाद जब मई, सन् १६९६ ई. में अमरसिंह ने पुनः पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और राणा के बुलाने पर अजीतसिंह ने स्वयं उदयपुर जाकर राजकुमार को शान्त किया, तब राणा और अजीतसिंह एक-दूसरे के और निकट आ गये। १२ जून, सन् १६९६ ई० को राणा ने अपने भाई गजसिंह की पुत्री का विवाह अजीतसिंह के साथ कर दिया[५]। इस वैवाहिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप इन दोनों शासकों की मैत्री और दृढ़ हो गई।

राणा जयसिंह के उत्तराधिकारी राणा अमरसिंह के सिंहासनारोहण के लगभग दो वर्षों के बाद सन् १७०२ ई० में जब बादशाह ने सिरोही व आबू की जागीर राव वैरीसाल के अधिकार से हटाकर राणा अमरसिंह को दे दी, तब अजीतसिंह ने वहां राणा का अधिकार स्थापित होने में कुछ बाधा डाली थी, यह कहना कठिन है कि अजीतसिंह ने ऐसा क्यों किया ? कहा जाता है कि चूँकि अजीतसिंह का बाल्यकाल सिरोही राज्य में व्यतीत हुआ था, इसी कारण उसका भावनात्मक सम्बन्ध उस राज्य से था और राणा का वहां अधि-कार करना उसे असह्य हुआ। परन्तु चूँकि अजीतसिंह को बाल्यकाल में मेवाड़ में भी प्रश्रय मिला था, अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता। साथ ही केवल भावनात्मक सम्बन्ध के कारण एक सशक्त राज्य से सम्बन्ध बिगाड़ना उचित नहीं प्रतीत होता। सम्भव है कि अजीतसिंह ने यह निश्चय अपनी विमाता रानी देवड़ी के प्रभाव से लिया हो जोकि सिरोही की राजकन्या थी। परन्तु इतना स्पष्ट है कि इस निश्चय के फलस्वरूप दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये। यह स्थिति लगभग चार वर्ष तक बनी रही और इन वर्षों में अजीतसिंह ने

---

५. पीछे देखिये पृ. १८७-१९०।

बादशाह के विरुद्ध जो भी कार्य किये उनमें उसे राणा से कोई सहयोग प्राप्त न हो सका। सन् १७०५ ई० में जब राठोड़ दुर्गादास, अजीतसिंह से अप्रसन्न होकर शाही सेवा में चला गया और जनवरी, सन् १७०६ ई. में चांपावत उदयसिंह तथा जैतावत अर्जुनसिंह ने अजीतसिंह से अप्रसन्न होकर मोहकमसिंह को जालोर पर आक्रमण करने के लिये निमन्त्रित किया, तब अपने प्रमुख सरदारों के असहयोग को देखकर अजीतसिंह ने सम्भवतः मेवाड़ के राणा के साथ अपना तनाव दूर करने का निश्चय किया। उनकी आज्ञा से चांपावत मुकुन्ददास ने राणा के प्रधान दामोदरदास की मध्यस्थता से बातचीत प्रारम्भ की। फिर भण्डारी विट्ठलदास ने राणा को अजीतसिंह का तथा अपना पत्र भेजा, और अन्त में गोस्वामी नीलकंठगिरि की मध्यस्थता से दोनों शासकों का पारस्परिक तनाव दूर हो गया।[६]

औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने अपने शासनारम्भ में अजीतसिंह और आम्बेर के शासक जयसिंह को आतंकित करके उनकी शक्ति कुचलने का जो प्रयत्न किया, उसके फलस्वरूप जोधपुर, आम्बेर, मेवाड़, व बूंदी के शासकों में परस्पर पत्र-व्यवहार होने लगा। फलतः अजीतसिंह और अमरसिंह का पारस्परिक सम्बन्ध भी धीरे-धीरे मैत्रीपूर्ण होने लगा। कुछ दिनों बाद बादशाह के साथ दक्षिण जाते हुए मार्ग में जब अजीतसिंह और जयसिंह को यह स्पष्ट हो गया कि बहादुरशाह उन्हें उनके राज्य वापस देने का विचार नहीं रखता है, तब २० अप्रैल, सन् १७०८ ई. को वे शाही शिविर से भाग कर राणा अमरसिंह की शरण में चले गये। राणा ने दोनों राजाओं का स्वागत किया और इसी समय इन तीनों शासकों के बीच एक त्रिगुट बना, जिसमें यह निश्चय हुआ कि वे आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करेंगे। इस प्रकार अजीतसिंह और अमरसिंह के सम्बन्ध घनिष्ट हो गये। इसके पश्चात् अजीतसिंह को जब आवश्यकता पड़ी, राणा अमरसिंह ने उसे सहायता दी। जून-जुलाई, सन् १७०८ ई. में उसने जोधपुर पर अधिकार करने के लिये उसे सैनिक सहायता दी। इसी समय अजीतसिंह और जयसिंह का पक्ष लेते हुये उसने शाहजादा जहांदारशाह को भी पत्र लिखकर बताया कि राजाओं को उनके राज्य वापस देने पर ही शान्त रहेंगे। फ़रवरी, सन् १७०९ ई. में जब अजीतसिंह और जयसिंह में कुछ तनाव उत्पन्न हुआ तो अमरसिंह ने ही उन्हें शान्त किया। इसी वर्ष नागौर के शासक इन्द्रसिंह पर अजीतसिंह ने जब आक्रमण किया तो उनमें राणा ने सन्धि करवाई थी। इस प्रकार सन् १७०९ ई. तक अजीतसिंह और अमरसिंह की घनिष्टता यथाविधि रूप से बनी रही। अगले वर्ष ११ जून, सन् १७१० ई. को अजीतसिंह और बहादुरशाह के बीच सन्धि हो गई। बहादुरशाह के उत्तराधिकारी जहांदारशाह के समय में भी अजीतसिंह का सम्बन्ध मुग़ल-सम्राट से अच्छा रहा। फलतः अमरसिंह द्वारा अजीतसिंह को सक्रिय सहायता दिये जाने

६. वीर. भाग २, ७६४-७; ओझा भाग ४, खंड २, ५९५-७।

की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी और अगले चार वर्ष तक इनकी पारस्परिक मित्रता बनी रही।[७]

परन्तु फ़र्रुख़सियर के शासनारम्भ में इनकी मित्रता में व्याघात पड़ गया। सन् १७१४ ई. में जब अमीरुलउमरा हुसैन अली ख़ाँ ने शाही आज्ञानुसार अजीतसिंह पर आक्रमण किया, तो अमरसिंह ने अजीतसिंह को किसी प्रकार की सहायता नहीं दी। सम्भवतः इसका कारण यह था कि सन् १७०८ ई. में स्थापित त्रिगुट में इससे पूर्व ही दरारें पड़ने लगी थीं, और जयसिंह तथा अजीतसिंह में पहले का सा सौहार्द नहीं रहा था।

हुसैन अली के आक्रमण में जयसिंह ने अजीतसिंह को कोई सहायता नहीं दी थी। सम्भवतः यह देखकर ही राणा ने भी मुग़ल-शासक से सम्बन्ध बिगाड़ना उचित नहीं समझा। संकट के समय सहायता न मिलने से अजीतसिंह भी राणा के प्रति उदासीन हो गया।[८]

राणा अमरसिंह के उत्तराधिकारी राणा संग्रामसिंह के समय में मुग़ल-दरबार में बादशाह तथा सैयद बन्धुओं के दो दल स्पष्ट रूप से बन गये थे, और अजीतसिंह दूसरे दल का निकटतम सहयोगी था। संग्रामसिंह अपने राज्य को छोड़कर दिल्ली की राजनीति में फँसना सम्भवतः उचित नहीं समझता था, अतः उसने न फ़र्रुख़सियर का पक्ष लिया, न सैयद बन्धुओं का। दूसरी ओर अजीतसिंह दिल्ली की राजनीति में अच्छी तरह फँस गया था। फलस्वरूप अजीतसिंह तथा संग्रामसिंह के पारस्परिक सम्बन्ध अजीतसिंह की मृत्यु तक उदासीन ही रहे, उनमें परस्पर घनिष्टता नहीं बढ़ी।

(ख) आम्बेर:—

महाराजा जसवंतसिंह के समय में जोधपुर तथा आम्बेर के शासकों के बीच प्रतिद्वन्द्विता की स्थिति बनी रही और जसवंतसिंह तथा आम्बेर का शासक मिर्ज़ा राजा जयसिंह दोनों ही बादशाह से एक दूसरे से अधिक सम्मान पाने के लिए प्रयत्नशील रहे। परन्तु जयसिंह की मृत्यु के बाद आम्बेर के राजघराने का महत्त्व घट गया। उसके अगले दोनों उत्तराधिकारी—रामसिंह और बिशनसिंह—का राजत्वकाल विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं था, और इन दोनों का जीवन अधिकतर अपने राज्य से दूर अफ़ग़ानिस्तान में बीता था।[९] फलतः जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद मारवाड़ राज्य में जो उथल-पुथल हुई उसमें उन्हें कोई सरोकार नहीं रहा। बिशनसिंह का उत्तराधिकारी सवाई जयसिंह भी अपने राजत्व के आरम्भिक सात वर्षों (सन् १६९९-१७०६ ई.) में रहकर शाही सेवा करता रहा,[१०] और उसने अजीतसिंह के साथ

---

७. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ५ व अध्याय ६; खंड क।

८. पीछे देखिये पृ० २२०।

९. पूर्व १५०

१०. मआसिर (हिन्दी) भाग १. १६४।

किसी प्रकार का मैत्री-भाव प्रकट करने का कोई प्रयत्न किया हो, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

परन्तु बहादुरशाह के शासनारम्भ में अजीतसिंह और जयसिंह एक दूसरे के मित्र के रूप में सामने आये। उनकी यह पारस्परिक मित्रता कब विकसित हुई यह कहना कठिन है, क्योंकि इसके विषय में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता। औरंगज़ेब की मृत्यु के समय जयसिंह शाहज़ादा वेदारबख़्त के साथ अहमदाबाद में नियुक्त था।[११] अजीतसिंह इन दिनों जालौर के परगने में उपद्रव कर रहा था।

सम्भवतः इसी समय इन दोनों राजाओं के बीच मित्रता स्थापित हुई। चूँकि अजीतसिंह तथा मुग़ल समाट के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, अतः अवसर पाकर किसी भी राजपूत शासक से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिये उसका उत्सुक रहना नितान्त स्वाभाविक था। सम्भव है, अपने निवास स्थान के निकट के प्रदेश में जयसिंह की नियुक्ति हो जाने पर उसने आम्बेर के शासक के साथ सम्पर्क स्थापित किया हो। यह नहीं कहा जा सकता कि औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् जब अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार किया, तो उसे जयसिंह का कुछ सहयोग मिला अथवा नहीं। परन्तु इतना अवश्य स्पष्ट है कि जब बहादुरशाह ने आम्बेर को ख़ालसा कर लिया और जोधपुर में शाही फ़ौजदार भेज दिया तो अजीतसिंह और जयसिंह दोनों की समस्याएँ एक समान हो गईं। फलतः धीरे-धीरे उनकी मैत्री घनिष्ट होती गई।

सन् १७०७ में जोधपुर तथा जयपुर के शासकों के बीच जो घनिष्ठता आरम्भ हुई, वह सन् १७१२-३ ई. तक अबाध रूप से बनी रही। अजीतसिंह १३ फ़रवरी, सन् १७०८ ई. को जब बहादुरशाह से प्रथम बार मिला तो जयसिंह भी शाही शिविर में ही था। दोनों राजाओं की यह सम्भवतः प्रथम भेंट थी। अगले लगभग नौ-दस महीने (फ़रवरी से नवम्बर) तक अजीतसिंह और जयसिंह साथ-साथ ही रहे। बादशाह के साथ दक्षिण की ओर जाते हुए उन्होंने एक दूसरे की सहमति से ही शाही शिविर छोड़ा और राणा की शरण में चले गये। जुलाई, सन् १७०८ ई. में जब अजीतसिंह ने जोधपुर पर पुनः अधिकार किया तो न केवल जयपुर के सैनिकों ने उसे सहयोग दिया, वरन् जयसिंह स्वयं भी उसके साथ था। कुछ दिन उपरान्त २६ जुलाई को अजीतसिंह ने अपनी पुत्री सूरजकुँवर की सगाई जयसिंह के साथ करके उससे पारिवारिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया। ३ अक्तूबर, सन् १७०८ई. को सांभर में राजपूत सैनिकों की जो विजय हुई, वह दोनों शासकों के सम्मिलित प्रयत्न का फल था। फलतः यहां पर दोनों का सम्मिलित शासन स्थापित हुआ। ११ जून सन् १७१० ई. को बहादुरशाह के साथ दोनों शासकों ने साथ-साथ सन्धि की, और सिक्खों के विरुद्ध अभियान में भी उन्होंने इकट्ठे ही भाग लिया।[१२]

इन पाँच-छः वर्षों (सन् १७०७—१७१२-३ ई.) में अजीतसिंह व जयसिंह की घनिष्टता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। वे दोनों परस्पर पत्रों द्वारा एक

---

११. बहादुरशाह १०० टि०।
१२. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ५।

दूसरे को सारी स्थिति से परिचित कराते रहते थे। दरबार में उपस्थित अपने वक़ीलों की प्रगति, शत्रु की सेनाओं व शाही अधिकारियों की स्थिति, अपनी सेनाओं की प्रगति तथा अपनी नीति आदि सभी बातों का विवरण वे एक दूसरे को देकर परस्पर सलाह से कार्य करते थे। शाही फ़रमानों तथा महत्त्वपूर्ण पत्रों की प्रतिलिपि भी वे एक दूसरे को भेजा करते थे। [१३]

इन वर्षों में दोनों राजाओं के बीच केवल एक बार मनमुटाव हुआ। १९ फ़रवरी, सन् १७०९ ई. को अजीतसिंह ने जब अजमेर पर आक्रमण किया तो जयसिंह ने उसे कोई सहायता नहीं दी। इस पर अजीतसिंह का असन्तोष स्वाभाविक था। सम्भवतः जयसिंह आम्बेर की शासन व्यवस्था में व्यस्त था, और अपने राज्य को सुव्यवस्थित करने से पूर्व शाही अधिकारियों से उलझना नहीं चाहता था। [१४] परन्तु अजीतसिंह और जयसिंह का यह तनाव अधिक दिन नहीं रहा। राणा अमरसिंह ने तत्काल दोनों को समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। [१५]

बादशाह जहाँदारशाह के समय में सन् १७१२ ई. में अजीतसिंह ने मालपुरा से जयसिंह के थाने हटाकर अपने थाने स्थापित कर लिये और रूपनगर व टोडा में भी अपने थाने बनाये। सम्भवतः अपने राज्य में अजीतसिंह का यह अनाधिकार प्रवेश जयसिंह को भला नहीं लगा। फलस्वरूप उनके सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गये और वे मन ही मन एक दूसरे से असन्तुष्ट हो गये। सम्भवतः इसी कारण सन् १७१४ ई. में जब अमीर-उल–उमरा हुसैनअलीखाँ फ़र्रुखसियर की आज्ञानुसार अजीतसिंह पर आक्रमण करने के लिये गया तो जयसिंह ने बादशाह के साथ अपना सम्बन्ध, बिगाड़ना उचित न समझकर उसे कोई सहायता नहीं दी। फलस्वरूप इनकी सात वर्ष पुरानी मित्रता समाप्त हो गई। [१६]

फ़र्रुख़सियर के दरबार की दलबन्दी में अजीतसिंह और जयसिंह भिन्न–भिन्न दलों के समर्थक रहे। अजीतसिंह ने सैयद-बन्धुओं का पक्ष लिया और जयसिंह ने बादशाह का। फलतः उनके पारस्परिक सम्बन्ध भी धीरे-धीरे कटु होते गये। अजीतसिंह ने सीकदार दयालदास को एक पत्र लिखा जिसमें बताया कि जयसिंह के परामर्श पर फ़र्रुखसियर ने उसको मरवाने के कई प्रयत्न किये हैं। [१७] अजीतसिंह को भी दरबार में जयसिंह की उपस्थिति असहनीय थी। फलतः जब सैयद–भाइयों ने बादशाह के समक्ष यह प्रस्ताव रक्खा कि जयसिंह को आम्बेर लौटने की आज्ञा दी जाय, तो अजीतसिंह की भी सहमति इसमें थी। फर्रुख़सियर विवश था। उसने

---

१३. रा. पु. बी. में इस काल के पत्रों का महत्वपूर्ण संग्रह है, जिसमें इस प्रकार की घनिष्टता की पुष्टि होती है।

१४. पीछे देखिये पृ० १६२।

१५. इन्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, मैसूर १९६६।

१६. पीछे देखिये पृ. १८७।

१७. ग्लोरीज़ परिशिष्ट व ९, ११४-५।

जयसिंह को इस प्रकार का आदेश दिया। फलस्वरूप जयसिंह आम्बेर लौट गया, और अगले कुछ महीनों तक दिल्ली की राजनीति से विलग रहा।

उधर सैयद-बन्धुओं और अजीतसिंह ने फर्रुख़सियर को सिंहासन से हटा दिया। सन् १७१९ ई. के फरवरी से सितम्बर तक के केवल सात महीनों में दिल्ली में रफ़ीउद्दरजत, रफ़ीउद्दौला व मुहम्मदशाह नामक तीन बादशाह हुए। इसी बीच जब आगरा में नेकुस्सियर का विद्रोह हुआ, और जयसिंह भी ससैन्य आम्बेर से निकलकर टोडा तक आ पहुँचा, तो अजीतसिंह बादशाह से आज्ञा लेकर जयसिंह से मिला। उसके प्रयत्न से जयसिंह ने अपने राज्य को लौटना स्वीकार कर लिया। अजीतसिंह के इस कार्य से उसके तथा जयसिंह के बीच की कटुता कुछ कम हो गई। अजीतसिंह जयसिंह को साथ लेकर जोधपुर लौटा, और सम्भवतः मैत्री बढ़ाने के विचार से १९ मई, सन् १७२० ई. को उसने अपनी पुत्री सूरजकुँवर का विवाह जयसिंह के साथ कर दिया। इस प्रकार यद्यपि दोनों में पुनः सम्बन्ध स्थापित हो गया, परन्तु मन ही मन वे विरोधी पक्षों के समर्थक बने रहे, जिससे आन्तरिक विरोध बना ही रहा और उनमें पहले की सी घनिष्ठता न हो सकी।[१८] नवम्बर, सन् १७२० ई. में सैयद-भाइयों का पतन हो जाने का समाचार जब जोधपुर पहुँचा तो जयसिंह बिना अजीतसिंह को सूचना दिये ही चुपचाप जोधपुर से दिल्ली चला गया।[१९]

४ अगस्त, सन् १७२१ ई को जब बादशाह ने अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया, और उसने अजमेर में विद्रोह कर दिया, तो जयसिंह ने उसे कोई सहायता नहीं दी। वह शाही आज्ञानुसार जाटों के विरुद्ध अभियान में लगा रहा।[२०] उसकी शाही सेवाओं के फलस्वरूप मुहम्मदशाह के दरबार में उसका महत्त्व बढ़ता गया। इस स्थिति में अजीतसिंह और जयसिंह के बीच मित्रता होना अस्वाभाविक था। सन् १७२३ ई. में मुहम्मदशाह ने जो सेना अजीतसिंह के विरुद्ध अजमेर की ओर भेजी थी, उसमें जयसिंह भी था। जयसिंह के समझाने पर अजीतसिंह ने शाही अधीनता स्वीकार कर ली और जोधपुर वापस चला गया।[२१] परन्तु इससे उनके सम्बन्धों पर कोई प्रभाव न पड़ा। सम्भवतः अजीतसिंह ने जयसिंह के प्रभाव से नहीं, वरन् शाही सेना की शक्ति की अधिकता के कारण बादशाह से सन्धि की थी।

जयसिंह स्पष्ट देख रहा था कि सैयद-भाइयों के पश्चात् अजीतसिंह का महत्त्व बहुत कम हो गया है। सम्भवतः इसीलिये उसने अजीतसिंह से मित्रता न रखकर बादशाह को प्रसन्न रखना अपने लिये अधिक हितकर समझा। फलतः

---

१८. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ६ खण्ड ४।

१९. ख्यात भाग २; १७८; मूंदियाड़ २६०; अजितोदय सर्ग २८, श्लोक ५६–६४।

२०. इरविन भाग २, १२२–३।

२१. पीछे देखिये पृ. २२७–८।

मुहम्मदशाह के कहने पर अजीतसिंह के पुत्र अभयसिंह को उकसाकर अजीतसिंह की हत्या करवादी।[२२]

इस प्रकार आम्बेर के सवाई जयसिंह के साथ अजीतसिंह के सम्बन्ध आरम्भ में न केवल मित्रतापूर्ण थे वरन् घनिष्टतापूर्ण रहे; फर्रुखसियर के समय में इनमें तनाव आने लगा, और धीरे-धीरे यह कटुता इतनी अधिक हो गई कि जयसिंह ने अजीतसिंह को मरवाने में भी संकोच नहीं किया।

(ग) नागोरः—

महाराजा गजसिंह ने सन् १६३२ ई. में अपने ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह से अप्रसन्न होकर अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया था। फलस्वरूप सन् १६३८ ई० में उसकी मृत्यु हो जाने के पश्चात् बादशाह शाहजहाँ ने उसकी इच्छानुसार जसवन्तसिंह को जोधपुर राज्य का अधिपति स्वीकार कर लिया, और उसके ज्येष्ठ भाई अमरसिंह को तीन हज़ार जात, तीन हज़ार सवार का मनसब व राव की पदवी देकर नागोर–प्रदेश का अधिकार सौंप दिया। इस समय से नागोर पर सदैव अमरसिंह के वंशजों का अधिकार बना रहा। जोधपुर राज्य से वंचित रहने के कारण नागोर के शासकों का जोधपुर राज्य के शासक से असन्तुष्ट रहना स्वाभाविक था। सम्भवतः इसी कारण जसवन्तसिंह के साथ अमरसिंह तथा उसके पुत्र रायसिंह ने कोई सम्पर्क नहीं रक्खा, और वे सदैव स्वामी-भक्ति पूर्वक शाही सेवा में रत रहे। सम्भवतः जोधपुर व नागोर के पारस्परिक वैमनस्य को देखकर ही औरंगज़ेब ने १६५९ ई० में जसवन्तसिंह के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर रायसिंह को जोधपुर का अधिकार सौंपने का प्रयास किया था।[२३]

जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय अमरसिंह का पौत्र इन्द्रसिंह नागोर का अधिपति था, और वह अपने पिता और पितामह की तरह शाही मनसबदार था, और इन दिनों दक्षिण के युद्धों में भाग ले रहा था। महाराजा की मृत्यु के बाद जब जोधपुर में अव्यवस्था फैल गई, तो बादशाह औरंगज़ेब ने दक्षिण से बुलाकर २५ मई, सन् १६७९ ई० को उसे इस आशा से जोधपुर का अधिकार सौंप दिया कि वह वहाँ सुव्यवस्था स्थापित करने में समर्थ होगा।[२४] परन्तु जोधपुर के राठौड़ सरदारों को यह रुचिकर नहीं लगा। यद्यपि इन्द्रसिंह ने पद का लालच देकर व समझा-बुझाकर जोधपुर के कुछ राठौड़ सरदारों को अपनी ओर मिला लिया और उसका जोधपुर पर अधिकार स्थापित हो गया; परन्तु यह स्थिति अधिक दिन तक न बनी रह सकी, और कुछ ही दिन बाद ये राठौड़ सरदार उसके व्यवहार से अप्रसन्न होकर अजीतसिंह के पक्ष में चले गये। सन् १६७९ से १७०७ ई० तक जोधपुर के राठौड़ों एवं मुग़ल सम्राट के बीच जो संघर्ष हुआ उसमें इन्द्रसिंह, सदैव शाही

---

२२. पीछे देखिये पृ. २२९।

२३. जसवन्तसिंह १०, ३८ व ९४–५।

२४. पीछे देखिये पृ. ४४।

सेना में बना रहा, और उसे स्थान-स्थान पर राठौड़ सरदारों के दमन के लिये भेजा गया। फलस्वरूप निकटतम पारिवारिक सम्बन्ध होने के बावजूद भी अजीतसिंह व इन्द्रसिंह कभी एक दूसरे के निकट नहीं आ सके। जब इन्द्रसिंह जोधपुर राज्य में सुव्यवस्था स्थापित नहीं कर सका, और बादशाह ने २६ मार्च, सन् १६८१ ई० को उससे जोधपुर का राज्याधिकार वापस ले लिया, तब भी इनमें सौहार्द्र नहीं स्थापित हो सका।[२५] सम्भवतः इसका कारण यह था कि अजीतसिंह और इन्द्रसिंह दोनों ही जोधपुर राज्य के लिए प्रतिद्वन्द्वी थे। सम्भव है इन्द्रसिंह को यह आशा रही हो कि शाही सेवा में रहकर वह पुनः जोधपुर का राज्याधिकार पा सकेगा। कारण कुछ भी रहा हो, औरंगजेब के सम्पूर्ण राज्यकाल में सन् १७०७ ई० तक जब जोधपुर के राठौड़ सरदार मुगल-सम्राट के विरुद्ध उपद्रव करते रहे तो इन्द्रसिंह ने उनसे कोई सम्पर्क नहीं रक्खा। इतना ही नहीं, सन् १७०५ ई० में जब अजीतसिंह के चाँपावत उदयसिंह तथा जैतावत अर्जुनसिंह नामक प्रधान सरदारों ने असन्तुष्ट होकर इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को निमन्त्रित किया तो उसने अजीतसिंह से अपने परिवारिक सम्बन्ध का कोई ध्यान नहीं रक्खा, और ६ जनवरी, सन् १७०६ ई० को जालोर पर आक्रमण कर दिया।[२६] यद्यपि उसका यह प्रयत्न विशेष सफल न हो सका, तथापि इसके फलस्वरूप अजीतसिंह नागोर के राजवंश के साथ रुष्ट हो गया और बहादुरशाह के राज्यकाल में अवसर पाकर उसने २५ नवम्बर, सन् १७०८ ई० को नागोर पर आक्रमण करने के लिये जोधपुर से प्रस्थान किया। अजीतसिंह की विशाल सेना देखकर इन्द्रसिंह उसका सामना करने का साहस न कर सका, और उसने अपनी माँ के द्वारा अजीतसिंह से अनुनय-विनय करवाकर उससे सन्धि कर ली।

परन्तु इस सन्धि के बाद भी अजीतसिंह और इन्द्रसिंह के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित न हो सका। अगले वर्ष सन् १७०९ ई० के अन्त में जब अजीतसिंह ने बादशाह के विरुद्ध इन्द्रसिंह से सहायता माँगी तो इन्द्रसिंह ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग एक वर्ष पूर्व उसने अजीतसिंह के साथ जो सन्धि की थी, वह केवल आकस्मिक आपत्ति को टालने के लिए ही की थी, और अजीतसिंह के साथ मैत्री करने का उसका कोई विचार नहीं था। अजीतसिंह को जब इस उत्तर का पता चला, तो उसने क्रोधित होकर नागोर के विरुद्ध अपनी सेनाएँ भेज दीं और इन्द्रसिंह को पुनः दूसरी बार उससे सन्धि करने के लिये बाध्य होना पड़ा।[२७]

फर्रुखसियर के शासनारम्भ में जब वह अजीतसिंह से अप्रसन्न था, तो दिल्ली में उपस्थित इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह ने अजीतसिंह के विरुद्ध बादशाह को भड़काकर जोधपुर का राज्य प्राप्त करने की चेष्टा की। इसका समाचार

---

२५. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ३।

२६. पीछे देखिये पृ. १३३-४।

२७. पीछे देखिये पृ. १६० व १६५-६।

पाकर अजीतसिंह ने क्रोधित होकर अगस्त, सन् १७१४ ई० में मोहकमसिंह का वध करवा दिया।[२८] इसी वर्ष अमीर-उल-उमरा हुसैन अली खाँ के आक्रमण के फलस्वरूप अजीतसिंह का सम्बन्ध सैयद बन्धुओं से स्थापित हो गया। सम्भवतः उनके प्रभाव से ही सन् १७१६ ई० में बादशाह ने उसे नागोर का अधिकार सौंप दिया। अजीतसिंह ने एक विशाल सेना नागोर पर आक्रमण करने के लिये भेजी। यह अजीतसिंह का नागोर पर तीसरा आक्रमण था। इन्द्रसिंह परास्त हुआ और ३० जून, सन् १७१६ ई० को उसने नागोर छोड़ दिया।[२९] इस प्रकार फर्रुखसियर के शासन-काल में भी जोधपुर व नागोर राज्य के बीच वैमनस्य बना रहा और दोनों राज्यों के शासकों को जब भी अवसर मिला, उन्होंने एक दूसरे के राज्य पर अधिकार करने का प्रयत्न किया।

अपने पैतृक राज्य को खोकर इन्द्रसिंह का मन ही मन अप्रसन्न रहना स्वाभाविक था; परन्तु मुग़ल-दरबार में अजीतसिंह का प्रभुत्व इतना अधिक बढ़ गया था कि विवश होकर उसे शान्त रहना पड़ा। अगले लगभग सात वर्षों तक नागोर पर अजीतसिंह का प्रभुत्व बना रहा। सन् १७२३ ई० में जब अजीतसिंह ने अजमेर में मुहम्मदशाह से सन्धि की, तब उसने नागोर से अपना अधिकार हटाना स्वीकार किया, और बादशाह ने २७ मई, सन् १७२३ ई० को इन्द्रसिंह को नागोर का अधिकार सौंप दिया।[३०]

इस प्रकार लगभग पैंतालीस वर्ष के जीवन-काल में अजीतसिंह का सम्बन्ध नागोर के राव इन्द्रसिंह के साथ कभी सौहार्द्रपूर्ण न हो सका।

(घ) अन्य राज्य :—

बीकानेर:—

महाराजा जसवन्तसिंह के समय में जोधपुर एवं बीकानेर राज्य में यद्यपि निकट सम्बन्ध होने का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद बीकानेर के शासक अनूपसिंह ने अजीतसिंह को जोधपुर का राज्य देने के लिये औरंगज़ेब से जो प्रार्थना की थी[३१] उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इनका पारस्परिक सम्बन्ध अच्छा था।

औरंगज़ेब के सम्पूर्ण राज्य-काल में जब अजीतसिंह निरन्तर मुग़ल बादशाह का विरोधी रहकर उपद्रव में संलग्न रहा, अनूपसिंह ने न तो उसे किसी प्रकार की सहायता दी और न ही उससे कोई सम्पर्क रक्खा। वह सदैव बादशाह की ओर से दक्षिण के विभिन्न युद्धों में भाग लेता रहा। सम्भवतः इसका कारण यह

---

२८. पीछे देखिये पृ. १८१।

२९. पीछे देखिये पृ. १९६।

३०. ख्यात भाग २, १८१; मूंदियाड़ २६४; खफ़ी खाँ भाग २ ५१०; इरविन भाग २, ११३।

३१. पीछे देखिये पृ. ४३–४।

था कि वह विना किसी व्यक्तिगत कारण के बादशाह से सम्वन्ध विगाड़ना नही चाहता था।

औरंगज़ेब की मृत्यु होते ही जोधपुर पर अधिकार करने के बाद अजीतसिंह ने अप्रेल, सन् १७०७ ई० में बीकानेर पर आक्रमण किया। उसका वास्तविक उद्देश्य क्या था, यह कहना कठिन है। चूंकि बीकानेर का शासक सुजानसिंह इन दिनों दक्षिण में था, और वहाँ के सीमावर्ती प्रदेशों के बीदावत सरदार अपने शासक से असन्तुष्ट थे, इसलिये सम्भवतः अनुकूल परिस्थिति को देखकर अजीतसिंह ने वहां अपना अधिकार स्थापित करना चाहा था। परन्तु उसे सफलता नहीं मिल सकी।[३२] सम्भवतः इस घटना के बाद अजीतसिंह का सुजानसिंह के साथ अच्छा सम्वन्ध नहीं रहा। सन् १७१९ ई० में जब फ़र्रुख़सियर के दरबार में अजीतसिंह का प्रभुत्व बहुत अधिक बढ़ गया, तब उसने सुजानसिंह को बन्दी बनाकर बीकानेर पर अपना अधिकार स्थापित करने का एक और असफल प्रयत्न किया।[३३] इस प्रकार अजीतसिंह के समय में इन दोनों राज्यों का पारस्परिक सम्बन्ध सौहार्द्रपूर्ण नहीं था।

सिरोही :—

महाराजा जसवन्तसिंह का सिरोही राज्य के साथ वैवाहिक सम्बन्ध था। फलतः उसके समय में इन राज्यों में पारस्परिक मित्रता बनी रही। अजीतसिंह के जन्म के उपरान्त जब औरंगज़ेब ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया और राजकुमार का मेवाड़ में सुरक्षित रहना सम्भव न रहा तो उसे उसका संरक्षक मुकुन्ददास खीची सिरोही राज्य में ले गया। यद्यपि वहाँ के शासक वैरीसाल ने शिशु को अपने रनिवास में रखकर बादशाह को असन्तुष्ट करना उचित नहीं समझा परन्तु जसवन्तसिंह की विधवा रानी देवड़ी इन दिनों अपने मायके में थी, अतः उसने बालक अजीतसिंह की सुरक्षा का प्रबन्ध कालन्द्री नामक एक गाँव में करवा दिया।[३४] इस प्रकार अजीतसिंह का बाल्यकाल सिरोही राज्य में ही व्यतीत हुआ। १७०२ ई० में जब बादशाह ने सिरोही व आबू की जागीर राणा अमरसिंह को दे दी, तब अजीतसिंह ने राणा का अधिकार वहाँ स्थापित होने में कुछ बाधा डाली थी।[३५] इसके बाद इन दोनों राज्यों का पारस्परिक सम्बन्ध कैसा रहा, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। अनुमानतः इनमें सदैव मित्रता बनी रही।

बूँदी :—

जसवन्तसिंह का विवाह बूंदी के राव छत्रसाल की पुत्री कर्मावती से हुआ था। परिणामस्वरूप महाराजा का सम्बन्ध छत्रसाल तथा उसके पुत्र भावसिंह के

---

३२. पीछे देखिये पृ. १३९–४० ।
३३. पीछे देखिये पृ. २०३ टि. ११० ।
३४. पीछे देखिये पृ. १०७ ।
३५. पीछे देखिये पृ. ११७ ।

साथ मैत्रीपूर्ण रहा। परन्तु जब अजीतसिंह का जन्म हुआ, तो बूँदी का शासक अनिरुद्धसिंह बादशाह की ओर से दक्षिण के युद्धों में भाग ले रहा था और उसने मारवाड़ के विद्रोही राठौड़ सरदारों को कोई सहायता नहीं दी। सम्भवतः इसी कारण बूँदी का विद्रोही सरदार दुर्जनसिंह सन् १६८६ ई० में जब बूँदी से भागकर इन विद्रोही राठौड़ सरदारों के पास पहुँचा तो उन्होंने उसका स्वागत किया। अजीतसिंह जिस समय प्रकट हुआ था दुर्जनसिंह ही सर्वप्रथम उससे मिला था। अगले लगभग दो वर्ष तक वह राठौड़ सरदारों के साथ रहा, और उसने शाही सेना के विरुद्ध कई युद्धों में भाग लिया।[३६] सन् १६८८ ई. के लगभग जब उसकी मृत्यु हो गई तब दुर्गादास ने बूँदी के शासक के साथ सम्भवतः अच्छा सम्बन्ध बनाने के लिये दुर्जनसिंह के पुत्रों को अनिरुद्धसिंह के समक्ष नतमस्तक करवाकर उसकी सहानुभूति प्राप्त करने का प्रयत्न किया।[३७] परन्तु औरंगज़ेब के सम्पूर्ण शासन-काल में जब अजीतसिंह अपने समर्थकों के साथ शाही सैनिको का विरोध करता रहा, बूँदी के शासक ने उसे कोई सहायता नहीं दी।

बहादुरशाह के समय में भी जब सन् १७०७ ई० में जयसिंह ने कई राजपूत राजाओं को पत्र लिखकर सहायता भेजने का अनुरोध किया, तब बूँदी के शासक बुधसिंह का भी अजीतसिंह से पत्र व्यवहार हुआ,[३८] परन्तु इनमें मैत्री सम्बन्ध स्थापित न हो सका। बुधसिंह ने बादशाह के विरुद्ध महाराजा को किसी प्रकार की सहायता नहीं भेजी। सम्भवतः वह बादशाह से सम्बन्ध बिगाड़ना नहीं चाहता था।

लेकिन फ़र्रुख़सियर के समय में जब अजीतसिंह ने सैयदों का पक्ष लिया और बुधसिंह ने बादशाह का, तब इनमें स्वाभाविक रूप से दूरी बढ़ गई। साथ ही बुधसिंह का विरोधी कोटा का महाराव भीमसिंह चूँकि सैयदों के पक्ष में था, अतः उसके साथ अजीतसिंह की मैत्री स्थापित हो गई। इस स्थिति के परिणामस्वरूप अजीतसिंह और बुधसिंह का पारस्परिक तनाव धीरे-धीरे बढ़ता गया और सन् १७१९ ई० के प्रारम्भ में इन दोनों का सम्बन्ध इतना कटु हो गया कि अजीतसिंह, भीमसिंह और राजसिंह की सम्मिलित सेनाओं ने दिल्ली में बुधसिंह के शिविर पर आक्रमण कर दिया। फलतः बुधसिंह को भागना पड़ा।[३९] इस प्रकार बूँदी के शासकों के साथ अजीतसिंह का सम्बन्ध प्रायः अच्छा नहीं रहा, और सन् १७१९ ई० से उनमें पारस्परिक कटु सम्बन्ध हो गये जो उसके जीवन के अन्त तक बना रहा।

रतलाम:—

जोधपुर व रतलाम के शासक परस्पर निकट सम्बन्धी थे, अतः जसवन्तसिंह के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। अजीतसिंह के जन्म का समाचार सुनकर यद्यपि

---

३६. पीछे देखिये पृ. १०८ व ११२–४।
३७. पीछे देखिये पृ. ११०–१।
३८. पीछे देखिये पृ. १४४।
३९. पीछे देखिये पृ. २०७।

रतलाम के शासक रामसिंह ने नवजात-शिशु को जोधपुर राज्य देने की प्रार्थना करवाई,[40] परन्तु सन् १६७६ ई० से सन् १६८१ ई० तक जब जोधपुर के विद्रोही राठौड़ सरदार औरंगजेब से संघर्ष कर रहे थे तब रामसिंह शाही सेना में रहकर उनको दबाने का प्रयत्न करता रहा।[41] सम्भवतः जोधपुर राज्य के व्यक्तिगत हित के लिये वह बादशाह को अप्रसन्न करके अपने राज्य को संकट में नहीं डालना चाहता था। उसके दोनों उत्तराधिकारी—शिवसिंह व केशवदास—बादशाह की ओर से दक्षिण के युद्धों में ही व्यस्त रहे।[42] फलतः उनका अजीतसिंह से कोई सम्पर्क नहीं रहा।

यद्यपि रतलाम के शासकों के साथ अजीतसिंह का सम्बन्ध नहीं रहा, परन्तु रामसिंह का भाई अमरराज सन् १६८७ ई० के बाद दो-तीन वर्ष तक विद्रोही राठौड़ों का सहयोगी बना रहा और उसने शाही सेना और राठौड़ों के कई संघर्षों में सक्रिय भाग लिया।[43]

किशनगढ़ :—

अजीतसिंह का सम्बन्ध किशनगढ़ के राजा राजसिंह के साथ औरंगज़ेब के समय में कैसा था, इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। परन्तु फ़रवरी, सन् १७०९ ई० में जब अजीतसिंह ने अजमेर का घेरा डाला था, तब राजसिंह ने अजीतसिंह और शुजात खाँ के बीच मध्यस्थ बनकर उनमें सन्धि करवाई थी।[44] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इससे पूर्व भी उनमें मैत्री-सम्बन्ध रहा होगा।

दो वर्षों के बाद जनवरी, सन् १७११ ई० के लगभग अजीतसिंह ने राजसिंह पर आक्रमण कर दिया। उसका वास्तविक उद्देश्य क्या था, यह कहना कठिन है। चूँकि इस समय अजीतसिंह और बहादुरशाह के बीच सन्धि हो चुकी थी, और जोधपुर में पूर्ण शान्ति थी; अतः सम्भव है महाराजा ने निकटवर्ती छोटे से राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का विचार किया हो।[45] राजसिंह ने चार दिन तक अजीतसिंह की सेना का सामना किया, परन्तु अन्त में उसे सन्धि करनी पड़ी। सन्धि की शर्तों के अनुसार उसने अजीतसिंह से स्वयं भेंट करना, अपने पुत्र को

---

४०. पीछे देखिये पृ. ४३–४।
४१. पीछे देखिये पृ. ७७।
४२. रतलाम अध्याय ६ व ७।
४३. पीछे देखिये पृ. ११४।
४४. पीछे देखिये पृ. १६२।
४५. वंश भास्कर के अनुसार अजमेर पर महाराजा अजीतसिंह का अधिकार हो गया था फलतः राजसिंह उससे ईर्ष्या करने लगा था और उसने बहादुरशाह से अजीतसिंह की शिकायत की थी। इसी कारण अजीतसिंह ने उस पर आक्रमण किया। परन्तु यह ठीक नहीं है। अजीतसिंह का इस समय अजमेर पर अधिकार नहीं था।

महाराजा की सेवा में भेजना, तथा दो तोपें देना स्वीकार किया। इसके बदले में अजीतसिंह ने किशनगढ़ और रूपनगर से अपने सैनिकों को हटा लिया।[४६]

फ़र्रुख़सियर के शासन-काल में राजसिंह भी बादशाह के विरोधी पक्ष का समर्थक था।[४७] फलतः अजीतसिंह के साथ उसकी घनिष्टता हो गई। अनुमानतः यह सम्बन्ध अजीतसिंह के अन्तिम दिनों तक बना रहा।

प्रतापगढ़ :—

जसवन्तसिंह के समय में जोधपुर और प्रतापगढ़ के शासकों का पारस्परिक सम्बन्ध अच्छा था। अजीतसिंह के जन्म के बाद जोधपुर के विद्रोही राठौड़ों तथा मुग़ल-सम्राट के बीच जो संघर्ष होता रहा, उसमें महारावत प्रतापसिंह ने बादशाह की ओर से युद्ध में भाग लिया था।[४८]

सन् १६९६ ई० में जब अजीतसिंह का विवाह उदयपुर की राजकन्या से हुआ, तब प्रतापसिंह ने भी २१ जून, सन् १६९६ ई० को अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया।[४९] चूंकि प्रतापगढ़ व उदयपुर राज्य में सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध नहीं था, सम्भवतः इसीलिये प्रतापसिंह ने जब उदयपुर राज्य के साथ अजीतसिंह का गठबन्धन देखा तो स्वयं भी उसके साथ अच्छा सम्बन्ध रखना आवश्यक समझा ताकि संकट के समय अजीतसिंह उदयपुर का पक्ष न ले सके। इस वैवाहिक सम्बन्ध के परिणामस्वरूप इन दोनों राज्यों में सदैव मैत्री बनी रही, और सन् १७०८ ई० में जब अजीतसिंह बहादुरशाह के शिविर से भाग कर प्रतापगढ़ आया तो प्रतापसिंह ने उसका आदर व सम्मान किया। अगले वर्ष ११ मार्च, १७०९ ई० को उसने अपनी पौत्री का विवाह भी अजीतसिंह से कर दिया।[५०] इस प्रकार अजीतसिंह व प्रतापसिंह का सम्बन्ध सदैव मैत्रीपूर्ण रहा।

---

४६. अख़बारात, लन्दन संग्रह, भाग १,१२५; ख्यात-भाग २,१५०-२; जुनी. ८८-९; मूंदियाड़ २४६; वीर-भाग २,८४०; दानेश्वर २३०; अजितोदय-सर्ग २०, श्लोक १-१७; वंश भाग ४, ३०४०-१०; प्राचीन राजवंश. २१६ व ३७४; ओझा. भाग ४, खण्ड २,५५०; मूल. २१८।

ख्यातों व राजस्थानी ग्रन्थों तथा आधुनिक इतिहासकारों ने किशनगढ़ पर आक्रमण करने की तिथि अगस्त, सन् १७११ ई० (भाद्रपद संवत् १७६८) स्वीकार की है। परन्तु इस महीने में अजीतसिंह व जयसिंह शाही आज्ञानुसार सिक्खों के विरुद्ध युद्ध में भाग लेने के लिये साधोरा की ओर जा रहे थे। इसके अतिरिक्त अख़बारात में स्पष्ट रूप से लिखा है १५ जनवरी, सन् १७११ ई० (६ ज़िल्हिज, ११२२ हि०) को बादशाह को यह समाचार मिला कि अजीतसिंह के आदेशानुसार रामचन्द्र ने रूपनगर को लूटा है। अतः इसी तिथि को स्वीकार करना अधिक उपयुक्त है।

४७. पीछे देखिये पृ. २०७।

४८. ओझा भाग ३, खंड ३, १७८–१८१।

४९. पीछे देखिये पृ. १२३।

५०. पीछे देखिये. पृ. १५२ व १६३।

जाट :—

सन् १७१४-५ ई. में हुसैन अली के आक्रमण के बीच अजीतसिंह व चूड़ामन जाट की प्रथम भेंट हुई ; जिसमें दोनों में मैत्री-सम्बन्ध स्थापित हुए और अजीतसिंह ने जयसिंह के विरुद्ध चूड़ामन को सुरक्षा प्रदान करने का आश्वासन दिया।[५१]

फ़र्रुख़सियर के समय में अजीतसिंह व चूड़ामन का सहयोग बना रहा। ८ दिसम्बर, सन् १७१८ ई. को दिल्ली शहर में जब अजीतसिंह के सैनिकों और बीका हजारी नामक शाही अधिकारी के सैनिकों के बीच संघर्ष हुआ, तो उसमें जाट सैनिकों ने राठौड़ों का पूरा साथ दिया था। अप्रेल, सन् १७१९ ई. में जब अजीतसिंह और सैयदों ने फ़र्रुख़सियर को गद्दी से हटाया, तब चूड़ामन जाट ने भी उन्हें पूरा सहयोग दिया।[५२]

मुहम्मदशाह के सिंहासनारोहण के उपरान्त सन् १७२० ई० में अजीतसिंह व चूड़ामन जाट के बीच एक सन्धि हुई जिसके अनुसार दोनों ने आवश्यकता पड़ने पर एक-दूसरे को सहायता देने का आश्वासन दिया।[५३] इस सन्धि का पालन दोनों ने सदैव किया। सन् १७२१ ई० में जब मुहम्मदशाह ने अकबराबाद के सूबेदार सआदत खाँ को अजीतसिंह के विरुद्ध अजमेर जाने की आज्ञा दी तो, चूड़ामन जाट ने सआदत खाँ का मार्ग अवरोध किया, और अपने पुत्र मोहकमसिंह की अधीनता में एक जाट सेना भी अजीतसिंह की सहायता के लिये भेजी।[५४] अजीतसिंह ने भी सन् १७२२ ई. में भण्डारी विजयराज की अधीनता में एक बड़ी सेना भेजकर चूड़ामन की सहायता की थी।[५५] चूड़ामन जाट की मृत्यु के उपरान्त जब जाट पूर्णतया परास्त हो गये, तब अजीतसिंह ने चूड़ामन के पुत्र मोहकमसिंह को आश्रय दिया। चूड़ामन के उत्तराधिकारी बदनसिंह के साथ भी अजीतसिंह का मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध रहा।[५६]

मरहठे :—

मरहठों के साथ अजीतसिंह के सम्बन्ध के विषय में अजीतसिंह द्वारा छत्रपति शाहु को लिखा हुआ एक पत्र प्राप्य है, जिसमें उसने सन् १७१९ ई. की लगभग सभी घटनाओं की उसे सूचना दी है।[५७] इसके साथ ही यह उल्लेख भी मिलता

---

५१. हिस्टोरिकल एसेज़ ६० व ६३।

५२. विस्तार के लिये देखिये अध्याय ६, खण्ड ४।

५३. कानूनगो—हिस्ट्री ऑव जाट्स. ५७।

५४. हिस्टोरिकल ऐसेज़. ६३; इरविन भाग २, ११० व १२१।

५५. जयपुर रिकार्डस, हिन्दी, भाग ३, खण्ड ५,१५।

५६. कानूनगो, हिस्ट्री ऑव जाट्स. ५६ व ६३।

५७. यह पत्र सेणा सदन, चाँदपोल, जोधपुर से प्रकाशित है। इसके लिखने की तिथि २० मई, सन् १७१८ (ज्येष्ठ सुदि २, संवत् १७७५) का लिखा हुवा है। परन्तु घटनाएँ सन् १७१९ ई० की हैं। सम्भवतः यह पत्र संवत् १७७६ का लिखा है।

है कि मालवा में मरहठों के उपद्रवों में महाराजा गुप्त रूप से उनका पक्ष लेता था।[५८] इससे इन दोनों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार अजीतसिंह को बिना किसी विशेष प्रयोजन के किसी राज्य के साथ सम्बन्ध बिगाड़ना रुचिकर न था और अपने समकालीन लगभग सभी शासकों के साथ उसका संबन्ध बहुधा अच्छा रहा।

---

५८. बाम्बे. रीवे १०१।

९
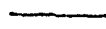
शासन-व्यवस्था

(क) राज्य-विस्तार और शासन-पद्धति

अजीतसिंह के जन्म के समय तक जोधपुर का राज्य उत्थान-पतन की कई करवटें ले चुका था। जब २८ नवम्बर, सन् १६७८ ई. को जसवन्तसिंह की मृत्यु हुई, तो उसके अधिकार में जोधपुर के अन्तर्गत जोधपुर मेड़ता, जैतारण, सोजत, सिवाना, पोकरण, फलोदी व जालोर नामक आठ परगने थे। इसके अतिरिक्त जोधपुर राज्य के बाहर हिण्डौन, मलारना, मरूका, बदनोर, तानापुर, रोहतक, धिराद, राधरणपुर, चकला हिसार, पितलाद धन्धूका तथा जाजपुर पर भी उसका अधिकार था। चूंकि जसवन्तसिंह की मृत्यु के समय उसका कोई पुत्र जीवित नहीं था और जोधपुर में उसकी मृत्यु का समाचार पहुँचते ही अव्यवस्था फैल गई थी अतः औरंगजेब ने सोजत व जैतारण के दो परगनों को स्वर्गीय शासक के राजपरिवार के भरण-पोषण के लिये छोड़कर शेष सभी को खालसा कर लिया। इस प्रकार अजीतसिंह के जन्म के समय उसका अधिकार-क्षेत्र केवल इन्हीं दो परगनों तक सीमित था। परन्तु दिल्ली से सुरक्षित निकल कर जोधपुर पहुँचने के समय तक औरंगज़ेब ने इन दो परगनों को भी शाही अधिकार में ले लिया और अजीतसिंह के पास उसके पैतृक राज्य का कोई भी अंश शेष न रहा। अगले लगभग बीस वर्ष तक उसे किसी भी परगने का वैधानिक अधिकार प्राप्त न हो सका। मई, सन् १६९८ ई. में उसे बादशाह औरंगज़ेब ने जालोर व सांचोर के परगने प्रथम बार दिये। केवल सात ही वर्षों के बाद औरंगज़ेब की मृत्यु होते ही उसने बल-प्रयोग द्वारा जोधपुर, मेड़ता, पाली व सोजत के परगनों पर अधिकार कर लिया। अगले वर्षों में धीरे-धीरे उसकी शक्ति बढ़ती गई। अपनी शक्ति तथा मुग़ल-दरबार में अपने प्रभाव से द्वारा उसने अपना अधिकार-क्षेत्र बहुत बढ़ा लिया। सन् १७१९-२० में उसके अधिकार में जोधपुर राज्य के जालोर, सांचोर, पाली, सोजत, सिवाना, फलोदी, मेड़ता, जोधपुर, सांभर, डीडवाना, नागोर, तथा परबतसर नामक बारह परगने थे। इसके अतिरिक्त सारोठ, बधवाड़ा, भिणाय, विजयगढ़, केकड़ी, बबाल और अनहलपाटन (गुजरात) पर भी उसका अधिकार था। इसके अतिरिक्त तोडा, मालपुरा व रूपनगर में अजीतसिंह ने अपने थाने बना रक्खे थे। इस समय गुजरात व अजमेर जैसे साम्राज्य के दो प्रमुख सूबों का वह सूबेदार भी था। अपने पिता जसवन्तसिंह से ही नहीं, वरन् जोधपुर के सभी शासकों की अपेक्षा अजीतसिंह का राज्य-विस्तार इन वर्षों में सम्भवत

सबसे अधिक था। मुग़ल-दरबार में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने के कारण यह स्थिति अधिक दिन तक बनी न रह सकी। अगले ही वर्ष सन् १७२१ ई. में गुजरात व अजमेर के सूबे उससे लिये गये और सन् १७२३ ई. में उसने बादशाह मुहम्मदशाह से जो सन्धि की, उसके फलस्वरूप साँभर, डीडवाना, परबतसर तथा नागोर पर भी उसका अधिकार न रहा। फिर भी अजीतसिंह की मृत्यु के समय उसके अधिकार में जोधपुर राज्य के अन्तर्गत जालोर, सांचोर, जोधपुर, पाली, सोजत, सिवाना, फलोदी व मेड़ता नामक आठ परगने थे। जोधपुर से वाहर बधवाड़ा तथा विजयगढ़ पर उसका अधिकार था और रूपनगर व मालपुरा में भी उसके थाने थे।[1]

१७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजपूताने में जिस शासन पद्धति का प्रचलन था, उसका स्वरूप सन् १५८० ई० में ही स्पष्ट होने लगा था जब अकबर ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को बारह सूबों में विभाजित किया। उसने राजपूताने के सभी राज्यों को शासन की सुविधा के अनुसार अजमेर, चित्तौड़, रणथम्भोर, जोधपुर, नागोर, बीकानेर व सिरोही नामक सात सरकारों में बांटा और इन सभी सरकारों को मिलाकर एक सूबा बनाया, जिसे 'अजमेर' नाम दिया। अजमेर व नागोर की सरकार पर मुग़ल-सम्राट का अपना नियंत्रण था और शेष पाँच मे पूर्ववत् वंशानुगत राजपूत राजाओं का शासन रहा।[2] यद्यपि ये राज्य अजमेर सूबा के अंग थे, और अजमेर का सूबेदार आवश्यकता पड़ने पर उनसे सैनिक सहायता ले सकता था एवं शाही आज्ञाएं उसी के माध्यम से राजाओं तक पहुँचाई जाती थीं। तथापि अपने आन्तरिक शासन में ये पूर्ण स्वतंत्र थे। अजमेर का सूबेदार उनकी निजी समस्याओं में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता था, और वे विना उसकी मध्यस्थता के भी मुग़ल-सम्राट से सम्पर्क स्थापित कर सकते थे।[3]

मेवाड़ के अतिरिक्त अन्य सभी राज्यों के शासकों के लिये यह आवश्यक था कि या तो वे स्वयं मुग़ल-दरबार में उपस्थित हों, अथवा उनका पुत्र या भाई दरबार में उनका प्रतिनिधित्व करे।[4] राजपूत शासकों को सैनिकों की एक निश्चित संख्या बादशाह की सेवा में भेजनी पड़ती थीं और बादशाह उन्हें जिस स्थान पर नियुक्त करता था उन्हें जाना पड़ता था[5]। मुग़ल-सम्राट का इन राज्यों की साधारण जनता से कोई सम्पर्क नहीं रहा, और वह एक निश्चित राशि राजाओं से पेशकश के रूप में लिया करता था।[6] बादशाह राजपूत राजाओं को उनकी

---

१. अजीतसिंह के राज्य विस्तार के लिये देखिए परिशिष्ट 'ङ'।
२. आईन भाग २, १२६, २७३, २७८-८२; पूर्व ६७-८ टि०; सरन. १२६-८; जयसिंह-१६; जसवन्तसिंह ६।
३. सरन- १२६; शर्मा, स्टडीज़. २०४; जयसिंह. १६; जसवन्तसिंह. ६ व १५३-४।
४- सरन-१३७-८; पूर्व. ८७; जयसिंह. १७; जसवन्तसिंह ६।
५. सरन. १२६; पूर्व ८७; शर्मा स्टडीज़. २०३-४, शर्मा एडमिनिस्ट्रेशन. २२८; जयसिंह.१७।
६. सरन-१२६; शर्मा स्टडीज़ २०२-३ व २०५; टाड भाग १, १२३-४; पूर्व. ६६ व ८८ जयसिंह. १७-८; जसवन्तसिंह ७।

योग्यता एवं मुग़ल साम्राज्य के प्रति उनकी स्वामिभक्ति व सेवा के अनुसार उन्हें मनसब व जागीरें दिया करता था। उनकी जागीरें कभी-कभी बदली भी जाती थीं, ताकि उनका स्थानीय प्रभाव न बढ़ सके। सिद्धान्ततः बादशाह का राजपूत राजाओं पर पूर्ण अधिकार था। यहां तक कि उत्तराधिकार के प्रश्न पर भी उसकी स्वीकृति आवश्यक थी। वह अपनी इच्छानुसार किसी भी व्यक्ति को फ़रमान, सनद, टीका व खिलअत देकर राज्याधिकार सौंप सकता था। परन्तु साधारणतया वह ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकार के नियम को ही स्वीकार कर लेता था जो कि साधारण रूप से सारे राजपूताने में प्रचलित था। नये शासक को अपने पूर्ववर्ती शासक का मनसब व सभी जागीरें नहीं मिलती थीं। उसकी अपनी योग्यता व सेवा के आधार पर नया मनसब व जागीर दिया जाता था। लेकिन वतन-जागीर बहुधा उत्तराधिकारी को मिल जाती थी।[७] सम्भवतः यही कारण था कि राजपूत शासक वतन-जागीर को अपनी निजी सम्पत्ति समझने लगे थे। मुद्रा-चलन बादशाह का एकाधिकार माना जाता था, अतः सारे राजपूताने में मुग़ल-सिक्कों का ही प्रचलन था।[८]

मुग़ल शासक से सम्पर्क स्थापित हो जाने पर राजपूत शासकों का मुग़ल-शासन-पद्धति से परिचय हुआ और धीरे-धीरे यह शासन-प्रणाली, स्थानीय शासन-प्रणाली को प्रभावित करने लगी। ज्यों-ज्यों राजाओं का सम्पर्क मुग़ल-दरबार से बढ़ा, त्यों-त्यों यह प्रभाव अधिक होने लगा। १७ वीं शताब्दी तक राजपूताने की शासन-व्यवस्था पर मुग़ल-शासन-प्रणाली का प्रभाव काफी बढ़ चुका था।

(जोधपुर राज्य की प्रारम्भिक शासन-व्यवस्था के विषय में कुछ विवरण नहीं मिलता। अनुमानतः राजपूताने के अन्य राज्यों की भांति यहां के शासक जनसाधारण के कार्यों की ओर विशेष ध्यान नहीं देते थे, और न जनता से विशेष सम्पर्क रखते थे। उनका प्रमुख कर्त्तव्य युद्ध करना, राज्य में शान्ति स्थापित करना तथा कर वसूल करना ही था।) राव मालदेव के समय (सन् १५३२–१५६२ ई०) में भी सम्भवतः यही शासन-प्रणाली प्रचलित थी। परन्तु जब उसका राज्य विस्तृत हो गया तो उसे सुव्यवस्थित करने की समस्या उसके सामने उठ खड़ी हुई। इसी बीच मुग़ल शासक के सम्पर्क में आने से उसे मुग़ल-शासन-पद्धति का ज्ञान हुआ और उसने इससे इससे पूरा लाभ उठाने की चेष्टा की। उसने अपने राज्य में मुग़लों की भांति फ़ौजदार व शिकदार आदि कर्मचारी नियुक्त किये। चूंकि मुग़लदरबार में सारा कार्य फ़ारसी भाषा में होता था, अतः बादशाह से पत्र व्यवहार करने के लिये उसने अपने दरबार में फ़ारसी जानने वाले कुछ व्यक्तियों को भी रक्खा। उसको उत्तराधिकारी राव चन्द्रसेन (सन् १५६२–१५८१ ई०) का सम्बन्ध बादशाह अकबर से अच्छा नहीं रहा और धीरे-धीरे नागोर, जालोर व डीडवाना नामक प्रदेशों पर शाही अधिकार हो गया। फलतः इन प्रदेशों में शाही शासन-प्रणाली की झलक आ गई। यद्यपि

७. सरव. १३१; जयसिंह. १८; जसवन्तसिंह. ७।
८. सरव. १३२; जयसिंह. १८; जसवन्तसिंह. ७।

जोधपुर राज्य के अन्य सभी प्रदेशों पर पूर्ववत् राठौड़ों का ही अधिकार था और पहले की सी शासन पद्धति चल रही थी, तथापि इन प्रदेशों की शासन व्यवस्था का प्रभाव वहाँ भी पड़ने लगा। चन्द्रसेन के पश्चात् मोटा राजा उदयसिंह (सन् १५८३-१५९५ ई०) जोधपुर का अधिपति बना। वह अपने राज्यारोहण से पूर्व ग्वालियर में मुग़ल जागीरदार रह चुका था, अतः उसे मुग़ल-शासन-प्रणाली का समुचित ज्ञान था। फलतः स्थानीय शासन-प्रणाली में परिवर्तन होना स्वाभाविक था। उसके उत्तराधिकारी सूरसिंह (सन् १५९५-१६१९ ई०) का प्रधानमन्त्री गोविन्ददास शासन प्रबन्ध में विशेष कुशल था, और उसने मुग़ल शासन व्यवस्था का अध्ययन करके अपने राज्य के प्रशासन को नवीन ढंग से संगठित किया। राज्य में दीवान, बख्शी व हाकिम आदि पद प्रथम बार प्रारम्भ हुये। इस प्रकार धीरे-धीरे स्थानीय शासन-पद्धति पर मुग़ल शासन-प्रणाली का प्रभाव बढ़ता गया और उन दोनों में विशेष अन्तर नहीं रह गया।[९]

अजीतसिंह के जीवन के प्रारम्भिक अट्ठाईस वर्ष अव्यवस्था की अटूट शृंखला थे। इन दिनों जोधपुर पर बादशाह का अधिकार रहा, परन्तु जैसे ही २१ फ़रवरी, सन् १७०७ ई० को औरंगज़ेब की मृत्यु हुई अजीतसिंह ने वहाँ अपना अधिकार कर लिया। शासन की बागडोर हाथ में लेने के पश्चात् उसने अपने पूर्वजों की शासन-प्रणाली का ही अनुकरण किया। मुग़ल सम्राट की भाँति राठौड़ राजा भी अपने राज्य का सर्वोच्च था। वह राज्य के समस्त अधिकारियों को नियुक्त अथवा पदच्युत कर सकता था, परन्तु राज्य के सभी कार्यों में वह अपने उच्चाधिकारियों से परामर्श कर लिया करता था। यदि कभी उसका निर्णय उसके सरदारों को अरुचिकर प्रतीत होता था, तो वे उससे प्रार्थना कर सकते थे। यद्यपि उनकी बात मानने के लिये राजा बाध्य नहीं था, परन्तु उचित होने पर वह बहुधा उनकी बात स्वीकार कर लिया करता था।[१०]

जोधपुर राज्य में दरबार लगाने की प्रथा बहुत पहले से थी। दरबार में सरदारों के बैठने के लिये राव जोधा (सन् १४५३-१४८९ ई०) ने कुछ नियम बनाये थे, जिनका पालन पूर्ववत् होता रहा। इसके अनुसार दरबार में जीवणी (दाईं) व डाबी (बाईं) दो मिसलें (पंक्तियाँ) थीं। दाहिनी पंक्ति में राव जोधा के भाइयों के वंशज बैठा करते थे जिनमें चांपावत, कूंपावत, जेतावत राठौड़ थे। बाईं तरफ़ राव जोधा के पुत्रों के वंशज ऊदावत, जोधा व करमसोत राठौड़ बैठते थे। जब जोधपुर के शासक मुग़ल दरबार के सम्पर्क में आये, तो राजकीय दरबार को शाही दरबार के ढंग पर सुव्यवस्थित किया गया। राजा सूरसिंह (सन् १५९५-१६१९ ई०) के समय में यद्यपि दरबार में बैठने की परम्परागत प्रथा बनी रही, तथापि समस्त जागीरदारों तथा शासन के भाई-बेटों की मान-मर्यादा निश्चित कर

---

९. शर्मा स्टडीज़. १९७-९; जसवन्तसिंह. १५१-३; पूर्व. ८८-९; जयसिंह. १९।
१०. टाड. भाग १, १२१।

दी गई, और धीरे-धीरे शाही दरबार की भाँति राजकीय दरबार में बैठने का नियमबद्ध स्वरूप दिखाई देने लगा। कुछ चुने हुए व्यक्तियों को राजा के पास दायें व बायें बैठने का अधिकार दिया जाता था। इनको 'सिरायत' कहते थे। दरबार में बैठने के नियमों के अतिरिक्त दरबार में उपस्थित होने के समय जागीरदारों द्वारा अभिवादन करने तथा राजा द्वारा अभिवादन स्वीकार करने के कुछ नियम राजा सूर-सिंह ने आरम्भ किये थे, जो 'कुर्ब' व 'ताज़ीमें' कहलाते थे। पहला कुर्ब 'बाँह-पसाव' का था जिसमें सरदार जब राजा के सामने उपस्थित होता था तो तलवार उसके पैरों के पास रखकर राजा के घुटने या अचकन के पल्ले को छूता था, और राजा उसके उत्तर में उसके कन्धे पर हाथ रखता था। दूसरा कुर्ब 'हाथ का कुर्ब' था जो पहले से अधिक ऊँचा माना जाता था। इसमें जागीरदार ऊपर वर्णित प्रक्रिया से ही अभिवादन करता था, परन्तु राजा उसके कन्धे को छूने के बाद वही हाथ अपने सीने तक ले जाता था। ताजीमें भी दो प्रकार की होती थीं—इकेवड़ी व दोवड़ी। इकेवड़ी में जब ड्योढ़ीदार जागीरदार के आने की सूचना देता था तो राजा खड़ा हो जाता था, परन्तु उसके दरबार से वापस जाते समय नहीं खड़ा होता था। दोवड़ी में राजा दोनों समय खड़ा होता था। कुर्ब व ताजीम का प्रयोग अजीतसिंह के समय भी पूर्ववत् होता रहा।[11]

जिस प्रकार मुग़ल शासन-प्रणाली में शासकीय कार्यों का प्रधान 'दीवान' कहलाता था, उसी प्रकार जोधपुर राज्य में भी शासकीय कार्यों के लिये 'दीवान' हुआ करता था। जोधपुर राज्य के दीवान के कर्त्तव्य व अधिकार लगभग वही थे जो शाही दीवान के। राज्य के समस्त शासन प्रबन्ध से सम्बन्धित सभी कार्यों के लिए वह उत्तरदायी था, और राज्य के जमा-खर्च का समस्त कार्य उसके अधीन हुआ करता था। विभिन्न परगनों से होने वाली पैदावार के जमा-खर्च का ब्योरा, तथा जागीरदारों द्वारा दिये गये वार्षिक कर का विवरण उसी के पास रहता था। राज्य के सभी पदाधिकारी उसके अधीन थे और वह सब के कार्यों का पूरा-पूरा ध्यान रखता था। यदि कहीं कोई त्रुटि दिखाई पड़ती तो वह तुरन्त महाराजा को सूचित करता और उसमें सुधार करवाता था। वह प्रतिदिन दरबार में जाता था और महाराजा को जमाखर्च की सूची सुनाता था। परगनों के हाकिमों की यद्यपि शासक स्वयं नियुक्ति करता था, परन्तु दीवान का उन पर पूरा नियन्त्रण रहा करता था।[12] महाराजा अजीतसिंह के समय में भण्डारी विट्ठलदास ने ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० (श्रावण वदि १३, सम्वत् १७६५) से अक्टूबर, सन् १७०८ ई०

---

११. हरदयालसिंह, तवारीख़ जागीरदारान राज मारवाड़; शर्मा, स्टडीज़ २००; रेउ. भाग १, ६३२; दूर्वे. ८६।

१२. ख्यात री बही नं. १; हरदयालसिंह, मजहर हालात व इन्तिज़ाम राज मारवाड़, सम्वत् ११; इब्न हसन. २०५-६; शर्मा, एडमिनिस्ट्रेशन. ४०-२।
रेउ (भाग १; १५०) व शर्मा. (स्टडीज़ २००) से भी सिद्ध है कि प्रशासकीय कार्य का अधिकार 'प्रधान' को नहीं होता था। उसके लिये अलग कर्मचारी हुआ करता था।

(कार्तिक, सम्वत् १७६५) तक तथा १७ जून, सन् १७०९ ई० (आषाढ़ बदि ६, सम्वत् १७६६) से २९ सितम्बर, सन् १७०९ ई० (आश्विन सुदि ७, सम्वत् १७६६) तक लगभग चार-चार महीनों के दो बार दीवान के पद पर कार्य किया। इन दो कालो के बीच अक्टूबर, सन् १७०८ ई० से १६ जून, सन् १७०९ ई० सिंघवी बख्तावर मल, जोधमल तथा जीवनमल ने सम्मिलित रूप से दीवान के कार्यों को सम्भाला। २९ सितम्बर, सन् १७०९ ई० को अजीतसिंह ने भण्डारी विट्ठलदास को हटा कर भण्डारी रघुनाथ को दीवान बनाया। इसने सम्भवतः लगभग सवा तीन वर्ष इस पद पर कार्य किया। फरवरी, सन् १७१३ ई० (फाल्गुन, संवत् १७६९) को भण्डारी माईदास तथा मुहता गोकुलदास को सम्मिलित रूप से दीवान के अधिकार सौंपे गये। सन् १७१५-६ ई० (संवत् १७७२) में भण्डारी रघुनाथ पुनः दीवान नियुक्त हुआ।[13] सम्भवतः वह अजीतसिंह के राज्यत्व के अन्त तक इसी पद पर बना रहा।

राज्य का दूसरा प्रमुख अधिकारी 'खानेसामान' था। मुग़ल-दरबार में भी इसी नाम का एक पदाधिकारी हुआ करता था जो बादशाह के गृह-प्रबन्ध के लिये उत्तरदायी होता था और राजकीय भवन, मार्ग व बाग आदि का ध्यान रखता था। परन्तु जोधपुर राज्य में 'खानेसामान' के अधिकार व कर्त्तव्य इतने विस्तृत नहीं थे, वह केवल राजकीय अन्न के भण्डार का अध्यक्ष होता था। पट्टों पर दी गई राजा की निजी भूमि से होने वाली समस्त पैदावार को वह पट्टेदारों से उचित दामों पर खरीद लेता था, और भण्डार में अन्य सभी आवश्यक वस्तुओं की देख-रेख किया करता था। जोधपुर में इस पदाधिकारी को 'अन्न रै कोठार का दरोगा' भी कहा जाता था।[14] अजीतसिंह ने ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० (श्रावण बदि १३, सम्वत् १७६५) को रणछोड़ जयदेवोत को इस पद पर नियुक्त किया था।[15]

जोधपुर राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिये 'दुफ्तर रा दारोग़ा' नामक अधिकारी हुआ करता था वह सर्वसाधारण पर दृष्टि रखता था और राज्य की सभी घटनाओं की ठीक-ठीक सूचना राजा तक पहुँचाता था। राज्य-कोश के प्रबन्ध के लिये 'खजान्ची' नामक अधिकारी था। वह कोश में जमा होने और निकाले जाने वाले धन का पूरा-पूरा हिसाब रखता था, और इस विवरण की एक सूची पर प्रतिदिन महाराजा के हस्ताक्षर भी करवाता था। क़िले की सुरक्षा का भार 'क़िलेदार' पर होता था। क़िले के सारे सामान की देखरेख करना उसका प्रमुख कर्त्तव्य था। क़िले में तोपों व अन्य अस्त्र-शस्त्र का प्रबन्ध भी उसके हाथ में रहता था। वह क़िले की सुरक्षा के लिये स्वयं ही अन्य पदाधिकारियों को नियुक्त करता

---

१३. ख्यात भाग २, १४७, १४८, १४९, १४९-५०, १६१ व १६४; मूंदियाड़ २३५, २३६, २३६-७ २४७ व २४९।

१४. व्यावरी वही नं०१; इब्न हसन २३८-४३; शर्मा; एडमिनिस्ट्रेशन. ४७-८।

१५. ओहदा, ३८; ख्यात. भाग, २,१४७; मूंदियाड़. २३५।

भंडारी नारायणदास भगवानदासोत, अक्टूबर, सन् १७०६ ई० में भंडारी देवराज, फ़रवरी, सन् १७१३ ई० में मुँहतामाईदास का भाई सन् १७१५-६ ई० में भंडारी पोमसी तथा ४ अगस्त, सन् १७१६ ई० को भंडारी गिरधरदास नियुक्त हुआ था।[२५] ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० को भंडारी देवराज जगनाथोत जैतारण का हाकिम नियुक्त हुआ[२६]। सन् १७१०-१ ई० में भंडारी पोमसी रासावत जालोर व सांचोर का हाकिम नियुक्त हुआ। कुछ वर्षों के बाद ४ अगस्त, सन् १७१६ ई० (भाद्रपद वदि १३, संवत् १७७३) को मुहणोत नैणसी के वशंज सांवतसिंह को जालोर का हाकिम नियुक्त कर दिया गया। इसी दिन भंडारी पोमसी को नागोर के हाकिम का पद सौंपा गया।[२७]

प्रशासन की सबसे छोटी इकाई गांव थी। यहाँ का सारा कार्य-भार पंचायत सम्भालती थी। राजा यहाँ के प्रशासन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था।[२८]

राज्य का सर्वोच्च सैन्य पदाधिकारी 'प्रधान' हुआ करता था। राजा की सम्पूर्ण सेना का नेतृत्व वही सम्भालता था।[२९] सन् १६८७ ई० में अजीतसिंह के गुप्तावस्था से बाहर आने के बाद से सन् १६९३ ई० तक दुर्गादास ने ही सम्भवतः प्रधान के पद पर कार्य किया था। सन् १६९३ ई० में दुर्गादास के अप्रसन्न हो जाने पर अजीतसिंह ने चांपावत उदयसिंह को अपना प्रधान नियुक्त किया। सम्भवतः सन् १६९७ ई० (संवत् १७५४) में दुर्गादास ने पुनः यह कार्य भार सम्भाला। केवल एक वर्ष बाद सन् १६९८ ई० में जब वह पाटन की फ़ौजदारी पर चला गया, तो उदयसिंह दूसरी बार राज्य का प्रधान नियुक्त हुआ। अजीतसिंह ने राज्यारोहण के बाद राठौड़ दुर्गादास को सम्भवतः जुलाई सन् १७०७ ई० में प्रधान नियुक्त किया। वह लगभग एक वर्ष तक इस पद पर कार्य करता रहा। ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० को चांपावत मुकुन्ददास को यह पद सौंपा गया। इसके बाद सन् १७१३-४ ई० में भंडारी भगवानदास तथा एक वर्ष बाद सन् १७१४-५ ई० में भंड़ारी खींवसी जोधपुर राज्य के 'प्रधान' नियुक्त हुये।[३०]

मुग़ल शासक से जब जोधपुर के राजाओं का सम्बन्ध बहुत बढ़ गया, और यहाँ के शासक बहुधा बादशाह की सेवा में रहने लगे, तब 'तन-दीवान' नामक एक और पद की सृष्टि की गई। यह पदाधिकारी महाराजा के साथ बाहर रहा

२५. ख्यात. भाग २; १४७, १४६, १६१, १६३ व १६६; मूंदियाड़. २३५, २३७; २४७, २४६ व २५०।
२६. मूंदियाड़. २३५।
२७. ख्यात भाग २, १४६ व १६६; मूंदियाड़. २३७, २५०. २५१।
२८. टाड. भाग १, १२०; शर्मा स्टडीज़. २०१; जसवन्तसिंह. १५५।
२९. टाड. भाग १, १५०; शर्मा स्टडीज़. २००; जसवन्तसिंह. १५४।
३०. सोहृदा. १८; ख्यात-भाग २, ६१, १४७, १५० व १६४; मूंदियाड़. २०५, २०७. २३५ व २४६; अजितोदय. सर्ग १६, श्लोक ६-११।

करता था। स्वदेश के बाहर रहते हुए राजा बादशाह की आज्ञा से जहाँ और जब भी अपनी सेना भेजता था, तब 'तन-दीवान' ही उस सेना का संचालन करता था। यदि राजा स्वयं युद्ध-क्षेत्र में उपस्थित होता था तो 'तन-दीवान' उसे परामर्श देता था। मुग़ल-दरबार में प्रशासकीय विभाग के सभी कर्मचारियों के नक़द वेतन सम्बन्धित कार्य करने वाले पदाधिकारी को 'दीवाने-तन' नाम से पुकारा जाता इस प्रकार नाम की समानता होने पर भी दिल्ली के 'दीवाने-तन' तथा जोधपुर के 'तन-दीवान' के अधिकार व कर्त्तव्य एक से नहीं थे।[३१] अजीतसिंह के समय में अक्टूबर, सन् १०७६ ई० में भंडारी भाईदास देवराजोत तथा सन् १७१०-१ ई० में भंडारी खीमसी रासोत को 'तनदीवान' के पद पर नियुक्त किया गया था।[३२]

जोधपुर राज्य की सेना के संगठन व नियन्त्रण के लिये 'बख्शी' नामक पदाधिकारी हुआ करता था। उसके अधिकार व कर्त्तव्य लगभग वही थे जो मुग़ल सेना में 'मीर बख्शी' के थे। जिस प्रकार मुगल-सम्राट के अधीनस्थ जागीरदार उसे सैनिक सहायता देते थे, उसी प्रकार जोधपुर राज्य के जागीरदार भी अपने महाराजा की सेवा में निश्चित संख्या में सैनिकों को भेजा करते थे। उनकी यह सैनिक-सेवा 'चाकरी' कहलाती थी। इस प्रकार महाराजा की सेना मुख्यतः इन जागीरदारों के सहयोग पर ही निर्भर थी। परन्तु उसकी एक अपनी सेना भी हुआ करती थी। महाराजा तथा जागीरदारों की सेना का निरीक्षण करना, जागीरदारों की सेना तथा उनकी सेवाओं का विवरण राजा को देना, तथा राज्य के सभी अधिकारियों को वेतन देना—बख्शी के प्रमुख कार्य थे।[३३] अजीतसिंह ने पंचोली हरकिशन रामचंदोत को ४ जुलाई, सन् १७०८ ई० को अपना बख्शी नियुक्त किया था।[३४]

कहा जाता है कि महाराजा अजीतसिंह ने अपने नाम की मुद्रा चलाई थी और निजी नाप व तौल के साधन भी चलाये थे।[३५] परन्तु किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

राजा की आय के विभिन्न साधन थे। उसकी निजी भूमि होती थी, जिसे वह पट्टे पर दिया करता था और इसके बदले में पट्टेदारों से निर्धारित राशि लेता था। भूमि-कर आय का अन्य साधन था। इसकी दर उपज की केवल $\frac{1}{3}$ व $\frac{1}{2}$ हुआ करती थी, तथा अधिकतर इसे अनाज के रूप में ही लिया जाता था। राज्य में से होकर जाने-वाली व्यापारिक वस्तुओं पर भी राजा कर लेता था। इसके अति-

---

३१. हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिज़ाम राज मारवाड़; अध्याय ११; इब्न हसन २०६; शर्मा, स्टडीज़ २०१।

३२. ख्यात. भाग २, १४६; मूंदियाड़. २३७।

३३. ब्याव री बही नं. १; हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिज़ाम राज मारवाड़, अध्याय ३३; हरदयालसिंह, तवारीख़ जागीरदारान राज मारवाड़।

३४. ओहदा. १३; ख्यात. भाग २, १४७; मूंदियाड़. २३५।

३५. टाड. भाग २, ६६।

रिक्त उसके जागीरदार समय-समय पर राजा को भेंट व नजराना भी दिया करते थे।[३६] जिस प्रकार मुगल-दरबार में मनसब व जागीर मिलने पर लोग बादशाह को पेशकश नज़र किया करते थे, उसी प्रकार जोधपुर राज्य में भी जब राजा किसी व्यक्ति को जागीर देता था तो वह उसे पेशकश देता था। फ़रुखसियर के शासनकाल में २१ अगस्त, सन् १७१८ ई० को जब अजीतसिंह को राज राजेश्वर की पदवी मिली थी, उस समय उसने इस पेशकश का नाम 'हुक्मनामा' कर दिया था।[३७] अजीतसिंह के समय में 'तागीरात' नामक एक अन्य कर भी आरम्भ हुआ था। उसकी बाल्यावस्था में मारवाड़ पर शाही अधिकार हो गया था; परन्तु वहाँ की प्रजा राजा व सरदारों को ही अपना असली मालिक समझती थी और वह सम्भवतः राजा के खर्च के लिये कुछ रुपया प्रतिवर्ष सरदारों को दिया करती थी, और इसके बदले में राठौड़ सरदार अपने सैनिकों के आक्रमण से प्रजा की रक्षा करते थे। प्रजा द्वारा दी गई इस राशि को 'तागीरात' कहा जाता था। जब अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया तो इस राशि को 'हुक्मनामा' में मिला दिया गया।[३८]

जोधपुर राज्य में न्याय व्यवस्था का भी समुचित प्रबन्ध था। शासन की सबसे छोटी इकाई गाँव था जहाँ न्याय का अधिकार पंचायत को था। धन सम्बन्धी झगड़ों का निर्णय धर्मशास्त्रों के आधार पर होता था और अन्य झगड़े रीति-रिवाज के अनुसार निर्णीत किये जाते थे। पारस्परिक लड़ाई-झगड़ों को व्यक्तिगत अपराध समझा जाता था और उन पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। लोग आपस में ही इसका फ़ैसला कर लिया करते थे।[३६] परगनों में न्याय का कार्य हाकिम किया करते थे। उन्हें दीवानी व फौजदारी दोनों अधिकार प्राप्त थे। हाकिम के निर्णय से असन्तुष्ट होने पर प्रार्थी को 'अदालत रा दारोगा' नामक अधिकारी के पास अपील करने का पूरा अधिकार था। इसके निर्णय के विरुद्ध 'दीवान' के पास अपील की जा सकती थी। न्याय की सर्वोच्च शक्ति राजा के हाथ में थी। न्याय कार्य अधिकतर मौखिक होते थे और लिखा पढ़ी कम होती थी।[४०]

इसी प्रकार अजीतसिंह के समय में प्रशासन के सभी विभागों का समुचित प्रबन्ध था। यद्यपि यहाँ की शासन-प्रणाली पर मुग़ल शासन-प्रणाली का प्रभाव बहुत बढ़ चुका था, तथापि स्थानीय परम्परायें पूरी तरह समाप्त नहीं हुई थीं,

---

३६. आईन. भाग २. २७३; सरन १२६,१२७ टि०, १३०-१; एग्रेरियन सिस्टम आव मुस्लिम इंडिया. ११६; शर्मा, स्टडीज. २०१; टाड- भाग १, १२६-३०; पूर्व. ६७; जयसिंह. १८, १६-२०; जसवन्तसिंह ७।

३७. हरदयालसिंह, तवारीख जागीरदारान राज मारवाड़; रेउ. भाग २, ६२८-६।

३८. हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिजाम राज मारवाड़. ४४०; रेउ. भाग २, ६२६।

३६. शर्मा, स्टडीज़.२०१; टाड- भाग १, ११६-२०; जसवन्तसिंह, १५५।
न्याव री बही नं० १ में भी लिखा है कि दंड धर्मशास्त्र के अनुसार दिया जाता था।

४०. हरदयाल सिंह, मजमूए हालात व इन्तिजाम राज मारवाड़ ६८७; न्याव री बही नं० १।

यहाँ के पदाधिकारियों के अधिकार व कर्त्तव्य स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार ही निश्चित किये जाते थे।

(ख) शासक व सामन्त :—

मुगल शासकों के सम्पर्क में आने से पूर्व राजपूत शासक तथा उनके सामन्तों के बीच अधिकारी व अधीनस्थ का प्रश्न नहीं था। जिस प्रकार राजा का अधिकार एक निश्चित भू-प्रदेश पर था, उसी प्रकार सामन्तों के पास भी अपनी-अपनी जागीरें हुआ करती थीं। राजा की ही भाँति अपनी जागीर पर सामन्त का वंशानुगत अधिकार होता था। चूँकि जागीर उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति थी और उनकी शक्ति का आधार थी, अतः जिन व्यक्तियों के पास जागीर नहीं थी वे राजा से जागीर पाने, तथा जिनके पास जागीर थी वे उसे बढ़वाने के लिये प्रयत्नशील रहते थे। राजा जागीरदारों से ऊँचा व्यक्ति नहीं समझा जाता था। वरन् शासक व सामन्त में परस्पर भ्रातृत्व व समानता का सम्बन्ध था। अपने क्षेत्र में सामन्त पूर्ण स्वतन्त्र थे। फलतः वे किसी के आश्रित रहना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझते थे। उनकी इस प्रवृति के कारण जब भी उन्हें अवसर मिलता था, वे अपनी शक्ति बढ़ा लिया करते थे और कभी-कभी राजा को निर्बल पाकर उसकी उपेक्षा भी कर देते थे। परन्तु जब वे मुग़ल-बादशाह के सम्पर्क में आये, तो जिस प्रकार उनकी शासन-प्रणाली मुग़ल शासन-पद्धति से प्रभावित हुई, उसी प्रकार शासक एवं सामन्त के पारस्परिक सम्बन्ध में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ और राजपूत शासक भी मुग़ल-सम्राट की भाँति अपने जागीरदारों पर प्रभुत्व जमाने की चेष्टा करने लगे।[४१]

अन्य सभी राजपूत राज्यों की भांति जोधपुर राज्य में भी आरम्भ में शासक एवं सामन्तों का पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण था। राव गांगा के समय (सन् १५१५-१५३२ ई.) में यहां के सरदार बहुत शक्तिशाली हो गये थे और स्वतन्त्र बन बैठे थे।[४२] उनकी इस प्रवृत्ति से जोधपुर के शासकों की चिन्ता स्वाभाविक थी। फलतः जैसे ही वे मुग़ल-सम्राट के सम्पर्क में आये और उन्हें बादशाह तथा उसके सरदारों के पारस्परिक सम्बन्ध का ज्ञान हुआ, उन्होंने भी अपने सामन्तों के प्रति अपने व्यवहार में परिवर्तन करना आरम्भ कर दिया और धीरे-धीरे दोनों की आपसी दूरी बढ़ने लगी।[४३]

मोटा राजा उदयसिंह के समय (सन् १५८३–१५९५ ई.) में 'पेशकश' या 'नज़राना' देने की प्रथा का चलन हुआ, जिसके अनुसार जागीरदार की मृत्यु हो जाने पर उसके पुत्र को कुछ धन-राशि राजा को भेंट करके जागीर का नया पट्टा प्राप्त करना पड़ता था। यह स्पष्टतया मुग़ल प्रभाव था। जोधपुर के राजा स्वयं भी

४१. जसवन्तसिंह १५६; जयसिंह १८।
४२. पूर्व २२ व २७; जसवन्तसिंह १५६।
४३. जसवन्तसिंह १५६।

शासन पर अधिकार रखने के लिये बादशाह को 'नजराना' दिया करते थे। अजीत-सिंह के राज्यारोहण में उसे पेशकश या नजराना के स्थान पर 'हुक्मनामा' कहा जाने लगा था।[४४] जोधपुर के राजा इस विषय में विशेष सजग रहने लगे कि सामन्तों की शक्ति इतनी न बढ़ जाय कि वे विद्रोही हो जायं। इसी कारण जागीर देते समय उस जागीर से होने वाली आय पर भी ध्यान दिया जाने लगा और जागीरदार को पट्टा देते समय उस आय का उल्लेख भी पट्टे में किया जाने लगा[४५]। अजीतसिंह द्वारा दिये गये पट्टों में न केवल सम्पूर्ण जागीर का ही विवरण मिलता है, वरन् जागीर के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न गांवों की आय का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[४६]

शासक व सामन्तों के पारस्परिक सम्बन्ध में इस प्रकार का अन्तर आ जाने का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि दोनों में सदियों से चली आ रही बन्धुत्व की भावना धीरे-धीरे समाप्त हो गई। अब शासक न केवल सामन्तों से, वरन् राजवंश के अन्य सदस्यों से भी ऊंचा माना जाने लगा था। धीरे-धीरे यह पारस्परिक दूरी बढ़ती गई और सामन्तों का एक अलग वर्ग पनपने लगा। जोधपुर के राजाओं ने उनकी शक्ति कम करने के लिये तथा इन्हें अपने प्रति स्वामिभक्त बनाये रखने के लिये जागीरदारों को कई भागों में विभाजित किया। प्रथम श्रेणी में वे सामन्त आते थे, जो शासक के निकट सम्बन्धी होने के कारण जागीरें प्राप्त करते थे। दूसरी श्रेणी के सामन्त वे थे जिन्हें 'मुन्ड कटाई' (राजा के लिये युद्ध करना) के बदले में जागीरें दी जाती थीं। जिन्हें राजा प्रसन्न होकर जागीरें दिया करता था, वे सामन्त 'इनामदार' कहलाते थे। इन तीनों के अतिरिक्त 'भूमिया' नामक एक अन्य श्रेणी भी थी। इसमें वे व्यक्ति थे जिनके पूर्वजों को राजा ने किसी पद पर कार्य करने के बदले में भूमि दी थी, और वह पद वंशानुगत हो गया और साथ ही साथ दी हुई भूमि पर अधिकार भी वंशानुगत हो गया[४७]।

राजपूताने के सभी राज्यों में सामन्त आजीवन राजा की सेवा में प्रस्तुत रहते थे। राजा जब जिस स्थान पर चाहे—देश अथवा विदेश—उनकी सेवा मांगने का अधिकार रखता था। राज्य की रक्षा व प्रतिष्ठा के लिये सामन्तों का एक समूह सदैव राजधानी में उपस्थित रहा करता था। थोड़े दिन उपरान्त जब इन सामन्तों को अपनी जागीर को लौटने की अनुमति मिलती थी, तो उनके स्थान पर दूसरा समूह राजधानी में आ जाया करता था। राजा जब कभी स्वयं सैन्य संचालन करता था तो सभी सामन्तों का एकत्र होना अनिवार्य था। सामन्त बिना अवकाश लिये दरबार से अनुपस्थित नहीं हो सकते थे। राजा के साथ वे शिकार पर जाया करते

---

४४. हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिजाम राज मारवाड़ ४३९-४०; हरदयालसिंह, तवारीख जागीरदारान राज मारवाड़; शर्मा, स्टडीज १९९; जसवन्तसिंह १५७।

४५. हरदयालसिंह, मजमूए हालात व इन्तिजाम राज मारवाड़, अध्याय ११; शर्मा, स्टडीज १९९।

४६. रा. पु. बी. में अजीतसिंह द्वारा दिये गये बहुत से पट्टों की नकलें हैं।

४७. शर्मा, स्टडीज १९९-२००; पूर्व ८९; जसवन्तसिंह १५६-७।

थे, और युद्धों में अथवा शाही दरबार में भी राजा अपनी इच्छानुसार उन्हें साथ ले जाया करता था। राजा की कन्या का विवाह अथवा शत्रु का आक्रमण होने पर सामन्तों को राजा को आर्थिक सहायता देनी पड़ती थी।[४८] इस प्रकार सामन्तों को पूर्णरूप से अपने अधीन रखने के साथ-साथ राजा समय-समय पर इनाम व जागीरें देकर उन्हें सन्तुष्ट भी रखा करते थे। प्रधान मंत्री, अन्य उच्चाधिकारियों, विभिन्न परगनों के हाकिम तथा राजा के नायब सूबेदार अथवा नायब फ़ौजदार का चुनाव इन्हीं सामन्तों में से किया जाता था।[४९]

---

४८. टाड भाग १, १२१, १२८ व १३०-१।

४९. जसवन्तसिंह १५९।

१०

साहित्य एवं कला तथा सामाजिक दशा

(क) साहित्य :

राजस्थान की वीर प्रसविनी भूमि ने जगत प्रसिद्ध वीरों को ही जन्म नहीं दिया वरन् साहित्य के क्षेत्र में भी वह प्रसिद्ध कवियों की धात्री रही है। राजपूताना के अन्य राज्यों की भांति जोधपुर राज्य में भी साहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इस परम्परा का प्राचीनतम प्राप्य ग्रन्थ 'वीरमायण' है, जिसकी रचना ढाढी जाति के बादर या बहादर नामक व्यक्ति ने की थी। महाराजा गजसिंह से पूर्व बारहठ आशानन्द, दुरसा जी आढ़ा, ईसरदास तथा माधोदास दधवाड़िया आदि अनेक कवि यहाँ हुए, परन्तु सर्वाधिक ख्याति राजरानी मीरा को ही प्राप्त हुई। गजसिंह के समय में इस क्षेत्र में अधिक प्रगति हुई। गाडण शाखा का चारण कवि केशवदास, हेम कवि, हरिदास बानावत तथा बारहठ राजसी उसके समय के प्रसिद्ध कवि थे। महाराजा की प्रशंसा में केशवदास ने 'गुण-रूपक' तथा हेमकवि ने 'गुण भाषा चरित्र' की रचना की थी।

जोधपुर राज्य की यह साहित्यिक परम्परा महाराजा जसवन्तसिंह के समय में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई। जसवन्तसिंह स्वयं एक उत्कृष्ट कवि था, और उसका स्थान रीतिकालीन कवियों में बहुत ऊँचा है। 'भाषा-भूषण' उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति है जिसमें अलंकारों का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है और अलंकारों के लक्षण के साथ-साथ उदाहरण भी दिये गये हैं। 'भाषा भूषण' के अतिरिक्त 'अपरोक्ष-सिद्धान्त', 'अनुभव-प्रकाश', 'आनन्द-विलास', 'इच्छा-विवेक', 'प्रबोध-चन्द्रोदय', 'पूली-जसवन्त संवाद', 'फुटकर-दूहा संग्रह', 'सिद्धान्त-सार', और 'सिद्धान्त-बोध' नामक वेदान्त और तत्व-ज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ भी उसने लिखे।

जसवन्तसिंह का मन्त्री मुहणोत नैणसी राजस्थान के साहित्यकारों में उच्च स्थान का अधिकारी है। उसके द्वारा रचित 'ख्यात' में राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, बघेलखण्ड एवं बुन्देलखंड का इतिहास है। इसके अन्तिम भाग—'जोधपुर रा परगना री विगत' में जोधपुर राज्य के परगनों व गांवों का ऐतिहासिक व भौगोलिक वर्णन तथा राठौड़ों की विभिन्न जातियों का विस्तृत वर्णन है। जसवन्तसिंह के आश्रित कवियों में से दलपति मिश्र ने 'जसवन्तउद्योत' की रचना की, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। नरहरिदास बारहठ, नवीन एवं

निधान महाराजा के अन्य आश्रित कवि थे। इनमें से प्रथम नरहरिदास ने 'अवतार-चरित्र', 'दसमस्कन्ध भाषा', 'रामचरित्र कथा', 'अवतार-गीता', 'नरसिंह अवतार-कथा' आदि अनेक भक्ति सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की और उसे काफ़ी ख्याति प्राप्त हुई। जसवन्तसिंह के आश्रय से बाहर भी जोधपुर में कई कवि हुए जिनमें से वृन्द का नाम उल्लेखनीय है। उसकी 'सतसई' साहित्य की अमूल्य निधि है।[1]

इस प्रकार महाराजा अजीतसिंह के शासन-काल तक साहित्य की यह धारा पूर्ण पल्लवित हो चुकी थी। चूँकि अजीतसिंह का सम्पूर्ण जीवन युद्ध एवं संघर्षों में ही व्यतीत हुआ था, अतः इस काल में हमें साहित्य की प्रगति में वह तीव्रता दृष्टिगत नहीं होती जो उसके पिता के समय में थी। यद्यपि इस काल के साहित्य-कारों में कोई भी उच्चकोटि का विद्वान न था, तथापि अजीतसिंह अपने वंशानुगत साहित्य-प्रेम से वंचित नहीं था। उसने यथासम्भव इस साहित्यिक परम्परा के विकास में योगदान दिया और अपने पिता की भाँति कई ग्रन्थों की रचना की। यद्यपि उसकी रचनाओं को मीराबाई, जसवन्तसिंह तथा महाराजा मानसिंह की कृतियों की भाँति प्रसिद्धि प्राप्त न हो सकी, तथापि उसकी साहित्य-साधना अपना विशेष महत्त्व रखती है।

महाराजा अजीतसिंह की सर्वश्रेष्ठ रचना 'गुणसार'[2] है। यह रचना एक वृहद् ग्रन्थ न होकर अनेक रचनाओं का संग्रह है।[3] आरम्भिक चौबीस दोहों में कवि ने गणेश एवं शक्ति की वंदना की है। इसके उपरान्त हिंगुलाज देवी की स्तुति की गई है। गुणसार की अगली रचना 'देवी चरित्र शुंभ-निशुंभ-वध' में शुंभ व निशुंभ नामक राक्षसों के विरुद्ध देवताओं का हिंगुलाज देवी से सहायता माँगना,

---

१. जोधपुर राज्य की साहित्यिक परम्परा के विकास तथा जसवन्तसिंह के समय में साहित्य की परम्परा के विस्तार के लिये देखिये डॉ० एन. सी. राय. का अप्रकाशित शोध-ग्रन्थ- 'लाइफ एण्ड टाइम्ज़ ऑव महाराजा जसवन्तसिंह' अध्याय ८ खंड 'क'।

२. रेउ. भाग १, २१; अगरचन्द नाहटा–'महाराजा अजीतसिंह की अन्य रचनाएँ', मरु-भारती, वर्ष १०, अंक ४; नारायणसिंह भाटी, परम्परा, अंक १७, भूमिका, ११।

रिपोर्ट (सन् १९०२ ई., क्र.सं. ८३); विवरण (३); खोज, (देवी. ५); राज. भाषा (२७९); राज. साहि. (२३४); पिंगल (१२३); मिश्र (भाग २, ५५६-७); लालस (१५६) ने इस रचना का नाम 'गुणसागर' लिखा है। परन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि कवि ने स्वयं ही रचना के अन्त में इसका नाम 'गुणसार' स्वीकार किया है–

"प्रथम वरण श्रृंगार को, राज्य नीत निरधार।
ज्योग जुगति यामें सवै, ग्रंथ नाम गुणसार।"
(गुणसार-ग्रन्थ संख्या १५, पुस्तक-प्रकाशन जोधपुर, १६१।)

३. नारायणसिंह भाटी, परम्परा, अंक १७, भूमिका, १२-३।

रिपोर्ट (सन् १९०२ ई. क्रम-संख्या ८३); विवरण (३); खोज (देवी ५); राज. भाषा (२७९); राज. साहि. (२३४); पिंगल (१२३); मिश्र (भाग २, ५५६-७), लालस (१५६) आदि लगभग सभी ग्रन्थों में स्वीकार किया गया है कि गुणसार एक वृहद् ग्रन्थ है। परन्तु गुणसार के अध्ययन करने से इस मत की पुष्टि नहीं होती।

देवी का उनकी सहायता के लिये आना, तथा राक्षसों को मारना वर्णित है। चौथी रचना 'सर्वांग-रक्षा-कवच' में देवी की स्तुति, उसकी सर्वव्यापकता तथा कृपा का वर्णन है। 'भवानी-सहस्रनाम' गुणसार ग्रन्थ की पांचवी रचना है। इसमें अजीतसिंह ने देवी को अन्य सभी देवताओं में श्रेष्ठ बताकर उसके सहस्र नामों का वर्णन किया है। अगली रचना केवल पन्द्रह छन्दों की है, जिसका नाम 'भवानी-स्तुति' है। सातवीं रचना 'दुहा श्री ठाकुरां रा' में अजीतसिंह ने कृष्ण-चरित्र के दो प्रसंगों यमुना तट पर गोपियों का चीर-हरण तथा रास-क्रीड़ा का सुन्दर वर्णन १७१ दोहों में किया है। अगली रचना 'दुहा श्री अजीतसिंह जी रा कहा' में कवि ने ११८ दोहों में अपने जन्म की कथा का वर्णन किया है और अपने को देवी का अवतार बताया है। गुणसार की नवीं व अन्तिम पद्य-रचना है— 'निर्वाण दुहा'। इसमें मोक्ष प्राप्त करने से सम्बन्धित दोहे हैं और भक्ति को मोक्ष-प्राप्ति का साधन माना गया है।

इन नौ रचनाओं के अतिरिक्त गुणसार में 'रतना भंवर रतनावतीरी बात' नामक एक कथा भी संगृहीत है। यह मुख्यतः गद्य में है, परन्तु बीच-बीच में दोहे भी लिखे हुए हैं। इसमें निम्नलिखित शीर्षकों में अनेक प्रसंगों का वर्णन है—

(क) रागों का वर्णन
(ख) राजा सुमति का ऋषीश्वरों को उपदेश
(ग) गीता का दसवां अध्याय
(घ) पापी की गति
(ङ) भागवत का चौथा स्कंध
(च) ध्रुव वर्णन
(छ) एक धार्मिक नृप की कथा
(ज) महाभारतीय-पञ्च-स्थिरता
(झ) एकादशी कथा
(ञ) हेमाद्रि प्रयोग
(ट) माता का सतीत्व, पिता की भक्ति स्वतन्त्र क्रिया
(ठ) हास्य-विनोद
(ड) ऋतुओं के दोहे
(ढ) स्वप्नों के दोहे
(ण) पपीहे के दोहे
(त) पखवाड़े के दोहे
(थ) परस्पर सम्मति पत्री
(द) पति आगमन, वसंत वर्णन
(ध) कृष्ण चरण पुण्याख्यान
(न) सिंहादि युद्ध वर्णन
(प) पुत्र को विविध शिक्षा
(फ) हिंगलाज स्तुति
(ब) गंगा स्तुति[४]

'गज-उद्धार-ग्रन्थ' अजीतसिंह की द्वितीय महत्त्वपूर्ण रचना है।[५] यह भागवत की कथा पर आधारित है। मध्यकालीन भक्ति साहित्य में भगवान के नाम-

---

४. गुणसार-ग्रन्थ संख्या ६९, पुस्तक प्रकाश जोधपुर।
नारायणसिंह भाटी (परम्परा, अंक ९०, भूमिका, पृ. २२-३) ने भी इसका ही विवरण दिया है।

५. यह ग्रन्थ 'परम्परा' के ९० वें अंक में श्री नारायणसिंह भाटी के सम्पादन में प्रकाशित हो गया है।

रूपों और चमत्कारों का वर्णन करने की जो परिपाटी पाई जाती है, 'गज-उद्धार-ग्रन्थ' उसी परम्परा की एक कड़ी प्रतीत होता है। कवि ने गज के माध्यम से अत्यन्त मार्मिक आत्मनिवेदन किया है।

अजीतसिंह की अन्य उल्लेखनीय रचना 'भाव-विरही' है।[६] सन् १७११-२ ई० (संवत् १७६८) में इसकी रचना हुई थी।[७] इसमें नायक व नायिका के विरह सम्बन्धी तिरासी दोहे हैं।[८] प्राप्य प्रतिलिपि में इन दोहों के बाद कुछ पृष्ठ रिक्त हैं, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह रचना अपूर्ण है।

इन रचनाओं के अतिरिक्त अजीतसिंह ने बहुत से दोहों की रचना भी की। उसके लिखे हुये लगभग दो सौ चौंतीस दोहे 'अजीतसिंह रे विरचे रे दोहे' के नाम से प्रसिद्ध हैं।[९] इन दोहों में अजीतसिंह के संकट के दिनों में सहायता करने वाले तथा विरोधी बने रहने वाले सरदारों का उल्लेख किया गया है। प्रसंगवश कहीं-कहीं घटनाओं का भी संकेत मिलता है। यह कृति भी अपूर्ण प्रतीत होती है, क्योंकि इसमें मोहकमसिंह द्वारा जालोर पर अधिकार करने का उल्लेख है, परन्तु अजीतसिंह का पुनः वहां अधिकार कर लेना वर्णित नहीं है।

'दुर्गासप्तशती का भाषानुवाद', 'महाराजा श्रीअजीतसिंह जी री कविता' व महाराजा अजीतसिंह जी रा गीत' नामक तीन अन्य रचनाएँ भी अजीतसिंह द्वारा लिखित कही जाती हैं।[१०] मिश्र-बन्धुओं ने 'राजारूप का ख्याल' नामक एक अन्य कृति का उल्लेख भी किया है।[११] परन्तु ये सभी रचनाएँ अप्राप्य हैं।

अजीतसिंह का सर्वाधिक रुचिकर विषय हिंगुलाज देवी की स्तुति था। सम्भवतः इसका कारण यह था कि वह स्वयं को देवी का अवतार समझता था,

---

६. इस रचना के केवल चार पत्र गुणसार ग्रन्थ (ग्रन्थ संख्या १६, पुस्तक प्रकाश, जोधपुर) में हैं। रेउ. (भाग १, २१) तथा मेनारिया (राज. भाषा. २७६) ने भी इस रचना का उल्लेख किया है।

७. पिगल (७८) में भाव-विरही का रचना काल सन् १७१३ ई. स्वीकार किया गया है। परन्तु भाव विरही (पत्र २ दोहा १८) में कवि ने लिखा है—

"संवत् सतरह अडसठे। छठ बनें सिव……… ।
सपना में ये ही सज्जन। मुझ मिले करप्पा……… ॥"

इससे स्पष्ट होता है कि इसकी रचना १७११-२ ई. में ही हुई थी।

८. नारायणसिंह भाटी (परम्परा; अंक १७; भूमिका, १२) ने लिखा है—"भाव विरही में भी स्फुट विषयों पर लिखी हुई रचनाएं हैं।" परन्तु इसकी पुष्टि इस रचना की प्राप्य प्रति-लिपि से नहीं होती।

९. सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर में इसकी हस्तलिखित प्रतिलिपि है। मूंदियाड़ की ख्यात व राठोड़ां री ख्यात में ये दोहे पाये जाते हैं।

१०. रिपोर्ट सन् १९०२ ई., क्र० सं. ८६, २०५ व २०८; विवरण १ व ६७; खोज (देवी) ८। १५; पिगल १२३; लालस १५६।

११. मिश्र. भाग १, ५५६-७।

और शक्ति की उपासना किया करता था। इसके अतिरिक्त उसने विविध विषयों पर रचनाएँ की थीं। अजीतसिंह ने विषयों का चुनाव एवं प्रतिपादन बड़ी कुशलता से किया है। धर्म सम्बन्धी विषय प्राचीन होने पर भी, अभिव्यक्ति की सुन्दरता के कारण अपने में एक नवीनता रखते हैं। अजीतसिंह में किसी प्रसंग का वर्णन करने की अद्भुत क्षमता है। 'ठाकुरां रा दूहा' में 'चीर-हरण' प्रसंग में यह अत्यन्त स्पष्ट है। व्यंग्य एवं उपालम्भ का सुन्दर वर्णन 'कंस-वध' प्रसंग में दृष्टिगत होता है। 'गज-उद्धार' में हथिनियों का करुण विलाप, गज और ग्राह का युद्ध, गज की आर्त पुकार आदि स्थलों पर अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक है। शृङ्गार रस के दोनों पक्षों—संयोग व वियोग–, करुण, शान्त एवं वीर रस के सुन्दर उदाहरण महाराजा अजीतसिंह की रचनाओं में पाये जा सकते हैं।

अजीतसिंह की भाषा साहित्यिक स्तर की होते हुए भी कठिन नहीं है। भाषा सर्वत्र विषय एवं प्रसंग के अनुकूल है। उसमें इतना प्रवाह है कि रचनाओं को पढ़ते समय कहीं भी दुरूहता का सामना नहीं करना पड़ता। उसकी भाषा में प्रसाद गुण का प्रभाव है। अजीतसिंह ने गद्य व पद्य दोनों मे रचनाएँ की थीं। राजस्थानी गद्य पर भी उसका पूर्ण अधिकार था।

अजीतसिंह ने अपनी रचनाओं में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया। उसकी रचनाओं में दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि प्रसिद्ध छन्दों के अतिरिक्त सार्दूल विक्रीडित, अनुष्टुप्, आर्या, मनोहर, नाराच, हरिगीतिका, भुजंगी आदि का प्रयोग भी सफलतापूर्वक किया गया है। अलंकारों का भी कहीं-कहीं सुन्दर प्रयोग दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार अजीतसिंह ने अपनी रचनाओं में भावपक्ष व कलापक्ष का जो सुन्दर समन्वय किया उसके आधार पर उसे एक उच्च कोटि का साहित्यकार स्वीकार करना अत्युक्तिपूर्ण न होगा।

अजीतसिंह ने स्वयं रचना करने के साथ-साथ विभिन्न कवियों को अपने आश्रय में रखकर साहित्य की उन्नति में सहयोग भी दिया। भट्ट जगजीवन उसके दरबार का प्रमुख कवि था। उसने संस्कृत भाषा में 'अजितोदय' नामक एक बृहद् ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में बत्तीस सर्गों में अजीतसिंह के जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्पूर्ण घटनाओं का विवरण है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक महत्व-पूर्ण महाकाव्य है।[१२]

बालकृष्ण दीक्षित नामक एक अन्य कवि ने भी अजीतसिंह की प्रशंसा में 'अजितचरित्र' नामक संस्कृत भाषा का ग्रन्थ लिखा। इसमें अजीतसिंह के जीवन

---

१२. रेउ. भाग १, २१; मारवाड़ २११।

इसकी मूल प्रतिलिपि पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में है और भाषानुवाद रा. पु. शो. में बस्ता नं० ४३ में प्राप्य है।

की कुछ मुख्य घटनाओं का प्रशंसायुक्त विवरण है। यह भी सम्भवतः अजीतसिंह का दरबारी कवि था।[13]

इन दोनों संस्कृत के कवियों के अतिरिक्त द्वारकादास दधवाड़िया, हरिदास तथा श्यामराम अजीतसिंह के अन्य प्रमुख आश्रित कवि थे। द्वारकादास, जोधपुर राज्य के प्रसिद्ध कवि माधोदास दधवड़िया का पुत्र था। सन् १७१५–६ ई० में उसने 'महाराजा अजीतसिंह री दवावैत' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जिसमें महाराजा के शौर्य, पराक्रम और वैभव का सुन्दर वर्णन है। इसके साथ ही इसमें महाराजा की शासन व्यवस्था सम्बन्धी सूचनाएँ तथा जोधपुर के पूर्ववर्ती कवियों का संकेत भी मिलता है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है। अजीतसिंह ने इस रचना पर प्रसन्न होकर द्वारकादास को जैतारण परगने में स्थिति बासनी नामक गाँव प्रदान किया था। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त द्वारकादास के फुटकर गीत भी पाये जाते हैं। द्वारकादास की भाषा सरल है, तथा उसकी रचनाओं में सर्वत्र प्रसाद गुण पाया जाता है।[14]

हरिदास भाट का जीवन सम्बन्धी इतिवृत अंधकार में है। केवल इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह महाराजा का आश्रित कवि था। हरिदास ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में अजीतसिंह-चरित्र' नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसमें अजीतसिंह के जीवन के प्रारम्भिक अट्ठाईस वर्षों की घटनाओं का वर्णन है। इसके अतिरिक्त 'अमर बत्तीसी' तथा 'राव अमरसिंह गजसिंघोत रा रूपक सवैया' उसकी अन्य रचनाएँ हैं। डिंगल भाषा का यह एक अच्छा कवि था।[15]

श्यामराम अथवा रामश्याम कायस्थ भी अजीतसिंह का एक अन्य आश्रित कवि था। इसका रचना-काल सन् १७२०–१ ई० के लगभग माना जाता है। 'ब्रह्माण्ड–वर्णन' इसका प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें भूगोल, खगोल, स्वर्ग, पाताल आदि का वर्णन है।[16]

अजीतसिंह के समय में उसके आश्रय से बाहर भी कई कवियों का प्रादुर्भाव जोधपुर में हुआ। इन कवियों में से रामस्नेही पंथ की रैणशाखा के प्रवर्तक दरियाव जी का नाम प्रमुख है। दरियाव जी ने सन् १७१२–३ ई० के लगभग अपने गुरु तेमदास से दीक्षा ली थी, और तदुपरान्त रैण नामक स्थान पर अपनी गद्दी स्थापित

---

१३. रेउ. भाग १, २१; मारवाड़ २११।
इसकी प्रतिलिपि पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में प्राप्य है।

१४. लालस १५७।
'दवावैत' की प्रतिलिपि रा. पु. बी. में हैं।

१५. राज. भाषा १७९-८०; राज साहि २३०; पिंगल १६८; डिंगल ४४; डि साहि (भूमिका) १८।

१६. मिश्र. भाग २, ५७८; विवरण १८९; खोज (देवी) १३; रिपोर्ट सन् १९०२ ई. क्र० सं. ८०; रेउ. भाग १, २१ टि.।

की जो आजतक विद्यमान है। यहाँ पर दरियाव जी का एक बड़ा-सा चित्र रखा है, और चैत्र के महिने की पूर्णिमा को बहुत से लोग इनके दर्शन के लिये आते हैं। कुछ लोग इन्हें मुसलमान मानते हैं, परन्तु इनके शिष्य इसे स्वीकार नहीं करते हैं। इन्होंने लगभग दस हजार पद के 'वाणी' नामक एक बृहद् ग्रन्थ की रचना की थी। दरियावजी की भाषा सुव्यवस्थित एवं कवित्वपूर्ण है।[१७]

अजीतसिंह के समय में मेड़ता परगने में माधवराम, रूपजी एवं तिलोकराम नामक कवि हुये। माधवराम ने 'शक्ति-भक्ति-प्रकाश', 'शंकर-पचीसी' एवं 'माधवराम-कुण्डली' नामक ग्रन्थों की रचना की।[१८] रूपजी ने सन् १६८२–३ ई० के लगभग नायिका-भेद से सम्बन्धित 'रसरूप' तथा तिलोकराम ने सन् १७१०–१ ई० के लगभग 'रस-प्रकाश' व 'भावदीपक' नामक ग्रन्थ लिखे।[१९] सन् १७२२–३ ई० के लगभग पीपाड़ के जागीरदार राठौड़ माधोसिंह के आश्रय में बेनीराम नामक एक जैन मताव-लम्बी कवि हुआ, जिसने 'जिनरस' नामक ग्रन्थ की रचना की।[२०] एक अन्य कवि सतीभाटदास द्वारा रचित सोलह दोहे मिलते हैं। यह दोहे सन् १७०७ ई० में जब अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार किया था, उस समय के हैं, और इनमें महाराजा के यश का वर्णन तथा राजा द्वारा विभिन्न व्यक्तियों को गाँव दिये जाने का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त इस कवि का न तो कोई उल्लेख मिलता है, न अन्य कोई रचना।[२१]

इस प्रकार अजीतसिंह ने अपनी व्यक्तिगत साहित्य-साधना द्वारा तथा विभिन्न कवियों को प्रश्रय देकर जोधपुर राज्य की साहित्यिक परम्परा को आगे बढ़ाने में पूरा सहयोग दिया।

(ख) कला :

(अ) चित्रकला :—

ईसा की १६ वीं शताब्दी में राजस्थान में चित्रकला की नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे 'राजपूत–शैली' के नाम से पुकारा गया। राजपूताने के विभिन्न राज्यों में इस चित्र-शैली का विकास कुछ स्थानीय विशेषताओं के साथ हुआ और राज्य के नाम पर ही वहाँ की चित्र–शैली का नामकरण हुआ जैसे, मेवाड़-शैली, बीकानेर–शैली, किशनगढ़–शैली आदि। अन्य राज्यों की भाँति जोधपुर राज्य में भी अलग चित्र-शैली का विकास हुआ, जो 'जोधपुर–शैली' के नाम से प्रसिद्ध हुई। जोधपुर में इस चित्र–शैली का प्रादुर्भाव राव मालदेव के समय में हुआ। मुग़ल

---

१७. राज. भाषा. ३०८-१०; राज. साहि. ८५-६; मिश्र. भाग ४, ५२-३।

१८. विवरण. ११६।

१९. पिंगल १६६-७०; मिश्र. भाग ४, ४५ व ५४।

२०. विवरण. १०२।

२१. यह सोलह दोहे 'अजीतसिंह की चिरवा रे दोहे' नामक हस्तलिखित ग्रंथ (सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर) के अन्त में लिखे हुये हैं।

सम्पर्क में आने के पश्चात् इस स्थानीय चित्र-शैली पर धीरे-धीरे मुग़ल चित्र-शैली का प्रभाव पड़ने लगा।[२२]

बादशाह शाहजहाँ के समय तक चित्रकारों को मुग़ल दरबार में प्रश्रय मिलता रहा; परन्तु औरंगज़ेब के सिंहासनारोहण के उपरान्त शाही दरबार में उनके लिये कोई स्थान नहीं रहा और वे अन्य राज्यों में आश्रय ढूँढने लगे। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह ने कई प्रवीण चित्रकारों को अपने दरबार में प्रश्रय दिया। फलस्वरूप उसके समय के चित्रों में मुग़ल-शैली का प्रभाव अधिक पड़ने लगा। परन्तु स्थानीय कलाकार भी अपना अस्तित्व खोने को तैयार न थे। इस कारण जसवन्तसिंह के समय में स्थानीय चित्र-शैली एवं मुग़ल चित्र-शैली का समन्वित रूप दिखाई पड़ता है। इस काल के चित्रों में चित्रित राजाओं, सामन्तों, उच्च-पदाधिकारियों की वेश-भूषा तथा इमारतों में मुगल-शैली की स्पष्ट छाप है; परन्तु नारियों की वेश-भूषा और रंगों का प्रयोग पूर्णतया स्थानीय चित्र-शैली के अनुसार किया गया है। मुग़ल चित्रकारों के प्रभाव से चित्रों में अंकित रेखाओं में यद्यपि प्रौढ़ता व गाम्भीर्य दिखाई पड़ता है, तथापि उनमें स्थानीय चित्र-शैली की सादगी पूर्ववत् विद्यमान है।[२३] इन दोनों शैलियों के अतिरिक्त चित्रों में कहीं-कहीं दक्षिण भारत की चित्र-शैली का भी संकेत मिलता है। सम्भवतः इसका कारण यह था कि जसवन्तसिंह शाही सेवा के लिये काफ़ी समय तक दक्षिण में रहा था।[२४]

अपने पूर्वजों की भाँति अजीतसिंह ने भी चित्रकला के विकास में सहयोग दिया। उसके राज्य-काल की चित्र-शैली को दो भागों में बाँटा जा सकता है— प्रथम सन् १६७९ ई. से सन् १७१४-५ ई. तक तथा द्वितीय, सन् १७१५ ई. से सन् १७२४ ई. तक। प्रथम काल में जोधपुर राज्य में ठीक उसी शैली का प्रयोग किया जाता रहा जो जसवन्तसिंह के समय में प्रचलित थी। सम्भवत: इसका कारण यह था कि एक ओर तो मुग़ल सत्ता से निरन्तर संघर्ष होता रहा, अतः मुग़ल-चित्र शैली का प्रभाव बढ़ नहीं सका; दूसरी ओर शासक एवं सामन्त सभी युद्ध में व्यस्त होने के कारण स्थानीय चित्र-शैली को प्रोत्साहित न कर सके। फलस्वरूप दोनों चित्र-शैलियों का प्रभाव का क्षेत्र पूर्ववत् बना रहा, और चित्रों में राजपूत व

---

२२. हरमन गोयट्ज, मार्ग, भाग ११. खण्ड २, मार्च १९५८, ४२, ४५-६; पूर्व ९०।

२३. वही, ४६; पूर्व १०९-१० व १३५; जसवन्तसिंह, १८८-९।

२४. सन् १६४० ई. के लगभग चित्रित महाराजा जसवन्तसिंह का एक चित्र इस काल की शैली का सुन्दर उदाहरण है। (हरमन गोयट्ज, मार्ग, भाग ११. खण्ड २, मार्च १९५८, ४५, चित्र संख्या ८) इस चित्र में राजा तथा कुछ सामन्तों के वस्त्र, आभूषण तथा हुक्का पूर्णतया मुग़ल चित्र-शैली के अनुसार बने हुए हैं। दो राजकुमारों तथा परिचारिकाओं के वस्त्र पूर्णतया स्थानीय चित्र-शैली पर आधारित हैं। चित्र में जो भवन चित्रित हैं उसमें इन दोनों शैलियों का मिश्रित रूप दिखाई पड़ता है तथा जसवन्तसिंह की चित्रित पगड़ी दक्षिणी-शैली से प्रभावित है।

मुगल दोनों चित्र-शैलियों का समन्वित रूप चित्रित किया जाता रहा। इस काल के अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। सम्भवतः इसका कारण यही था कि युद्ध में व्यस्त होने के कारण अजीतसिंह न तो इस ओर अधिक ध्यान दे सका और न धन ही लगा सका।[२५]

फर्रुखसियर के शासन-काल में जब महाराजा अजीतसिंह का सम्बन्ध मुगल-दरबार से मैत्रीपूर्ण हो गया, और धीरे-धीरे उनका सम्पर्क बढ़ने लगा, तो स्वाभाविक रूप से स्थानीय चित्र-शैली पर भी मुगल-चित्र-शैली का प्रभाव बढ़ने लगा। फलतः सन् १७१५ ई. से सन् १७२४ ई. में जोधपुर चित्र-शैली का दूसरा रूप प्रकट हुआ। इस समय स्थानीय चित्र-शैली पर मुगल चित्र-शैली पूर्णतया छा गई। जोधपुर के चित्रों में मुगल चित्र-शैली का प्रभाव क्रमिक रूप से धीरे-धीरे परिलक्षित नहीं हुआ, वरन् एकाएक ही चित्रों में मुगल हरम, फव्वारा, तुर्की स्नानागार आदि का चित्रण बहुलता से होने लगा और चित्र पूर्णतया मुगल चित्र-शैली में ही बनने लगे। विषय यद्यपि स्थानीय थे, परन्तु उनका प्रस्तुतीकरण पूर्णतया मुगल था। चित्रों में जोधपुर-शैली का प्रभाव बहुत कम हो गया। इस अकस्मात् परिवर्तन से ऐसा ज्ञात पड़ता है कि अजीतसिंह ने अपने दरबार में मुगल चित्रकारों को अवश्य ही प्रश्रय दिया होगा।[२६]

इस काल के चित्रकारों ने अनेक विषयों का चित्रांकन किया। पाबू जी राठौड़ हूंग जी, जुंझार जी, आदि वीरों की तथा ढोला-मारू, मूमल दे, निहाल दे आदि प्रेमियों की लोक कथाओं का आलेखन हुआ। इनमें से ढोल मारु की कथा यहाँ के चित्रकारों को अधिक प्रिय थी। षट्-ऋतु एवं बारहमासा का चित्रण हुआ, तथा विभिन्न राग-रागिनियों पर आधारित रागमाला चित्र भी अंकित गये। युद्ध के दृश्यों का चित्रण चित्रकारों का अन्य प्रिय विषय था।[२७] राधा-कृष्ण का चित्रण कम किया गया। यदि हुआ भी तो इसमें कृष्ण का वह सुकुमार चित्रण नहीं मिलता, जो कांगड़ा व बूंदी की चित्र-शैलियों में मिलता है। न ही वह मनोहारी प्रवाह है, जो अन्य राज्यों के चित्रों में है।[२८]

व्यक्ति-चित्रों (Portrait) में रुचि पूर्ववत् बनी रहने के कारण महाराजा अजीतसिंह एवं विभिन्न ठाकुरों तथा उनके दरबारियों एवं दरबारों के कई चित्र मिलते हैं। राठौड़ दुर्गादास चित्रकारों को सर्वाधिक प्रिय था, अतः इस योद्धा के कितने ही व्यक्ति-चित्र उपलब्ध हैं जिनमें उसे घोड़े पर चित्रित दिखाया गया है।[२९]

---

२५. हरमन गोएट्ज़, मार्ग, भाग ११, खंड २, मार्च १९५८, ४६।

२६. वही. ४६; शर्मा. २१।

२७. विजय. ३०-१, सत्य. ३१।

२८. विजय. ३२।

२९. वही ३०।

व्यक्ति चित्रों के अतिरिक्त पशु-पक्षियों का भी चित्रण किया गया। जानवरों में घोड़े एवं ऊँट का चित्रण सर्वाधिक हुआ। सम्भवतः इसका कारण जीवन में इनकी विशेष उपयोगिता है। घोड़े मोटे, भरे हुए पट्ठों से युक्त एवं अलंकरण से सज्जित चित्रित होते थे। मयूर का चित्रण बहुत हुआ, परन्तु मयूर बूंदी शैली के मयूरों की भाँति भाव-वाही नहीं थे।[३०]

चित्रों की पृष्ठभूमि में प्रकृति के विभिन्न उपकरणों का प्रयोग किया गया। चित्रों में सरिता, सरोवर, उद्यान और भवनों की सुन्दर छटाएँ देखने को मिलती हैं। वृक्षों में आम का चित्रण सर्वाधिक हुआ। रक्त किसलयों से युक्त आम का चित्रण अपनी निजी विशेषता रखता है।[३१]

पुरुष आकृति सुकुमार न होकर कुछ कठोर दिखाई गई है। इनकी आकृतियाँ क़द में छोटी एवं स्थूलकाय, सिर गोल एवं मस्तक पीछे को झुके हुये, दाढ़ी घनी व मूंछे कान तक खिंची हुई चित्रित की गई हैं। वस्त्रों पर मुग़ल-प्रभाव विशेष-रूप से पड़ा। पुरुष अधिकतर लम्बे जामे पहिने हुये अंकित किये गये। इनकी पगड़ी का चित्रण निजी विशेषता रखता है, ये विशेष भारी एवं ऊँची चित्रित की गईं। कमर में लटकती लम्बी तलवार तथा हाथ में भाले का चित्रण विशेष रूप से मिलता है। सम्भवतः यह राजपूतों की वीर पूजा की भावना का परिणाम है। स्त्रियों की आकृति पुरुषों की अपेक्षा लम्बी दिखाई गई। उनके वस्त्रों एवं आभूषणों पर भी अब मुग़ल-प्रभाव पड़ गया। घाघरे, चोटी आदि में काले फुंदनों का चित्रण अधिकता से किया गया। नेत्रों की खंजनाकृति जोधपुर चित्र-शैली की निजी विशेषता हैं। कभी-कभी तो जोधपुर के चित्रों एवं मुग़ल चित्रों को केवल नेत्र-भेद से ही पहचाना जाता है। झरोखे में बैठी राजकुमारी तथा चौकी पर बैठी सुन्दरियों का भी चित्रण किया गया।[३२]

चित्रों में चटकीले रंगों का प्रयोग किया गया जैसाकि राजपूत-शैली में सर्वत्र मिलता है। जोधपुर में पीला रंग सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ। चित्रों के किनारे लाल एवं उनकी सीमान्त रेखाएं पीले रंग की बनाई गईं। किनारों पर कभी-कभी पक्षियों का भी चित्रण हुआ। बहुधा गोलाकार, घने काले अथवा नीले बादलों का चित्रण किया गया, जिसमें लाल अथवा सुनहरे रंग से विद्युत रेखाएँ सर्पाकार बल खाती हुईं तथा प्रखर प्रकाश से युक्त चित्रित हुईं।[३३] रंगों के सुन्दर प्रयोग के कारण ये चित्र विशेष आकर्षण रखते हैं।

१८ वीं शताब्दी में जोधपुर में रामा, नाथू, छज्जू, कृपाराम आदि कई प्रमुख हिन्दू चित्रकार हुये। इसके अतिरिक्त नूरा, मुहम्मद, सेफ़ू आदि मुस्लिम चित्रकार भी थे।[३४]

---

३०. वही. ३१; सत्य. ३१।
३१. वही. ३० व ३१; सत्य ३१।
३२. वही ३१ व ३२; गैरोला. १६०।
३३. वही. ३१ व ३६; सत्य. ३१।
३४. हरमन गोयट्ज-मार्ग, भाग ११, खंड २, मार्च १९५८, १६; गोपीनाथ ६।

इस प्रकार अजीतसिंह के राज्य के आरम्भिक लगभग छत्तीस वर्षों में यद्यपि चित्रकला के क्षेत्र में विशेष प्रगति नहीं हुई, परन्तु अन्तिम नौ वर्षों में इस क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई। जोधपुर राज्य में मुगल-चित्र-कला से प्रभावित चित्र सबसे अधिक इसी काल में बने। उसके उत्तराधिकारियों के समय में चित्रों में पुनः स्थानीय चित्र-शैली की विशेषताएँ उभरने लगी थीं।

(घ) स्थापत्य-कला :

जोधपुर के शासक स्थापत्य-कला एवं मूर्ति-कला में भी पर्याप्त रुचि रखते थे। जोधपुर का सुदृढ़ किला उनकी कलात्मक अभिरुचि का सुन्दर उदाहरण है। इसकी स्थापना राव जोधा ने सन् १४५९ ई० में की थी।[३५] इसके पश्चात् लगभग सभी शासकों ने इसमें अपनी आवश्यकता एवं रुचि के अनुसार वृद्धि की। राव मालदेव, राजा सूरसिंह तथा राजा गजसिंह जोधपुर के प्रसिद्ध निर्माता हुये हैं। जोधपुर-दुर्ग के अतिरिक्त राज्य के कई प्रमुख स्थानों पर वास्तु-कला के सुन्दर नमूने सुदृढ़ किलों तथा सुन्दर महलों के रूप में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य-भर में स्थान-स्थान पर सुन्दर मन्दिर बने हैं, जो शासकों की कलात्मक रुचि का परिचय देते हैं। न केवल शासक, वरन् उनकी रानियां भी इस क्षेत्र में रुचि रखती थीं, और कई रानियों ने विभिन्न बावड़ियों तथा तालाबों का निर्माण करवाया था।

महाराजा अजीतसिंह की इस क्षेत्र में विशेष रुचि थी। समस्त जीवन-भर राजनीतिक उलझनों में फँसे रहने पर भी उसने अनेक सुन्दर स्मारक बनवाये जो आज भी उसकी कलात्मक रुचि के परिचायक हैं।

अजीतसिंह ने जोधपुर के किले में अनेक इमारतें बनवाईं। किले के छः द्वारों में से दक्षिणी-पश्चिमी कोने पर स्थित फ़तहपोल का निर्माण अजीतसिंह ने सन् १७१८-९ ई० में करवाया था। जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, यह द्वार महाराजा की मुगलों पर विजय का प्रतीक है।[३६] सन् १७१८-९ ई० में 'दौलतखाना' नामक एक बड़े महल का निर्माण महाराजा ने करवाया, जिसे बाद में 'अजीत विलास' के नाम से पुकारा जाने लगा। इसी महल में अजीतसिंह की हत्या की गई थी। इस महल की छत १२-१२ फीट की दूरी पर बने हुये छोटे एवं भारी स्तम्भों पर टिकाई गई थी।[३७] दौलतखाने के ऊपर व मोती-महल के सामने का 'बीच का महल' भी महाराजा ने ही बनवाया था।[३८]

---

३५. रेउ. भाग १, ९२।

३६. मूंदियाड़. २५२; राठौड़ा. ९०; दानेश्वर. २५२; दस्तूर. १४६; रेउ. भाग १, ३२६ टि.; ओझा. भाग ४, खंड २; २२-३।

३७. ख्यात. भाग २, १६८; मूंदियाड़ २५२; राठौड़ा ६१; दानेश्वर २५२; दस्तूर. १४६; रेउ. भाग १, ३२६ टि; ओझा. भाग ४. खंड २, ५९९; एडम-दी वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स. ८४।

३८. दानेश्वर. २५२; दस्तूर. १४६: रेउ. भाग १, ३२६ टि.।

सन् १७११-२ ई० में उसने मुगलों को निकालकर जोधपुर पर पुनः अधिकार कर लेने की स्मृति में 'फतह महल' नामक महल बनवाया था और फतहपोल से गोपाल पोल के बीच उसने दो अन्य महल भी बनवाये थे।[३९] महाराजा ने सम्भवतः सामूहिक भोज के लिये एक 'भोजन-साल'[४०] तथा अपने शयन के लिये 'ख्वाबगाह के महल' का निर्माण करवाया था।[४१] अजीतसिंह ने अपने रनिवास के लिये 'जनाना-महल' बनवाया था जिसमें छोटे-छोटे पृथक्-पृथक् चौबीस निवास स्थान थे। जनाना में एक 'रंग-साल' का भी निर्माण करवाया गया था।[४२] सन् १७११-२ ई० में उसने जोधपुर के किले में स्थित चामुण्डा जी के मन्दिर की मरम्मत भी करवाई थी।[४३]

ऊपर वर्णित सभी भवन जोधपुर के वर्तमान किले में दिखाई नहीं देते। महाराजा हनवन्तसिंह के समय में विभिन्न भवनों के नाम बदल दिये गये, तथा इमारतों में इतना नवीनीकरण कर दिया गया है कि उसमें प्राचीन स्मारकों के चिह्न शेष नहीं रहे हैं। यह प्रक्रिया अभी भी चल रही है। इसके साथ ही जनाना महल व रंगसाल आदि कुछ भवन बन्द भी पड़े हैं।

जोधपुर नगर में महाराजा ने कुछ नये मन्दिरों का निर्माण करवाया तथा पुरानों का जीर्णोद्धार किया। ठाकुर मूलनायक जी का मन्दिर, जो गुदी के मुहल्ले में बरगद के नीचे है, औरंगजेब के राज्य-काल में नष्ट कर दिया गया था, महाराजा ने सन् १७१८-९ ई० में उसका पुनरुद्धार करवाया।[४४]

जोधपुर की जुनी धान मंडी के निकट 'घनश्याम जी के मन्दिर' का निर्माण महाराजा ने करवाया था। इसे 'पंच-देवरिया' भी कहते हैं, क्योंकि इसमें प्रमुख मन्दिर के अतिरिक्त चार अन्य छोटे मन्दिर भी हैं।[४५]

घनश्याम जी के मन्दिर के निकट ही एक अन्य 'गंगाश्याम जी के मन्दिर' का निर्माण भी अजीतसिंह ने करवाया था।[४६] यह मन्दिर, राव गांगा के समय में बनवाया गया था, परन्तु जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद जब जोधपुर पर शाही अधिकार स्थापित हो गया, तब इसे तोड़कर इसके स्थान पर मस्जिद बनवा दी

---

३९. दस्तूर १४९; रेउ. भाग १, ३२९ टि.; ओझा, भाग ४, खंड २, ५९९।
४०. दस्तूर १४९; रेउ. भाग १. ३२९ टि.।
४१. दानेश्वर २५२: रेउ. भाग १, ३२९ टि.।
४२. दस्तूर. १४९; रेउ. भाग १, ३२९ टि.।
४३. दानेश्वर. २५२; दस्तूर. १४९; रेउ. भाग १, ३२९ टि.।
४४. ख्यात-भाग २, १६६; मूंदियाड़. २५२; दानेश्वर. २५२; दस्तूर. १४९; राठोड़ां. ६१; रेउ. भाग १, ३३० टि.; ओझा-भाग ४, खण्ड २, ५९९।
४५. दानेश्वर. २५२; दस्तूर. १४९; रेउ. भाग १, ३३० टि.।
४६. ख्यात. भाग २, १६६; मूंदियाड़. २५२; दस्तूर. १"

गई थी। परन्तु अजीतसिंह ने जब जोधपुर पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया तो यहाँ पुनः मन्दिर बनवा दिया। कई वर्षों बाद महाराजा विजयसिंह ने इसमें बहुत परिवर्तन किये। फलस्वरूप अजीतसिंह के समय के मन्दिर के दर्शन नहीं होते।[४७]

मंडोर में महाराजा अजीतसिंह ने कई भवन निर्मित किये। चूंकि वहाँ की कलाकृतियों में बाद में कोई परिवर्तन नहीं किये गये, अतः अजीतसिंह के समय की स्थापत्य-कला का वास्तविक रूप मंडोर में ही दिखाई पड़ता है।

मंडोर में जोधपुर के कई शासकों के देवल[४८] बने हैं। अजीतसिंह ने अपने पूर्वजों की भाँति अपने पिता जसवन्तसिंह की स्मृति में एक 'देवल' सन् १७१८-९ ई० में मंडोर में बनाया।[४९] जसवन्तसिंह का देवल, महाराजा अजीतसिंह के देवल के अतिरिक्त अन्य सभी देवलों से आकार में बड़ा है। साधारणतया देवल उसी स्थान पर बनवाया जाता है जहाँ स्वर्गीय व्यक्ति की दाह-क्रिया होती है। परन्तु जसवन्तसिंह की मृत्यु चूंकि पेशावर में हुई थी, अतः इसका निर्माण उनकी दाह-क्रिया के स्थान पर नहीं हुआ है। जसवन्तसिंह का देवल भूमि से लगभग सात फीट ऊँची विस्तृत वर्गाकार चौकी पर स्थित है। यह तीन मंजिल का है; परन्तु सीढ़ियाँ केवल बीच की मंजिल के लिये ही हैं। दूसरी मंजिल पर सामने तथा दोनों ओर छज्जे बने हुये हैं। देवल में स्तम्भों का प्रयोग बहुलता से किया गया है; परन्तु यह स्तम्भ बिल्कुल सादे बने हैं। देवल की परिपाटी के अनुसार इसके दो भाग हैं-सभा-मण्डप तथा भीतर का कक्ष (दाह-स्थान का कक्ष)। सभामंडप के ऊपर गुम्बद बना है, तथा भीतर के कक्ष के ऊपर लम्बा शिखर बना हुआ है। इस देवल में गुम्बद के अन्दर के भाग तथा शिखर में सुन्दर पच्चीकारी की हुई है।

जसवन्तसिंह के देवल के बाईं ओर की सड़क सीधी 'एक थम्भा महल' की ओर जाती है। यह भवन एक स्तम्भ के रूप में दिखाई देता है, इसी कारण इसे 'एक थम्भा-महल' कहा जाता है। यह तीन मंजिल ऊँची अष्टभुजी इमारत है जिसमें क्रमशः एक भुजा में द्वार तथा दूसरी भुजा में जाली बनी है। इसका निर्माण महाराजा अजीतसिंह ने सन् १७१८-९ ई० के लगभग करवाया था।[५०]

---

४७. मन्दिर से प्राप्त विवरण।

४८. किसी व्यक्ति की स्मृति में तीन प्रकार के भवन बनाये जाते हैं-चबूतरा, छत्री व देवल। देवल स्मारक भवनों में सर्वश्रेष्ठ होता है। यह अधिकतर तीन मंजिल का होता है जिसमें निर्मित कक्ष, सीढ़ियाँ व छज्जे बनाये जाते हैं और सम्पूर्ण भवन में पच्चीकारी का काम हुआ रहता है। इसका निर्माण मन्दिर की ही शैली में किया जाता है। मन्दिर की ही तरह इसमें लम्बा शिखर होता है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि मन्दिर देवताओं को समर्पित होते हैं तथा देवल उस व्यक्ति को जिसकी स्मृति में उसका निर्माण किया जाता है।

(आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया भाग २३, ३५)

४९. ख्यात-भाग २, ९६९; मुंदियाड़, २५३; वानेश्वर, ५८२; दस्तूर ११०; राठौड़ ६१; रेउ. भाग १, ३३० टि., ओझा, भाग ४, खण्ड २, ५९९।

५०. ख्यात. भाग २. ९६९. मुंदियाड़. २५७; वानेश्वर. ५८८ दस्तूर. १२९; राठौड़. ६१; रेउ भाग १, ३३० टि०।

एक थम्भा महल के बाईं ओर एक छोटा-सा द्वार है, जो जनाना-महल' का प्रवेश द्वार है। यह एक बड़ा-सा बाग़ है, जिसमें दाहिनी ओर काफी ऊँची कुर्सी पर चौबीस छोटे-छोटे निवास-स्थान बने हैं। यह दो मंजिल ऊँची इमारत है।[५१]

अजीतसिंह को बावड़ियों का भी शौक़ था। उसके द्वारा निर्मित कई बावड़ियों का उल्लेख मिलता है।[५२] महाराजा की रानियों ने भी मन्दिर एवं तालाब बनवाये। रानी राणावत ने गोल में तंवर जी के झालरे के निकट शिखरबन्द मन्दिर बनवाया तथा रानी जाड़ेची ने चांदपोल के बाहर एक झालरा बनवाया।[५३] महाराजा के सरदारों ने भी कई तालाबों का निर्माण करवाया। तिवारी सुखदेव श्रीमाली ने सन् १७१९-२० ई० में जोडेची जी के झालरे के पीछे एक झालरा बनवाया। भंडारी रघुनाथ ने रामेश्वर जी महादेव के मन्दिर के पीछे एक बावड़ी तथा बाग़ बनवाया। पुष्करणा ब्राह्मण रिणछोड़दास ने रामेश्वर जी के मन्दिर के निकट एक बेरा (कुंआ) बनवाया। नाजर दौलतराम ने दाऊ जी के मन्दिर के एक तरफ़ एक बावड़ी बननाई।[५४]

चित्रकला की ही भांति स्थापत्य-कला पर भी मुग़ल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। राजस्थान की सभी मध्यकालीन इमारतों में मुग़ल प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। जोधपुर में भी, जब मुग़ल शासकों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित हुआ तो वास्तु-कला पर भी मुग़ल प्रभाव का सूत्रपात हुआ। एक ओर जहाँ यह प्रभाव निरन्तर विकसित होता गया, वहाँ दूसरी ओर पूर्ववर्ती राजपूत-शैली अपना प्रभुत्व छोड़ने को तैयार नहीं थी। फलस्वरूप चित्रकला की भांति स्थापत्य-कला में भी दोनों शैलियों का मिश्रण होने लगा। १७ वीं शताब्दी में बने जोधपुर राज्य के भवनों में दोनों शैलियों का सुन्दर समन्वय दृष्टिगत होता है।

महाराजा अजीतसिंह ने लगभग सभी भवनों का निर्माण सन् १७१८-९ ई० में करवाया। यह वह समय था जब महाराजा का प्रभुत्व दिल्ली दरबार में बढ़ गया था। मुगल-सम्राट से निकट सम्बन्ध होने के कारण स्थापत्य-कला में भी मुग़ल प्रभाव अधिक पड़ने लगा। परन्तु चित्रकला की भांति इस समय के भवन पूर्णतया मुग़ल वास्तु-शैली पर नहीं बने। इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम प्रभाव दिखाई पड़ता है। भवनों में पच्चीकारी, छज्जों तथा कार्निस (दीवारगीर bracket) का प्रयोग तथा स्तम्भों की बहुलता राजपूत-स्थापत्य-शैली के प्रभुत्व का सूचक हैं। हिन्दू मन्दिरों की भांति देवल में लम्बा पच्चीकारी युक्त शिखर मिलता है। दूसरी ओर मेहराब व गुम्बद में मुग़ल-स्थापत्य-शैली का प्रभाव स्पष्ट है। एक थम्भा-महल की

---

५१. ख्यात., भाग २,१६६; मूंदियाड़. २५२; दस्तूर. १५०; राठौड़ा. ६१; रेउ. भाग १, ३३० टि.; ओझा. भाग ४, खण्ड २, ५६६।

५२. मूंदियाड़ २५५; दस्तूर. १४६।

५३. दानेश्वर. २५३; दस्तूर. १५०; ओझा भाग ४, खण्ड. २, ५६६।

५४. दस्तूर. १५०।

वाली पूर्णरूपेण मुगल है। इस प्रकार महाराजा अजीतसिंह के समय में राजपूत स्थापत्य-कला का ही प्रभुत्व था यद्यपि मुगल शैली का प्रभुत्व भी काफी बढ़ चुका था।

(ख) मूर्ति-कला :

महाराजा अजीतसिंह की रुचि केवल स्थापत्य-कला तक ही सीमित नहीं थी। उसके शासन-काल में हमें मूर्ति-कला के भी उदाहरण मिलते हैं। उसने पत्थर व चांदी की कई मूर्तियां बनवाई थीं। जिनमें मुरली मनोहरजी का चतुर्भुज रूप, हिंगलाज देवी, महादेव तथा पार्वती की पूरे क़द की चांदी की मूर्तियां सन् १७१९-२० में बनवाई थी।

मंडोर में महाराजा ने 'भैरों जी की साल' का नवीनीकरण करवाया।[५५] भैरों जी की बावड़ी तो पहले ही बनी हुई थी, महाराजा ने इसकी मरम्मत करवाई और गणेश जी की छोटी मूर्ति के स्थान पर बड़ी मूर्ति की स्थापना करवाई। इसके साथ ही काला व गोरा की नई मूर्तियां भी स्थापित की गई।[५६] वर्तमान अवस्था में इस साल में बीच में गणेश जी की मूर्ति है, और उसके दोनों ओर काला-गोरा की। इसके साथ ही चार चाकरों की मूर्तियाँ भी हैं। अपने मूलरूप में ये लाल पत्थर की हैं; परन्तु कालान्तर में इस पर चूने का प्लास्टर कर दिया गया तथा ऊपर से चमकीली पन्नियां चिपका दी गई।

'भैरों जी की साल' के निकट ही 'वीरों की साल' है, जिसे 'तेंतीस करोड़ देवताओं की साल' भी कहते हैं। यह एक लम्बा बरामदा है, जिसमें एक ही पहाड़ को काटकर सोलह दीर्घकाय मूर्तियां बनाई गई हैं। इनमें से दो देवियों की—चामुण्डा तथा महिषासुर मर्दिनी हैं और एक की गुसाईं की है। शेष में से—मल्लिनाथ, पाबु रामदेव, हड़बु, गोगा व मेहा नामक छः वीरों की मूर्तियां हैं। शेष सात प्रमुख देवताओं की हैं, जिनके नाम हैं—ब्रह्मा, सूर्य, रामचन्द्र, कृष्ण, महादेव, जालन्धरनाथ तथा गणेश।

इस साल का निर्माण किसने किया, इस विषय में विभिन्न विचार हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि इस सम्पूर्ण साल का निर्माण महाराजा अजीतसिंह ने करवाया था।[५७] अन्य इसे महाराजा अभयसिंह के काल का बताते हैं।[५८] कुछ का विचार है कि इसमें देवताओं की मूर्तियाँ अजीतसिंह ने बनवाई थी।[५९] अन्य के अनुसार वीरों की मूर्तियों का निर्माण अजीतसिंह के समय हुआ था तथा देव-

---

५५. ख्यात. भाग २, १६६; मू दिवाड़ २५२ व २५३; दानेश्वर. २५२ दस्तूर. १५०; राठौर ६१; रेउ भाग १, ३३० टि.।

५६. दस्तूर. १५०।

५७. गहलोत (मारवाड़) ५८ ६; मूल २२४।

५८. आर्कियॉलॉजीकल सर्वे ऑव इण्डिया भाग २३, ८५।

५९. दस्तूर. १४६।

तामों की मूर्तियां अभयसिंह ने बनवाई थीं।[८८] वीरों की मूर्तियों में से भी कुछ राव जोधा ने बनवाई थीं, ऐसा मत भी मिलता है।[८९]

इन विभिन्न मतों को देखते हुये निष्कर्ष रूप में केवल इतना कहा जा सकता है कि इन मूर्तियों में से कुछ का निर्माण अवश्य ही अजीतसिंह के समय में हुआ था। इनका निर्माण-काल मंडोर के अन्य भावनों के समकालीन मानना ही उचित प्रतीत होता है।

इन मूर्तियों में कलात्मकता का नितान्त अभाव है। प्रत्येक मूर्ति लगभग पन्द्रह फीट ऊँची है, और इनमें सौन्दर्य के स्थान पर शौर्य व वीरत्व पर अधिक ध्यान दिया गया है। इन प्रतिमाओं की आँखें निजी विशेषता रखती हैं। इनमें वीरता एवं शौर्य दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त वीरों के कपड़ों की सिलवटों का प्रदर्शन, चहरे की बनावट, आभूषण तथा मूंछे इनकी कुछ अन्य विशेषताएँ हैं। परन्तु मूर्तियों में सूक्ष्म विस्तारों तथा भावनात्मक पक्ष की कमी है। यद्यपि मूर्ति-कला के दृष्टिकोण से ये मूर्तियां अत्यन्त निम्न श्रेणी की हैं, तथापि इनसे अजीत-सिंह की इस क्षेत्र में अभिरुचि का अवश्य पता चलता है।

इस प्रकार यद्यपि अजीतसिंह का अधिकांश जीवन युद्धों में ही व्यतीत हुआ, तथापि सन् १७१० ई० के उपरान्त उसे जब-जब समय मिला, उसने अपने राज्य के सांस्कृतिक विकास का प्रयत्न किया। फलस्वरूप उसके राज्यत्व-काल में कई सुन्दर रचनाएँ लिखी गईं। चित्रकला, स्थापत्य कला तथा मूर्ति-कला के भी सुन्दर उदा-हरण मिलते हैं। संक्षेप में जोधपुर राज्य के सांस्कृतिक विकास की जो परम्परा अजीतसिंह को उत्तराधिकार में मिली थी, उसने उसे आगे बढ़ाने का यथाशक्ति प्रयास किया।

(ग) सामाजिक स्थिति :

विस्तृत विवरण के अभाव में केवल यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अजीतसिंह के समय में जोधपुर राज्य का समाज तीन श्रेणियों में विभक्त था। प्रथम श्रेणी राजा व उसके परिवार की, द्वितीय श्रेणी जागीरदारों की, तथा अन्तिम श्रेणी कामदारों की थी। जोधपुर में प्रमुखतया राठौड़ राजपूत ही निवास करते थे। बहुत पहले से ही यहाँ राजा के पुत्रों तथा भाई बन्धुओं के नाम पर भिन्न-भिन्न जातियां (खांप) बन गई थीं, जैसे—चांपावत, कूंपावत, जोधा, मेड़तिया आदि। इस समय भी ये जातियां पूर्ववत् पाई जाती थीं।

समाज में धर्म का विशेष स्थान था। लोग पूजा-पाठ में विशेष रुचि रखते थे और ग्रहों, शुभलग्न एवं जन्मपत्रियों पर विश्वास करते थे। यज्ञों का भी प्रचलन समाज में था। विभिन्न अवसरों पर जैसे—पूर्णिमा, एकादशी, संक्रांति आदि पर लोग व्रत रखा करते थे। कन्या के विवाह में माता-पिता उसकी विदाई से पूर्व

---

८८. मूंदियाड़. २५२; दानेश्वर. २५२; राठौड़ां ६१; रेउ. भाग १, ३३० टि. व ३५८।
८९. प्राचीन राजवंश. १४७।

जल भी ग्रहण नहीं करते थे। एकादशी, संक्रांति आदि अवसरों पर सारी रात कीर्तन करने की प्रथा, जिसे रात्रि-जागरण कहा जाता था, खूब प्रचलित थी। लोगों में दान देने की प्रवृत्ति भी पाई जाती थी।[६२] जोधपुर के शासक तुलादान भी किया करते थे। राजा को सोना, चाँदी, मोती, कपड़ा आदि से तोला जाता था और ये वस्तुएँ ब्राह्मणों को दान दे दी जातीं थीं। सम्भवतः तुला-दान की प्रथा मुगल प्रभाव ही था।[६३]

जोधपुर में अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती थी। गणेश, आनन्दघन, कल्याणराय, भैंरु गंगश्याम, सांवला, चतुर्भुज, मुरलीमनोहर, जुगलकिशोर, लक्ष्मीनारायण आदि अनेक देवताओं तथा नागणेची, चामुण्डा व हिंगुलाज आदि अनेक देवियों की पूजा की जाती थी। देवताओं में गणेश जी सर्वाधिक पूजनीय थे और कार्यारम्भ से पूर्व सर्वप्रथम उन्हीं की पूजा की जाती थी।[६४]

नागणेची देवी जोधपुर राज्य की कुलदेवी थी। चूँकि इस देवी का निवास स्थान नीम के वृक्ष के नीचे माना जाता था, अतः जोधपुर में नीम के वृक्ष का आदर किया जाता था, और उसकी लकड़ी का प्रयोग नहीं किया जाता था।[६५] नागणेची जी की पूजा का उत्सव बहुत धूम-धाम से मनाया जाता था। इस दिन यथाविधि देवी की पूजा होती थी, और राज-प्रसाद में सभी को लापसी बांटी जाती थी। इस दिन सेवग[६६] सात धागों को मिलाकर उनमें सात गांठे लगाकर एक राखी तैयार करता था। यह विशेष राखी देवी के प्रसाद स्वरूप राजा को बांधी जाती थी और उसके बाद राजकुमारों को और ब्राह्मणों को भी राखियां बांधी जाती थीं। इसी प्रकार रनिवास में सेवगणियाँ क्रमशः रानियाँ, राजकुमारियों, पड़दायतों व गायणियों[६७] को राखियाँ बांधती थीं। सेवग व सेवगणियों को इसके लिये रुपये दिये जाते थे।[६८]

जोधपुर राज्य में अनेक उत्सव मनाये जाते थे। तीज, जन्माष्टमी, रिख-पंचमी, राधा-अष्टमी, बावन-द्वादसी, महालक्ष्मी रो व्रत, अगस्त्य को अर्घ देना, गवर-पूजा, राम व अन्य अवतारों की जन्मतिथियाँ आदि अन्य धार्मिक पर्व थे।[६९]

समाज में जन्म, विवाह एवं मृत्यु के समय विभिन्न रीति-रिवाज प्रचलित थे। गर्भावस्था के पाँचवे मास में नागणेची, गणेश व अन्य देवी-देवताओं को भेंट

---

६२. व्याव री वही. नं. १, २३ व २४।
६३. दस्तूर. ४६।
६४. व्यावरी वही. नं. २१, २।
६५. दस्तूर. २०; रेउ. भाग १, २७।
६६. देवी या देवता की सेवा में नियुक्त व्यक्ति को 'सेवग' कहा जाता था।
६७. राजा की उपपत्नी को 'पड़दायत' तथा महल में गाने वाली स्त्रियों को; गायणियां कहा जाता था।
६८. दस्तूर–२०।
६९. वही।

देने की प्रथा थी।[७०] बच्चे के जन्म के दसवें दिन 'दसठौन' का उत्सव होता था, जिसमें सम्बन्धियों को भोज दिया जाता था। शुभ-लग्न देखकर ही बच्चा सौर-गृह से बाहर लाया जाता था।[७१]

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में विवाह किस प्रकार होता था, इसका प्रामाणिक विस्तृत वर्णन प्राप्त है।[७२] विवाह निश्चित करने के लिये लड़की के पक्ष से वर के लिये टीका भेजा जाता था।[७३] यह कार्य-भार ऐसे भाट सम्पन्न करते थे जो दोनों पक्षों को भली-भाँति जानते थे। लेकिन कभी–कभी शीघ्रता के कारण टीके के स्थान पर वर को केवल 'बीड़ा' देकर ही काम चला लिया जाता था।[७४] विवाह निश्चित होने की सूचना देने के लिये सभी स्वजनों में गुड़ बाँटा जाता था।[७५] विवाह से कई दिन पूर्व ही कन्या को उबटन लगाने से कार्य आरम्भ हो जाता था। इस अवसर पर शुभलग्न में कन्या को पटरे पर बिठाकर उसके पैर के नीचे नारियल व रुपये रक्खे जाते थे, जिन्हें कार्य समाप्त होने पर नाईन ले लिया करती थीं। सर्वप्रथम पुरोहित पूजा करता था, तदुपरान्त कन्या को उबटन लगाया जाता था। फिर पुरोहित की पत्नी कन्या को तिलक लगाती थी, विभिन्न सुहागिनें चार प्रकार का अन्न छाज (सूपा) में डालकर फटकती थीं, और कन्या की बुआ उसकी आरती करती थी। अन्त में सभी को लापसी बाँटी जाती थी। पुरोहित की पत्नी तथा कन्या की बुआ को अपने-अपने कार्यों के लिये नेग मिलता था।[७६]

विवाह से कुछ दिन पूर्व गणेश जी की स्थापना की जाती थी। इस उत्सव में कुछ लोग गाते-बजाते कुम्हार के घर जाते थे और कपड़े में लपेटकर एक टोकरी में गणेश जी की मूर्ति लाकर महल में उस स्थान पर स्थापित कर देते थे, जहाँ कुलदेवी नागणेची जी की मूर्ति स्थापित थी। कुम्हार को इसके लिये गेहूँ, चावल, घी, गुड़, मैदा, कुमकुम, नारियल आदि वस्तुएँ दी जाती थीं। तदुपरान्त कन्या को गणेश जी के समीप लाया जाता था। गणेश जी की पूजा के उपरान्त कन्या को 'कंकण-डोरा'[७७] बाँधा जाता था। तत्पश्चात् कन्या के पटरे एवं पैर के नीचे रुपये

---

७० वही, ४७।

७१. अजीतसिंह के जन्म के उपरान्त ये उत्सव हुये थे। यह कहना कठिन है कि ये उत्सव राजघराने तक ही सीमित थे अथवा जनसाधारण में भी प्रचलित थे।

७२. ब्याव री वही. न. १, १–५३।

७३. महाराणा जयसिंह ने अजीतसिंह को टीका भेजकर अपनी भतीजी से उसका विवाह निश्चित किया था। जैसलमेर के रावल अमरसिंह ने भी अजीतसिंह को टीका भेजा था, जिसका विस्तृत वर्णन जुनी-वही में मिलता है।

७४. ब्यावरी वही नं. १, १। जयसिंह व सूरजकुँवर के विवाह में ऐसा ही हुआ था।

७५. ब्याव री वही नं. १, ३–१६।

७६. वही, १–३।

७७. वधू के दायें हाथ व पैर में धारण करने का सूत का रंगीन डोरा जिसमें कौड़ी, लाख, लोहे

व नारियल रखकर उसे 'पीठी'[७८] लगाने का कार्यक्रम होता था। पीठी के उपरान्त उसे स्नान कराया जाता था, फिर सभी उसकी निछावर करते थे।[७९]

विवाह से एकाध दिन पूर्व चौदह मातृकाओं[८०] की स्थापना नागणेची जी के मंदिर में की जाती थी। विवाह से एक दिन पूर्व 'रात्रि-जागरण' होता था जिसमें स्त्रियाँ रात भर नाचती गाती थीं। विवाह के दिन 'विन्दोला' नामक कार्य-क्रम होता था। इस उत्सव में सुहागिन स्त्रियाँ एक थाली में कुमकुम, चावल, मौली, सुपारी तथा गुड़ या मिश्री रखकर कन्या के पास जाती थीं, और उसे सगुन के रुपये देती थीं। इसी दिन कुम्हार के घर से 'वेह'[८१] लाने की प्रथा भी होती थी। विवाह के लिए मण्डप का निर्माण होता था, जिसे रंग-बिरंगी ध्वजाओं, पताकाओं रेशमी चादरों आदि से सजाया जाता था, और इसके स्तम्भों की पूजा की जाती थी।[८२]

वर के लिये वधू–पक्ष से कपड़े भेजने की प्रथा थी। दूल्हा कपड़ों को पहनकर विवाह के लिये आता था। विवाह के दिन सायंकाल को वर विशेष साज-सज्जा के साथ बारात लेकर वधू के घर जाता था। बारात में खूब धूमधाम से बाजे बजाने एवं आतिशबाजी चलाने की प्रथा थी। वधू के द्वार पर तोरण तोड़ने[८३] के उपरान्त वह प्रवेश करता था। पुरोहित उसकी आरती करता व तिलक लगाता था। दूल्हे का उचित आदर व सत्कार किया जाता था। रात्रि में शुभ-लग्न देखकर विवाह होता था। विवाह में 'गठजोग'[८४] 'हथलेवा'[८५] आगोलीया[८६]

की कड़ी व जायफल बँधे रहते थे 'कंकन–डोरा' कहलाता था।

७८. 'पीठी' में आटा, मेंहदी, सरसों का तेल, जौ, कपूरकाचरी, अगर, धूप, गुलाब तथा केवड़ा आदि सुगन्धित पदार्थ होते थे।

७९. ब्यावरी वही नं. १, १८, व २०।

८०. ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी व चामुण्डा नामक सात देवियाँ मातृकाएँ कहलाती हैं। सूरजकुँवर के विवाह के समय पहले उनकी सादी मूर्तियाँ स्थापित की गई थीं; परन्तु जब पुरोहित ने चाँदी की मूर्तियाँ स्थापित करने के लिये कहा, तब चाँदी की मूर्तियाँ स्थापित की गई। अतः इनकी संख्या दुगुनी हो गई थी (ब्यावरी-वही नं. १, २३)।

८१. 'वेह' का तात्पर्य छोटी-छोटी नौ या ग्यारह लकड़ियों से होता था जिन पर तलवार खड्ग या कटार बने होते थे।

८२. ब्यावरी वही नं. १, २३ से २५ व २८।
सूरजकुँवर के विवाह के लिये अत्यन्त सुन्दर मण्डप बनाया गया था जिसका विस्तृत वर्णन ब्यावरी वही में है।

८३. जब दूल्हा मुख्य द्वार पहुँचता है तो एक छोटी-सी लकड़ी के द्वार [illegible] है। [illegible] को तोरण तोड़ना कहा जाता था।

८४. विवाह में वर-वधू के वस्त्रों को परस्पर बाँधने की रस्म को 'गठजोड़' कहा जाता था।

८५. वर-वधू का हाथ एक दूसरे के हाथ पर रखना 'हथलेवा' कहलाता था।

८६. 'आगोलिया' वह प्रथा थी जिसमें वर-वधू को ध्रुव-तारा के दर्शन कराये जाते थे।

तथा 'कुँवर-कलेवा'[८७] प्रमुख रस्में हुआ करती थीं। तदुपरान्त वर-वधू को विदा कराकर लाता था। ससुराल में कन्या का स्वागत उसकी ननद आरती उतारकर करती थी।[८८]

समाज के उच्च वर्ग में बहु-विवाह की प्रथा थी। राजाओं की अनेक रानियाँ और उपपत्नियाँ हुआ करती थीं।[८९] राजपूत अपने वंश की लड़की से विवाह नहीं किया करते थे।[९०] दहेज-प्रथा[९१] तथा सती-प्रथा[९२] का प्रचलन समाज में था। सम्भवत: पर्दा प्रथा[९३] भी समाज में विद्यमान थी।

सिंहासनारोहण के अवसर पर भी विभिन्न रीति-रिवाजों का प्रचलन था। शासक की मृत्यु के तेरहवें दिन नये शासक का सिंहासनारोहण होता था। निश्चित दिन से एक दिन पूर्व होने वाले राजा को व्रत रखना पड़ता था। अगले दिन नगर के मुख्य ब्राह्मण क़िले में एकत्र होते थे। राजा गंगा, यमुना एवं पुष्कर के जल से स्नान करता था। तत्पश्चात् गणेश शिव, विष्णु, एवं ब्रह्मा आदि देवताओं की शस्त्रों तथा राजकीय चिह्नों—छत्र, ध्वजा आदि की पूजा होती थी। तदुपरान्त राजा सिंहासन पर बैठता था, जिसे 'शृङ्गार-चौकी' कहा जाता था। सोजत परगने में स्थित बगड़ी नामक स्थान का सरदार उसे टीका करता और तलवार बाँधता था[९४] तथा राजपुरोहित उसे तिलक करके आशीर्वाद देता था। इसके उपरान्त राजा वहाँ से उठकर 'दौलतखाना' में चला जाता था, जहाँ सभी सामन्त उसे नजर देते थे। सिंहासनारोहण अथवा अन्य किसी अवसर पर जब राजा को भेंट दी जाती थी तो चांपावत सरदार ही सर्वप्रथम भेंट देता था। चांपावत राठौड़ों के इस विशेषा-

---

८७. विवाह के दूसरे दिन प्रातःकाल दूल्हे को कराया जाने वाला भोजन कुँवर-कलेवा कहलाता था।

८८. व्यावरी वही नं. १, २८ व ३२-५।
विवाह का विवरण सूरजकुँवर तथा जयसिंह के विवाह पर आधारित है। अत: यह रीतियाँ प्रमुखतया राजघराने की हैं। परन्तु अनुमानत: थोड़े बहुत अन्तर के साथ यही प्रथाएँ अन्य वर्गों में भी प्रचलित रही होंगी। राजस्थानी विवाह में आज भी लगभग यही रीति-रिवाज प्रचलित हैं।

८९. महाराजा अजीतसिंह के १८ रानियां व ४ उपपत्नियाँ थीं (पीछे देखिये पृ० ३५४-६)।

९० टॉड भाग १, १२२।

९१. अजीतसिंह ने सूरजकुँवर को दहेज दिया था। (व्याव री वही नं. १, ४६)

९२. जसवन्तसिंह तथा अजीतसिंह की मृत्यु के बाद उनकी कई रानियाँ व उपपत्नियाँ सती हुई थीं (पीछे देखिये पृ. १७, ३३ व ३५४)।

९३. सूरजकुँवर के विवाह के अवसर पर जब जयसिंह बरात लेकर आया था तो सास स्वयं बाहर नहीं आई थी, राजपुरोहित ने उसकी ओर से आरती की थी। (व्याव री वही नं १, ३०)

९४. राव जोधा ने जब वि. सं. १५१० में मेवाड़ की सेना को हटाकर मण्डोर पर अधिकार किया, तो उनके बड़े भाई अखैराज ने अपने अंगूठे को चीरकर उसके रक्त से राव जोधा का राजतिलक किया। अखैराज की जागीर बगड़ी थी जो उस समय मेवाड़ वालों के अधिकार में थी। राव जोधा ने उस पर विजय करके उसे अपने भाई को सौंपा। इसी समय से यह प्रथा चली कि राजा के मरने पर बगड़ी जब्त करने की आज्ञा दी जाती थी। नये राजा को बगड़ी का ठाकुर अंगूठे को चीर कर रुधिर से राजतिलक करता था, तत्पश्चात् जागीर वापिस दे दी जाती थी (रेउ भाग १, ८७-८)।

विकार का प्रारम्भ अजीतसिंह के समय से ही हुआ था। चांपावत मुकुन्ददास द्वारा महाराजा के बाल्यकाल में की गई सेवा के बदले में उन्हें यह विशेषाधिकार मिला था।[९५]

प्रत्येक शुभ अवसर पर नौबत बजाई जाती थी। साधारण दिनों में जोधपुर नगर में प्रतिदिन चार बार नौबत बजाने की रीति थी। किसी उच्चाधिकारी की मृत्यु हो जाने पर राजा मृतक की स्थिति के अनुसार एक अथवा अधिक बार नौबत बन्द करवा कर उसे सम्मान दिया करता था।[९६] नौबत की भांति 'बडवेहरा' का प्रयोग भी शुभ अवसरों पर किया जाता था, और इसे मांगलिक समझा जाता था। यह अनेक छेदों वाला मिट्टी का घड़ा होता था जिसमें दीपक जलाया जाता था और अन्य मांगलिक वस्तुएँ रखी जाती थी।[९७]

मारवाड़ के स्त्री-पुरुषों का पहनावा बड़ा आकर्षक था। स्त्रियां अधिकतर ऊर्ध्व भाग के लिये कांचली एवं कुरता का तथा निम्न भाग के लिये घाघरा का प्रयोग करती थी। इसके ऊपर से दुपट्टा ओढ़ा जाता था। साड़ी का भी उस समय प्रचलन था। उनके कपड़ों में जाली, जरी व गोटे आदि का काम होता था। इसके साथ ही बूटीदार तथा मोठड़ेदार (जिसमें गोल-गोल धब्बे छपे होते थे,) कपड़े भी होते थे। पुरुष अधिकतर पाग, बालाबन्दी (एक प्रकार का कुरता); सूथन, पोतीयो (साफा) व गोसपेच (कंधे पर रखने का वस्त्र) पहना करते थे। राजा लोग 'जामा' नामक एक वस्त्र पहनते थे जो ऊपर से नीचे तक हुआ करता था। ये लोग पगड़ी में सिरपेच व कलँगी लगाते थे। उच्च-वर्ग के वस्त्र रेशमी तथा मूल्यवान हुआ करते थे। कमखाब (कीनखाप), मखमल, तास (अत्यन्त बारीक वस्त्र) तथा इलायची (यह भी एक बहुमूल्य वस्त्र था) उस समय के कीमती वस्त्र थे। बनारसी साड़ी का भी उल्लेख मिलता है। साधारण जनता किन वस्त्रों का प्रयोग करती थी, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु निश्चय ही उनके वस्त्र कम मूल्य के रहते होंगे।[९८]

स्त्री-पुरुष दोनों आभूषण-प्रिय थे। पुरुष गले में माला तथा हाथों में पहुँची पहना करते थे।[९९] स्त्रियां बहुत से गहने पहनती थी। अणवट (पैर के अंगूठे में पहनने का छल्ला) बिछिया, नथ, सीसफूल, बाजूबन्द, कड़ा, दुगदुगी (गले में पहनने का एक गहना), चोलड़ी माला, बेणा (माथे की बोरा) हथफूल, कमरबन्द,

---

९५. गैजेटियर ऑव् मारवाड़ एण्ड मलानी, ९७-८।

९६. चांपावत भगवानदास की मृत्यु पर अजीतसिंह ने दिन में दो बार नौबत बन्द करने का आदेश दिया था (ख्यात-भाग २, १६४)।

९७. न्याव री बही सं. ३, ९९।

९८. न्याव री बही सं. १, ९९, २५, ६३-४ व ५९-१।

९९. न्याव री बही सं. १, ९९ व ५९।

टीका, रीमझौल (पायल), कंगरण बींटी (अंगूठी) आदि प्रचलित आभूषण थे। आभूषण सोने व चाँदी दोनों के बनते थे, और मोती, हीरा, मानिक, मूँगा, गोमेदक, नीलम, पन्ना, फीरोज़ा, आदि नगों का प्रयोग किया जाता था।[१००]

राजपरिवारों में सोने-चाँदी के बर्तनों का प्रयोग किया जाता था। साधारण जनता के बर्तनों के विषय में कोइ उल्लेख नहीं मिलता। थाल, कटोरी, झारी, चलनी, पानदान, कलस, चकला, बेलन, कड़छी, आदि सभी दिन-प्रतिदिन के प्रयोग के बर्तनों का उल्लेख मिलता हैं।[१०१]

जोधपुर में गेहूँ, चावल, बेसन, मूँग, मैदा व मोठ लगभग सभी खाद्यान्नों का प्रयोग होता था। घृत एवं गुड़ व खाँड़ का भी प्रचलन था। जायफल, जावित्री, दालचीनी, लौंग आदि मसालों से भी यहाँ के निवासियों का परिचय था। विवाह आदि अवसरों पर घुघरी, चूरमा, लड्डू, जलेबी, छुहारों की खीर आदि मिष्ठान बनाये जाते थे। लापसी जोधपुर का शुभ भोज्य पदार्थ माना जाता था और प्रत्येक शुभ अवसर पर लापसी अवश्य बनती थी। बादाम, पिस्ता, किशमिश आदि मेवों तथा केला, आम, अनार आदि फलों का प्रचलन था। समाज में पान खाने की प्रथा भी प्रचलित थी।[१०२] यह कहना कठिन है कि जनसाधारण किस प्रकार का भोजन करते थे।

राज्य में राजा की वर्ष-गाँठ अत्यन्त धूमधाम से मनाई जाती थी। इस दिन नगर के निवासी तथा राज्य के सरदार सभी खुशी मनाते थे। राजा अपने जन्म के दिन नागणेची जी की पूजा करके भेंट करता था। इस दिन विधिवत् दरबार लगाया जाता था और सभी सरदार राजा को नज़र व निछावर करते थे। रनिवास में भी इस उत्सव को धूमधाम से मनाया जाता था। सर्वप्रथम पटरानी गुड़, नारियल, मिश्री, मेवा, बादाम, किशमिश, पिस्ता तथा मिठाई आदि महल के सभी व्यक्तियों को बँटवाती थी, और फिर अन्य रानियों द्वारा मिठाई बाँटी जाती थी।[१०३]

आजकल की भाँति दशहरा, दीवाली, राखी, आखातीज व होली उस समय के प्रमुख त्योहार थे। राजा इन अवसरों को खूब धूमधाम से मनाता था। राखी के अतिरिक्त चारों अवसरों पर राजा सामन्तों को दावत देता था, जिसमें राजा व सामन्त एक साथ बैठकर भोजन करते थे। भोज में सभी सरदार अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार निश्चित स्थान पर बैठा करते थे, और उन्हें अलग-अलग थाल परोसा जाता था। सर्वप्रथम लापसी परोसने की प्रथा थी।[१०४]

---

१००. व्याव री वही नं. १, ३८ व ५०-१।
१०१. व्याव री वही नं. १, ५१-२।
१०२. व्याव री वही नं. १ (१-५३) में स्थान-स्थान पर इन वस्तुओं का उल्लेख मिलता है।
१०३. दस्तूर. २३।
१०४. दस्तूर. २३-४ व २८।

दीवाली के दिन जनाना दरबार भी लगता था। इस त्योहार में राजा दो दिन (दीवाली तथा उसके अगले दिन) भोज देता था। इस दिन दो सामन्त सर्वप्रथम और पश्चात् राजा को नजर करते थे और उन्हें यथोचित इनाम दिया जाता था। दशहरा के अवसर पर भी नवमी व दशमी दो दिन सम्मिलित भोज होता था। इसमें नौरात्र की स्थापना की जाती थी, और इन दिनों माता के मन्दिरों में धूम-धाम से पूजन होता था। जोधपुर के किले में स्थित चामुण्डा जी के मन्दिर में जप, पूजन व बलिदान किया जाता था। नवमी के दिन विशेष पूजन होता था जिसमें राजा स्वयं हाथी, घोड़ा, शस्त्र, नगाड़ा, निशान व माही मरातिब की पूजा करता था। उसकी अनुपस्थिति में राजपुरोहित यह कार्य करता था। दशहरे के दिन नगर में राजा की सवारी निकाली जाती थी।[105] राखी के अवसर पर दरबार में कर्म किये जाते थे तथा राजा को नजर व निछावर होती थी। इस दिन जनाना दरबार भी होता था।[106]

त्योहारों के अतिरिक्त जुआ मनोरंजन का एक अन्य साधन था। राजा लोग शिकार के भी शौकीन थे। शिकार राजपूताने में बहुत पहले से खेला जाता था, परन्तु मनोरंजन के लिये शिकार खेलना राजाओं ने सम्भवतः मुगल प्रभाव से ही प्रारम्भ किया था। शिकार में उनके सामन्त भी साथ जाया करते थे।[107]

आर्थिक स्थिति :—

जोधपुर में अधिकांश जनता खेती करके ही अपना जीविकोपार्जन करती थी। स्त्री-पुरुष व बच्चे सभी सम्मिलित रूप से खेतों में कार्य करते थे। गाँव के अन्य पेशे के लोग भी इन्हें अपनी सेवा प्रदान करके सहायता करते थे।

राज्य में पाँच प्रकार की भूमि हुआ करती थी। राजा की निजी भूमि को 'खालसा' कहा जाता था। वह इस भूमि को पट्टे पर दे दिया करता था। जबतक ये पट्टेदार भूमिकर देते रहते थे भूमि पर उनका स्वामित्व बना रहता था। इस भूमि को गिरवी रखने, बेचने अथवा ठेके पर देने का उन्हे पूर्ण अधिकार था। राजा अपने सामन्तों को जो भूमि उनकी सेवा के बदले में दिया करता था, वह 'जागीर' कहलाती थी। सामन्त इसके लिये राजा को रेख (वार्षिक कर तथा चाकरी (सैनिक सहायता) दिया करता था। यह भूमि वंशानुगत होती थी, और जागीरदार के मरने पर उसका उत्तराधिकारी राजा को नजराना देकर पुनः भूमि अधिकार प्राप्त कर लेता था। तृतीय प्रकार की भूमि 'भूम' कहलाती थी, और इसके स्वामी को 'भूमिया' कहा जाता था। ये लोग गाँव, सड़कों एवं कोश की सुरक्षा का

---

१०५. दस्तूर. २८।

१०६. दस्तूर. २३ व २४।
गैजेटियर ऑव् मारवाड़ एण्ड मलानी (२७) में भी लिखा है कि राजा वर्ष में प्रमुख छः दरबार करता था—वर्ष गाठ, दशहरा, दीवाली, राखी, आखातीज व होली।

१०७. टॉड भाग १, १५४।

ध्यान रखा करते थे। इनको भूमि के लिये थोड़ा-सा कर देना पड़ता था। जबतक ये अपने कर्त्तव्यों का पालन करते थे, इनका भूमि पर अधिकार बना रहता था; परन्तु ये भूमि को बेच नहीं सकते थे। 'सासरण' अथवा 'मुआफी' वह भूमि थी जो राजा ब्राह्मण, गोसाईं, भाट व चारण आदि को दान में देता था। इन व्यक्तियों का अपनी भूमि पर वंशानुगत अधिकार होता था, परन्तु वे भूमिया की भाँति उसे बेच नहीं सकते थे। अन्तिम प्रकार की भूमि 'चारनोत' कहलाती थी। यह गाँव की सामूहिक चरागाह हुआ करती थी।

१७वीं १८वीं शताब्दी में भूमि का विभिन्न प्रकार से वर्गीकरण किया जाता था। इसे पिवाला, तलाई, कनकदा, गुलातहन्स, विडा, नादी, माला, मगरो, वाडी आदि नामों से पुकारा जाता था। यह नाम अधिकतर भूमि की स्थिति अथवा प्रयोग के अनुसार होते थे। उदाहरणार्थ, नदी के निकट की भूमि को नादी तथा बागों के लिये प्रयुक्त भूमि को वाडी कहा जाता था। भूमि के टुकड़ों को 'कतका' या 'वतका' तथा इनसे छोटे विभागों को 'क्यारी' के नाम से पुकारा जाता था। फ़सल पकने पर उसकी विशेष रूप से 'रखवाली' की जाती थी।

खेती के लिये हल, कुदाल, फावड़ा का प्रयोग होता था। हल को बैल खींचते थे। सिचाई के लिये कुएँ व तालाबों से निकाली गई छोटी-छोटी नहरें हुआ करती थीं। जोधपुर में सियालू (रवी) तथा उन्हालू (ख़रीफ़) दोनों फ़सलें उत्पन्न की जातीं थीं। बाजरा, मूँग, चना, कपास, गेहूँ, यहाँ की मुख्य उपज की वस्तुएं थीं।[१०८]

खेती के अतिरिक्त विभिन्न अन्य कार्य भी लोग किया करते थे। महाजन, बढ़ई, भिश्ती, सिलवट, कुम्हार, ओझा, पंडित, भाट, पुरोहित, जोशी, वैंदिया, नाई आदि अन्य विभिन्न पेशेवर लोग थे।[१०९]

गाँवों में सम्भवत: परस्पर वस्तुओं के लेन-देन की ही प्रथा थी। परन्तु बड़े क्षेत्रों में नक़द सिक्के देकर वस्तुएं ख़रीदी जातीं थीं। इसके लिए जोधपुर में रुपये व टकों का प्रयोग किया जाता था। किसी वस्तु की लम्बाई चौड़ाई 'हाथ' व अंगुल में नापी जाती थी।[११०]

उस काल में ज़रीदार बढ़िया साड़ी का मूल्य चौरानवे रुपये के लगभग तथा घाघरे का मूल्य चौरासी रुपये के लगभग था। ज़रीदार दुपट्टा उनहत्तर रुपये के लगभग तथा बढ़िया काँचली अठारह रुपये के लगभग मिलती थी। आभूषणों में

---

१०८. डॉ. गोपीनाथ शर्मा—एग्रीकल्चर इन मिडीवल राजस्थान।

१०९. इन सब का उल्लेख व्याव री वही नं. १ (१-५३) में स्थान-स्थान पर मिलता है।

११०. रुपये व टके का उल्लेख व्याव री वही नं. १ (१-५३) में स्थान-स्थान पर मिलता है। सूरजकुँवर के विवाह के लिये जो मण्डप बनाये गये थे उनके स्तम्भादि हाथ व अंगुल में नापे गये हैं।

सोने री जड़ाऊ बेणी दो सौ इक्यावन रुपये के लगभग मिलता था। जड़ाऊ सोनफूल तीस रुपये, नवसेरो हार एक हजार पांच सौ रुपये, दुगदुगी एक सौ पच्चीस रुपये, पगपान तीन सौ रुपये तथा बिछिया पचहत्तर रुपये के लगभग मिला करते थे। हीरे की अंगूठी दो सौ पचास रुपये तथा पन्ने की पचास रुपये के लगभग मिल जाती थी। राजाओं की बढ़िया पाग का मूल्य एक सौ बीस रुपये, साफ़े का पचहत्तर रुपये कमरबन्दी का पचास रुपये तथा गोसपेच का आठ रुपये के लगभग था।[111]

पालकी, हाथी व घोड़ा यातायात के प्रमुख साधन थे। शीघ्र संदेश भेजने के लिये सांड़नी का प्रयोग भी किया जाता था।

जोधपुर में उद्योग-धन्धों के विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इस दृष्टि से यह राज्य पिछड़ा हुआ था। सम्भवतः यही कारण है कि आज भी जोधपुर विशेष उद्योगशील प्रदेश नहीं है। इसलिये आर्थिक दृष्टि से इसे सम्पन्न राज्य नहीं कहा जा सकता।

---

१११. ब्याव री बही २३-४, ६८, ५२।

परिशिष्ट 'क'

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु की तिथि व स्थान

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु किस तिथि को और किस स्थान पर हुई इस विषय में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। फ़ारसी इतिहासकारों में ईश्वरदास नागर (फ़ुतूहात ७३ ब); भीमसेन बुरहानपुरी (दिलकुशा. भाग १, १६४); ख़फ़ी ख़ाँ (मुन्तख़ब-उल-लुबाब, भाग २, २५६); तथा शाहनवाज़ ख़ाँ (मआसिर, हिन्दी भाग १, १७४) ने केवल इतना लिखा है कि यह दुर्घटना १०८९ हि० (सन् १६७८-९ ई०) में हुई थी। इस प्रकार राजस्थानी इतिहासकार सूर्य्यमल्ल मिश्रण (वंश. भाग ४, २९४३-४) ने जसवन्तसिंह की मृत्यु की तिथि संवत् १७३२ (सन् १६८२-३ ई०) तथा अंग्रेज़ी इतिहासकार कर्नल टॉड (भाग २,४०) ने संवत् १७३७ (सन् १६८०-१ ई०) निर्धारित की है। परन्तु इनमें से कोई भी इतिहासकार निश्चित तिथि नहीं देता, अतः समस्या का समाधान नहीं होता।

इस दुर्घटना की निश्चित तिथि का उल्लेख करने वाले इतिहासकारों में से मनूची (भाग ३,२३३ टि०) एवं फ्रायर (१९०-१) ने इसे १८ दिसम्बर, सन् १६७८ ई० को बताया है। परन्तु विदेशी यात्रियों का विवरण सुनी-सुनाई बातों पर अधिक निर्भर होने के कारण इन पर निर्भर रहना उचित नहीं है। रेउ (प्राचीन राजवंश २०५) तथा गहलोत (मारवाड़ १५६) ने जसवन्तसिंह की मृत्यु की तिथि ७ दिसम्बर, सन् १६७८ ई० निर्धारित की है परन्तु समकालीन इतिहासकारों के समर्थन के अभाव में इसे भी स्वीकार नहीं किया जा सकता।

औरंगज़ेब के समय के राजकीय इतिहासकार साक़ी मुस्ताद ख़ाँ (मआसीर १०६) ने जसवन्तसिंह की मृत्यु की तिथि ६ ज़िल्क़ाद, १०८९ हि० (१० दिसम्बर, सन् १६७८ ई०) स्वीकार की है। परवर्ती इतिहासकार कामवर (१९२) ने भी इसी तिथि को मान्यता दी है। देवीप्रसाद (औरंगज़ेबनामा. ७९) ने ६ ज़िल्क़ाद (११ दिसम्बर=पौष सुदि ८) का उल्लेख किया है। सर जदुनाथ सरकार (औरंगज़ेब, भाग ३,३२५); डॉ० रघुबीरसिंह (पूर्व. १३२); डॉ० गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़ १६६) आदि ने भी इसी तिथि को स्वीकार किया है। परन्तु समकालीन राजस्थानी इतिहासकार पंचोली (२४-अ व १५४-अ) तथा वीरभाण (राजरूपक १७) ने स्पष्ट रूप से यह लिखा है कि बृहस्पतिवार, पौष वदि १०, संवत् १७३५ (२८ नवम्बर, सन् १६७८ ई०) को जसवन्तसिंह की मृत्यु हुई थी। कविराजा श्यामलदास (वीर-भाग २, ८२७) ने भी इसी तिथि का उल्लेख किया है। जोधपुर राज्य की ख्यात (भाग १,२५६; भाग २,१); मूंदियाड़ की ख्यात (१७४); फ़ौजचन्द री तवारीख़ (१); बांकीदास री ख्यात (३३); कविराजा मुरारीदान री ख्यात. (६९३); जोधपुर रै राठोड़ा री ख्यात (६-ब) आदि लगभग सभी ख्यातों में इसी तिथि की पुष्टि की गई

है। आधुनिक इतिहासकारों में रेउ (भाग १,२४१) तथा ओझा (भाग ४, खंड १, ४६७) ने भी इसी तिथि को स्वीकार किया है। जन्म, मृत्यु, विवाह, सन्तानोत्पत्ति आदि पारिवारिक घटनाओं के लिये राजस्थानी ग्रन्थों विशेषकर ख्यातों की विशेष मान्यता होने के कारण २८ नवम्बर को ही जसवन्तसिंह की मृत्यु की तिथि स्वीकार करना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। सम्भव है साक़ी मुस्ताद ख़ाँ द्वारा लिखी गई तिथि (१० दिसम्बर) वह तिथि हो जिस दिन यह समाचार दरबार में पहुँचा।

जसवन्तसिंह की मृत्यु किस स्थान पर हुई इस सम्बन्ध में भी इतिहासकारों में मतभेद हैं। फ़ारसी इतिहासकारों में से साक़ी मुस्ताद ख़ाँ (मआसीर १०६) ने पेशावर से समाचार प्राप्ति का उल्लेख किया है, परन्तु मृत्यु-स्थान का कोई उल्लेख नहीं किया है। खफ़ी ख़ाँ तथा शाहनवाज ख़ाँ ने भी मृत्यु-स्थान का सुस्पष्ट उल्लेख नहीं किया है।

वंशभास्कर (भाग ४, २९४३) तथा उमराए-हनूद (९८) में स्पष्ट रूप से लिखा है कि जसवन्तसिंह की मृत्यु काबुल में हुई थी। भीमसेन बुरहानपुरी (दिलकुशा, भाग १, १६४) ने इस घटना का काबुल के निकट घटित होना स्वीकार किया है। परन्तु इस मत को स्वीकार करना उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि जसवन्तसिंह को २१ मई, सन् १६७१ ई. में जमरूद की थानेदारी पर नियुक्त किया गया था। यहाँ से जसवन्तसिंह १४ जून, सन् १६७४ ई. को औरंगजेब से मिलने रावलपिण्डी गया था और फिर शाही आज्ञानुसार जमरूद वापस आ गया था। इसके उपरान्त वह कभी काबुल की ओर गया हो, ऐसा उल्लेख कहीं नहीं मिलता। वह अपने क्षेत्र की सुव्यवस्था एवं सुरक्षा में ही व्यस्त रहा। (मुस्ताद ख़ाँ ६७ व ८२; जसवन्तसिंह १३६ व १४१-२) अतः उसकी मृत्यु अपने नियुक्ति-क्षेत्र में ही हुई होगी।

फ़ारसी के महत्त्वपूर्ण आधार-ग्रन्थों में केवल फ़ुतूहात-ए-आलमगीरी (७२ ब) में स्पष्ट रूप से लिखा है कि जसवन्तसिंह की मृत्यु जमरूद में हुई थी। चूँकि जसवन्तसिंह को बादशाह ने अन्तिम बार जमरूद की थानेदारी पर नियुक्त किया था, अतः सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब भाग ३, २२५) ने भी इसी स्थान पर जसवन्तसिंह की मृत्यु होना स्वीकार किया है। ओझा (भाग ४, खण्ड २, ४६७); रेउ (भाग १, २४१); डॉ० रघुबीरसिंह (पूर्व. १४१); डॉ० गोपीनाथ शर्मा (मेवाड़ १६६) आदि लगभग सभी आधुनिक इतिहासकारों का मत है कि जसवन्तसिंह की मृत्यु जमरूद में हुई थी। पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ (१५४ अ); जोधपुर राज्य की ख्यात (भाग २, १९); मूंदियाड़ की ख्यात (१७४) तथा अजितोदय (सर्ग ४, श्लोक २९) आदि राजस्थानी आधार-ग्रन्थों में यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि जसवन्तसिंह की मृत्यु पेशावर में हुई थी। इतना ही नहीं, पंचोली ने इसका पूर्ण विवरण देते हुए यह भी लिखा है कि महाराजा का स्वर्गवास पूर्णमल बुन्देला के बाग़ में स्थित हवेली में हुआ था।

वास्तव में जमरूद की थानेदारी के साथ ही जसवन्तसिंह पेशावर ज़िले की देख-रेख भी कर रहा था। चूँकि जमरूद केवल एक सैनिक चौकी थी, अतः वहाँ रनिवास को रखने की सुविधा नहीं थी। इसलिये स्पष्टतया उसका प्रधान कार्यस्थल पेशावर में ही रहा होगा। उसकी रानियाँ तथा अन्य लोग पूर्णमल बुन्देला के बाग़ की हवेली में ही रहते थे। चूँकि जमरूद और पेशावर के बीच की दूरी अधिक नहीं है (वर्तमान सड़क से दूरी १६ मील है); अतः स्वाभाविक है कि जसवन्तसिंह का जमरूद से पेशावर आना-जाना लगा रहता होगा। इसके अतिरिक्त उसके एकमात्र जीवित पुत्र जगतसिंह की मृत्यु २२ फ़रवरी, सन् १६७६ ई. को हुई थी। इस घटना से उसे अत्यधिक दुःख हुआ और धीरे-धीरे उसकी मनःस्थिति का असर उसके स्वास्थ्य पर भी पड़ने लगा (जसवन्तसिंह १४२ – ३)। दूसरी ओर काबुल के नये सूबेदार अमीर ख़ाँ ने जून, सन् १६७८ ई. में वहाँ पहुँचकर अफ़ग़ानों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे, फलतः उत्तर-पश्चिमी सीमा में शान्ति स्थापित हो गई थी (सरकार भाग ३, २४४)। इस स्थिति में स्वाभाविक है कि जसवन्तसिंह जमरूद की अपेक्षा पेशावर में अधिक रहता होगा।

पंचोली हस्तलिखित-ग्रन्थ (१६२ ब) तथा जोधपुर राज्य की ख्यात (भाग २, ९) में स्पष्ट रूप से लिखा है कि जमरूद की देख-भाल जसवन्तसिंह की ओर से पंचोली हरराय कर रहा था। जब उसे महाराजा की मृत्यु का समाचार मिला तो उसने सैनिकों सहित जमरूद से पेशावर के लिये प्रस्थान किया और वहाँ ९ जनवरी, सन् १६७९ ई. (माघ सुदी ८) को पहुँचा। इन्हीं दोनों ग्रन्थों में यह उल्लेख भी मिलता है कि इस दुर्घटना का समाचार पाकर काबुल का सूबेदार अमीर ख़ाँ काबुल से पेशावर आया था। जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद की यह दोनों घटनाएँ स्पष्ट रूप से संकेत करती हैं कि महाराजा की मृत्यु पेशावर में हुई थी।

इस प्रकार यह स्वीकार करना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है कि महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु बृहस्पतिवार, २८ नवम्बर को पेशावर में हुई थी।

——

परिशिष्ट 'ख'

महाराजा अजीतसिंह के जन्म की तिथि एवं जन्म से सम्बन्धित दन्तकथा

महाराजा अजीतसिंह के जन्म की तिथि के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है। फ़ारसी इतिहासकारों में मुस्ताद ख़ाँ (मग्रासीर. १०७) : ईश्वरदास नागर (फ़ुतूहात. ७३ ब) तथा शाहनवाज ख़ाँ (मग्रासिर. १७३) ने अजीतसिंह के जन्म-तिथि का उल्लेख नहीं किया है। आधुनिक इतिहासकारों में मुहम्मद सैयद अहमद (उमराए ६८) तथा टॉड (भाग २, ४४) ने भी उसकी जन्म-तिथि पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। सर जदुनाथ सरकार (औरंगजेब, भाग ३, ३२६) ने लिखा है कि अजीतसिंह का जन्म फ़रवरी, सन् १६७६ ई० में हुआ था ; परन्तु निश्चित तिथि का उल्लेख नहीं किया।

राजस्थानी ग्रन्थों में से अभय-विलास (६ ब); गुटका (३०६ अ) बाँकीदास री ख्यात (३३) व कविराजा मुरारीदान री ख्यात (६६४) में इस घटना के लिए २० फरवरी, सन् १६७६ ई० (चैत्र वदि ५, संवत् १७३६) को स्वीकार किया गया है। परन्तु ये ग्रंथ कुछ समय बाद के हैं। पंचोली (१६८ अ) ; राजरूपक (२६) ; अजितोदय (सर्ग ६, श्लोक १-१०) व अजित चरित्र (सर्ग ७, श्लोक ६) आदि समकालीन ग्रन्थों में लिखा है कि अजीतसिंह का जन्म १६ फ़रवरी, सन् १६७६ ई० (चैत्रवदि ४, संवत् १७३६) को हुआ था। ख्यात. (भाग २, १ व १६); जुनी. (६१-२); मूंदियाड़. (१७४) ; दानेश्वर. (१७२ व १८६) ; फ़ौजचन्द (१) ; अजितविलास. (२०८ ब) ; वीर (भाग २, ८२८) ; राठौड़ा (१) में भी इसी तिथि को स्वीकार किया गया है। रेउ. (भाग १, २४८) ; ओझा. (भाग ४, खण्ड २, ४७८) ; रामकर्ण आसोपा (मूल. १६२) ; फ़ारूक़ी (२११-२) व गहलोत. (मारवाड़ १५६) आदि लगभग सभी आधुनिक इतिहासकारों ने इसी तिथि का समर्थन किया है। अतएव अजीतसिंह के जन्म के लिये १६ फ़रवरी को स्वीकार करना उपयुक्त प्रतीत होता है।

अजीतसिंह का जन्म लाहौर में हुआ था, इस विषय में लगभग सभी समकालीन व आधुनिक इतिहासकार एकमत हैं। केवल सूर्यमल्ल मिश्रण ही एकमात्र ऐसा इतिहासकार है जिसके अनुसार जब बादशाह ने जसवन्तसिंह की नियुक्ति उत्तर-पश्चिमी सीमा पर की थी तो उसके परिवार को दिल्ली में रख लिया था और वहीं पर जसवन्तसिंह की मृत्यु से पूर्व ही अजीतसिंह का जन्म हुआ था। परन्तु यह कथन नितान्त अप्रामाणिक है।

अजीतसिंह की जन्म-कुण्डली इस प्रकार है :—

(मूंदियाड़ २२३; फौजचन्द १; शोध संस्थान चौपासनी से प्राप्त एक पत्र)

अजीतसिंह के जन्म के विषय में एक दन्तकथा प्रचलित है जो लगभग सभी राजस्थानी ख्यातों में पाई जाती है। कहा जाता है कि अलकपन्थी रामपुरी (अथवा हररामपुरी) का एक शिष्य सन्यासी रिधपुरी था, जिसने हिंगुलाज देवी की पाँच वर्ष तक कठिन तपस्या की। देवी ने उस पर प्रसन्न होकर यह वर दिया कि वह महाराजा जसवन्तसिंह की रानी जादम के गर्भ से उत्पन्न होकर मारवाड़ का राज्य करे। यह संन्यासी १ अगस्त, सन् १६७८ ई. (भाद्रपद वदि ६, संवत् १७३५) को गोरखटीले होते हुये पेशावर पहुँचा। उसने राठौड़ दुर्गादास को बुलाकर उसके द्वारा जसवन्तसिंह को यह सन्देश भेजा कि मैं माता हिंगुलाज की आज्ञा से आपकी रानी की कोख से जन्म लूँगा। आप स्वयं आकर मेरे दर्शन करें तथा समाधि दिलायें। जसवन्तसिंह ने उसे समाधि दिलाने के लिये कुछ व्यक्ति भेज दिये और भोज भी दिया, परन्तु वह स्वयं नहीं गया (खरड़े की ख्यात के अनुसार जसवन्तसिंह इस भय से नहीं आया था कि संसार के व्यक्ति उस पर व्यंग्य करेंगे कि पुत्र की इच्छा से सन्यासियों के पास जाता है।) इस पर संन्यासी ने समाधि लेते समय कहा कि महाराजा ने इतने निकट होते हुए भी मेरे दर्शन नहीं किये हैं, अतः मैं भी जसवन्तसिंह का मुँह नहीं देखूँगा। उसने दुर्गादास को विभूति (भस्म) एवं एक पोथी सौंपी और कहा कि यह मैं तुमसे आठवें वर्ष ले लूँगा। (ख्यात. भाग २, १६; पंचोली. १६८ अ; मूंदियाड़. १७४; अजितविलास २०७ अ; दानेश्वर. १७१-२; बांकीदास. ३५; जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात. ६ ब; खरड़े की ख्यात. ३२२; आसोपा. ४३४)।

'जसवन्तसिंह री वार्ता' व 'अजीतसिंह री वार्ता' में इस किंवदन्ती को कुछ भिन्न रूप में वर्णित किया गया है। उसके अनुसार सन्यासी का नाम सुन्दर भारथी था। इसमें हिंगुलाज देवी की आज्ञा का उल्लेख नहीं है। राठौड़ दुर्गादास सन्यासी के दर्शन के लिए आया था। जब सन्यासी को दुर्गादास से पता चला कि समस्त मारवाड़ उत्तराधिकारी न होने के कारण चिन्तित है तो उसके मन में करुणा उत्पन्न हुई और उसने समाधि लेने का निश्चय किया। इस ग्रन्थ के अनुसार जसवन्तसिंह किसी सन्यासी को जीवित समाधि दिलाकर कष्ट नहीं देना चाहता था, इसी कारण उसने सन्यासी के पास आकर समाधि दिलाना स्वीकार नहीं किया था (वार्ता. ३२ अ ब)।

परिशिष्ट 'ग'

राठौड़ों की पेशावर से दिल्ली तक की यात्रा का विवरण

(पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ एवं जोधपुर राज्य की ख्यात-आधारित)

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
मंगलवार, १४ जनवरी, सन् १६७६ ई.	आधा कोस	×	×	ख्यात में एक कोस
बुधवार १५ जनवरी	×	,,	काबुल के सूबेदार अमीर खाँ ने राठौड़ों के लिए शराब व अन्य सामग्री भेजी।	
बृहस्पतिवार, १६ जनवरी	पाँच कोस	ख़ांनेदौरां की सराय	जसवन्तसिंह की कुछ सामग्री पर शाही मुहर न लग सकी थी, अतः राठौड़ दुर्गादास, पंचोली हरिकिशन व रघुनाथ यहाँ रुक गए।	
शुक्रवार, १७ जनवरी	नौ कोस	नौशहरा	×	
शनिवार, १८ जनवरी	सात कोस	आँकोड़े	×	ख्यात में स्थान के नाम का उल्लेख नहीं है।
रविवार, १६ जनवरी	×	,,	अटक पार करने के लिए पंचोली जैकरण को नावों के प्रबन्ध के लिए भेजा, उसने स्थानीय दारोगा की सहायता से प्रबन्ध किया, परन्तु उसके द्वारा लाई हुई नावें छोटी व अपर्याप्त थीं।	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
सोमवार, २० जनवरी	×	औंकोडे	राठौड़ संग्रामसिंह व पंचोली मानदास ने नावों का प्रबन्ध किया।	
मंगलवार, २१ जनवरी	अटक पार किया	अटक पार पड़ाव	अटक का फौजदार राठौड़ सरदारों से मिलने आया।	
बुधवार, २२ जनवरी	×	"	साहणी जोगीदास को जोधपुर भेजा गया और वहाँ के राठौड़ सरदारों को शाही विरोध न करने का संदेश भेजा गया।	
बृहस्पतिवार, २३ जनवरी	×	"	×	इस तिथि के विषय में पंचोली व ख्यात दोनों शांत हैं। पंचोली में २४ जनवरी सोमवार दी गई है। संभवतः प्रथम उल्लेख २३ जनवरी का है। इस मतानुसार वर्षा के कारण इस दिन यात्रा न हो सकी थी।
शुक्रवार, २४ जनवरी	बार कोस	मनुरेडे	×	
शनिवार, २५ जनवरी	चार कोस	औसरा के नाले सराय	×	
रविवार, २६ जनवरी	पाँच कोस	हसन अब्दाल	(१) रोहतासगढ़ के फौजदार को हस्बुलहुक्म आया कि वह राठौड़	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
			सूरजमल को लेकर आगे आ जाय। उसके स्थान पर पेशावर में उपस्थित अजमेरी खां राठौड़ों को लेकर दिल्ली आयेगा। (ii) जोधपुर से राघोदास लौटकर आया और उसने वहां रानी चन्द्रावत और बीस उपस्त्रियों के सती होने का समाचार दिया एवं जोधपुर राज्य में स्थान-स्थान पर होने वाले उपद्रवों का विवरण दिया। (iii) राजगुरु पुरोहित (गांगर्जे) कल्याणदास कायस्थ, पंचोली जयसिंह साइलोत, राठौड़ सादूलोत गहलोत को जसवन्तसिंह की अस्थियाँ प्रवाहित करने के लिए हरिद्वार भेजा गया।	
सोमवार, २७ जनवरी	सात कोस	खरबूजा की सराय	मार्ग में कालापाणी पार किया था।	
मंगलवार, २८ जनवरी	×	”	नवाज बेग अप्रसन्न होकर कालापाणी पर ही रुक गया। उसे मनाने के लिए पंचोली जयकरण को भेजा गया, परन्तु वह असफल रहा।	
बुधवार, २९ जनवरी	×	”	राठौड़ संग्रामसिंह नवाज बेग को मनाकर लाया।	
बृहस्पतिवार, ३० जनवरी	सात कोस	रावलपिण्डी	×	ख्यात में इस स्थान का नाम पालड़ी लिखा है।

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
शुक्रवार, ३१ जनवरी	×	तूटी व रेवात की सराय	×	×
शनिवार, १ फ़रवरी	आठ कोस	पके की सराय	×	पंचोली में इस मुक़ाम का उल्लेख नहीं है।
रविवार, २ फ़रवरी	आठ कोस	गाखड़ के तालाव	बादशाही फरमान आया, जिसमें राठौड़ों को पुन सांत्वना दी गई थी।	ख्यात में तालाव का नाम नहीं लिखा गया है।
सोमवार, ३ फ़रवरी	नौ कोस	रोहितास गढ़	राठौड़ दुर्गादास व रघुनाथ आ पहुँचे।	
मंगलवार व बुधवार, ४-५ फ़रवरी	×	,,	वर्षा के कारण यात्रा स्थगित रही। इसी बीच रेबारी राघो गोरखटीले से प्रसाद लेकर लौटा।	
बृहस्पतिवार, ६ फ़रवरी	छः कोस	वेहत नदी पार की	×	
शुक्रवार, ७ फ़रवरी	×	खारिये की सराय	×	
शनिवार, ८ फ़रवरी	×	,,	वर्षा के कारण यात्रा न हो सकी।	
रविवार, ९ फ़रवरी	दस कोस	दोला री गुजरात	×	
सोमवार, १० फ़रवरी	×	,,	×	
मंगलवार, ११ फ़रवरी	पाँच कोस	वज़ीरावाद	चेनाव नदी पार की।	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
बुधवार, १२ फ़रवरी	सात कोस	तलोड़ी	×	
बृहस्पतिवार, १३ फरवरी	दस कोस	एमिनाबाद	×	ख्यात में स्थान का नाम नहीं दिया है।
शुक्रवार, १४ फ़रवरी	नौ कोस	नवी की सराय	जोधपुर से एक दूत आया, जिसने सैयद अब्दुल्ला खां के जोधपुर किला देखने तथा जोधपुर पर शाही अधिकार हो जाने की सूचना दी।	
शनिवार, १५ फ़रवरी	आठ कोस	रावी नदी पार करके लाहोर हवेली	×	
रविवार, १६ फ़रवरी	×	,,	होली का त्यौहार मनाया गया।	
बुधवार, १९ फ़रवरी	×	,,	अजीतसिंह व दलथम्भन का जन्म।	
बृहस्पतिवार, २० फ़रवरी	×	,,	जोधपुर के राठौड़ों, बादशाह, अमीर ख़ाँ तथा रामसिंह के पास राजकुमारों के जन्म का समाचार भेजना और विभिन्न शाही अधिकारियों को भेंट भेजना।	
२० फ़रवरी से २७ फ़रवरी	×	,,	राजकुमारों के जन्म के उपलक्ष में विभिन्न व्यक्तियों की ओर से [illegible] दी गईं।	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
२८ फ़रवरी	×	,,	'दसठौन' का उत्सव मनाया गया।	
शुक्रवार, २८ फ़रवरी	आधा कोस	लतीवाघ	×	ख्यात में इस स्थान का नाम ततीवाघ लिखा है।
शनिवार १ मार्च	×	,,	'दसठौन' का भोज हुआ।	ख्यात में दो दिन पूर्व दशोटण का उत्सव लिखा है।
रविवार व सोमवार, २ व ३ मार्च	×	,,	राठौड़ संग्रामसिंह की अस्वस्थता के कारण यात्रा न की गई।	
मंगलवार, ४ मार्च	नौ कोस	राजा के तालाब	×	
बुधवार, ५ मार्च	नौ कोस	नूर दी कुवा की सराय	×	ख्यात में आठ कोस
बृहस्पतिवार, ६ मार्च	नौ कोस	फ़तियावाद	×	पंचोली में इस दिन यात्रा न करना लिखा है।
शुक्रवार, ७ मार्च	नौ कोस	सुलतानपुर	×	ख्यात में गोयन्ददास के तालाब पर पड़ाव दिया है।
शनिवार, ८ मार्च	आठ कोस	मुकर्रम खाँ दख्खिनी की सराय	×	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
रविवार; ९ मार्च	सात कोस	नूरमहल की सराय	×	
सोमवार, १० मार्च	×	"	'दशरावों' का उत्सव हुआ।	
मंगलवार, ११ मार्च	आठ कोस	फिलौर	×	
बुधवार, १२ मार्च	पाँच कोस	लुधियाना (लैधाणां)	५ मार्च का लिखा हुआ हस्वुलहुक्म आया कि बादशाह अजमेर से दिल्ली जा रहा है, तुम सब शीघ्र वहाँ आओ। वहीं जसवन्तसिंह के उत्तराधिकारी को नाम, मनसब व राज्य दिया जाएगा।	
वृहस्पतिवार, १३ मार्च	आठ कोस	दुराहे की सराय	अजमेरी ख़ाँ को शाही हुक्म आया कि वह आगे आय, सो वह विदा हो गया।	
शुक्रवार, १४ मार्च	×	×	×	
शनिवार, १५ मार्च	सात कोस	खानोर की सराय	×	पंचोली में चैत्र सुदि १३ दो बार दी है। दूसरी बार सींहनद पर डेरा होना बताया है।
रविवार, १६ मार्च	छः कोस	अलुणा की सराय	×	
सोमवार, १७ मार्च	×	"	हस्बुलहुक्म आया कि श्यामदास ने राजकुमारों के जन्म के उपलक्ष में दो	

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
			सौ मुहरें नजर की, जो बादशाह ने स्वीकार कीं।	
मंगलवार, १८ मार्च	तीन कोस	राजा की सराय	×	
बुधवार, १९ मार्च	चार कोस	मुगल की सराय	×	
बृहस्पतिवार, २० मार्च	तीन कोस	अम्बाला	जोधपुर से सुरताण नामक दूत आया।	
शुक्रवार, २१ मार्च	दस कोस	शाहाबाद	×	
शनिवार, २२ मार्च	आठ कोस	कुरुक्षेत्र, थानेश्वर	×	
रविवार, २३ मार्च	सात कोस	×	×	
सोमवार, २४ मार्च	सात कोस	करनाल	×	
मंगलवार, २५ मार्च	सात कोस	×	×	
बुधवार, २६ मार्च	सात कोस	पाणीपंथाडै	×	
बृहस्पतिवार, २७ मार्च	आठ कोस	संनाल		
शुक्रवार, २८ मार्च	बारह कोस	सोनिपत (सुंनपत)	(i) जोधपुर से एक दूत आया। (ii) नवाज बेग को यहाँ से आगे भेज दिया गया।	ख्यात में यह घटनाएँ एक दिन बाद दी गई हैं।

तिथि	यात्रा की दूरी	पड़ाव	विशेष घटना	विशेष विवरण
शनिवार, २९ मार्च	×	तूटी	×	
रविवार, ३० मार्च,	सात कोस	नालरै	×	
सोमवार, ३१ मार्च	तीन कोस	एक झील पर	×	
मंगलवार, १ अप्रेल	डेढ़ कोस	बादली से एक कोस आगे	×	
बुधवार, २ अप्रेल	×	मनोहरपुर	जोधपुर से एक दूत आया, जिसने बताया कि वहाँ से कुछ राठौड़ दिल्ली आ रहे हैं, और वे १५ अप्रेल तक आ जायेंगे।	
बृहस्पतिवार, ३ अप्रेल	×	,,	(i) कुछ राठौड़ सरदार बख्शी सरबुलन्द खाँ से मिलने गये। (ii) राघोदास ने जोधपुर से आकर बताया कि राठौड़ों ने कोटपुतली से प्रस्थान कर दिया है।	
शुक्रवार, ४ अप्रेल	×	,,	राठौड़ सरदार पुनः सरबुलन्द खाँ से मिले।	
शनिवार, ५ अप्रेल	—	दिल्ली में जसवन्तपुरा में महाराजा की हवेली में	—	

परिशिष्ट 'घ'

अजीतसिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में विभिन्न मत

राजस्थानी तथा फारसी के लगभग सभी ग्रन्थों में लिखा है कि अजीतसिंह की हत्या उसके दूसरे पुत्र बख्तसिंह ने की थी; परन्तु पितृहत्या का यह घृणित कार्य क्यों किया गया, इस विषय में विभिन्न मत हैं। कुछ फारसी ग्रन्थों में अजीतसिंह के चरित्र को कलंकित करते हुए यह लिखा गया है कि अजमेर से जोधपुर लौटने पर अजीतसिंह का अपने पुत्र बख्तसिंह की पत्नी से अनुचित सम्बन्ध हो गया। इससे बख्तसिंह को गहरा आघात लगा और उसने आवेश में आकर अपने पिता की हत्या की (कामवर जिसका उल्लेख इरविन लेटर मुगल्स, (भाग २, ११६-७) ने किया है; (तारीख—ए—मुजफ्फरी ३३३)। परन्तु वारिद, ख़फी ख़ां तथा शाहनवाज़ ख़ां आदि फारसी के प्रमुख इतिहासकारों ने इसका कोई संकेत नहीं किया है। यदि यह बात सत्य होती तो ये इतिहासवेत्ता इसका उल्लेख अवश्य करते। इतना ही नहीं, इनमें से वारिद (मीरात-उल-वारिदात, १७८ ब, १७९ अ) ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि मुहम्मदशाह ने अभयसिंह को जोधपुर राज्य तथा अहमदाबाद सूबे का लालच देकर इस कार्य के लिए प्रेरित किया था। शाहनवाज़ ख़ां (मआसिर, १७५) ने लिखा है कि मुहम्मदशाह के दरबारियों की प्रेरणा से राजकुमार ने यह कार्य किया।

टॉड का मत है कि फर्रुख़सियर के गद्दी से हटाये जाने के बाद अजीतसिंह व सैयद बन्धुओं के बीच मतभेद हो गया। महाराजा उनकी अन्य घृणित योजनाओं के पक्ष में नहीं था। फलतः वह अपने बड़े पुत्र को दरबार में छोड़कर जोधपुर लौट गया। उसके चले जाने के बाद सैयदों और अन्य उच्चाधिकारियों ने अभयसिंह को डराया कि अजीतसिंह की नीति से जोधपुर राज्य का विनाश हो जायेगा। उन्होंने यह भी समझाया कि जोधपुर की रक्षा एवं उसकी अपनी प्रगति का एकमात्र उपाय यही है कि या तो उसके पिता को सिंहासन से हटा दिया जाय अथवा उसकी मृत्यु हो जाय। पहले तो अभयसिंह हिचकिचाया, परन्तु बाद में उसने उनकी बात मानकर अपने भाई को पिता का वध करने के लिये पत्र लिखा और इस कार्य के बदले में उसे ५५५ गांवों सहित नागोर देना स्वीकार किया (टॉड भाग १,५८३-४)। परन्तु टॉड का मत ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाता। सैयद भाई इस समय से पहले ही मारे जा चुके थे, अतः वे अभयसिंह के प्रेरक नहीं हो सकते। साथ ही सैयदों एवं अजीतसिंह के बीच आजीवन मैत्री सम्बन्ध रहा। अतः इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

यह भी कहा जाता है कि जिस समय अजीतसिंह ने अजमेर में विद्रोह किया था, उस समय वज़ीर-उल-मुमालिक एतमादुद्दौला क़मरुद्दीन ख़ां ने बख्तसिंह को

जोधपुर दिलवाने का वचन दिया था, अतः इसी लालच से उसने यह कार्य किया (तारीख़-ए-मुज़फ्फरी ३३३)। आधुनिक इतिहासकार श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ के अनुसार अभयसिंह के दिल्ली पहुँचने पर मुहम्मदशाह ने उससे घनिष्टता बढ़ानी आरम्भ कर दी थी। राजा जयसिंह के द्वारा उसने भण्डारी रघुनाथ को भी अपनी ओर मिला लिया और फिर इन दोनों के द्वारा उसने महाराजकुमार के पिता के विरुद्ध भड़काना आरम्भ किया, परन्तु अभयसिंह पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। तब एक दिन उसने जयसिंह व रघुनाथ के द्वारा एक पत्र लिखवाया जिसमें बख्तसिंह को पिता को मारने के लिए लिखा था। किसी प्रकार इस जाली पत्र पर अभयसिंह के हस्ताक्षर करवा लिये गये। यही पत्र बख्तसिंह के पास भेज दिया गया (रेउ, भाग १,३२७)। रासमाला में लिखा है कि एक दिन बादशाह मुहम्मदशाह महाराजकुमार अभयसिंह को साथ लेकर यमुना में नौकाविहार के लिए गया। जब वे नदी के मध्य पहुँचे तो बादशाह ने यह आज्ञा दी कि अभयसिंह को नदी में फेंक दिया जाय। जब राजकुमार ने इसका कारण पूछा तो उसने कहा कि यदि वह अपने भाई बख्तसिंह को एक पत्र लिखकर पिता को मारने का आदेश दे, तभी उसे जीवित छोड़ा जायेगा। विवश होकर अभयसिंह ने भंडारी रघुनाथ को आज्ञा दी कि वह इस आशय का एक पत्र बख्तसिंह को लिख दे और इस कार्य के लिए नागोर देने का आश्वासन दे (रासमाला १२३)। परन्तु इन तथ्यों की पुष्टि अन्यत्र कहीं नहीं होती, अतः इन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता।

अधिकतर राजस्थानी ख्यातों एवं ग्रन्थों में लिखा है कि मुहम्मदशाह के कहने पर आम्बेर के शासक जयसिंह तथा उसके अन्य उच्चाधिकारियों ने अभयसिंह को बताया था कि बादशाह अजीतसिंह के कार्यों से और उसकी सैयदों से मित्रता के कारण उससे अप्रसन्न है, और जोधपुर पर आक्रमण करने के लिए सुअवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। अवसर पाते ही वह वहाँ अपना अधिकार स्थापित कर लेगा। इससे राठौड़ों का विनाश होगा और राज्य भी हाथ से निकल जायेगा। उसने समझाया कि उचित यही है कि अजीतसिंह को किसी न किसी प्रकार मरवा दिया जाय। इससे बादशाह का क्रोध दूर हो जायेगा, और वह प्रसन्न होकर अभयसिंह को जोधपुर का अधिकार भी सौंप देगा। राजकुमार ने भंडारी रघुनाथ से सलाह पूछी तो उसने भी जयसिंह का ही समर्थन किया। तब उसने अपने छोटे भाई को एक पत्र लिखा जिसमें सम्पूर्ण स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए उसे यह कार्य करने के लिए लिखा (ख्यात भाग २, १८३; वीर भाग २, ८४२ व ९९७; वंश. भाग ४, ३०८२-३; दानेश्वर २४८-९; कविराजा ६५७; वार्ता १२६ ब)।

सम्पूर्ण स्थिति का अवलोकन करने से इस मत को स्वीकार करना युक्ति-संगत जान पड़ता है। बादशाह मुहम्मदशाह अपने शासनारम्भ से ही सैयद भाइयों तथा सैयद बन्धुओं के प्रभाव से पूर्ण परिचित था। सम्भवतः इसी कारण उसने यथाशीघ्र दोनों सैयद भाइयों को अपने मार्ग से हटा दिया। अब त्रिकुट में से केवल

अजीतसिंह शेष रहा था; अहमदाबाद तथा अजमेर की सूबेदारी से हटाकर सम्भवतः बादशाह ने उसकी शक्ति को कम करने का प्रयास किया था। अतः यह स्वाभाविक प्रतीत होता है कि अभयसिंह के दरबार में आने पर उसने जयसिंह व अन्य लोगों के द्वारा उसे आतंकित करके इस कार्य के लिए प्रेरित किया हो।

इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि अजीतसिंह की हत्या में जयसिंह का मुख्य हाथ था। फर्रुखसियर के समय से ही उसका सम्बन्ध अजीतसिंह के साथ बिगड़ चुका था और मुहम्मदशाह के समय में उसका प्रभाव दरबार में बढ़ गया था। अभयसिंह के अजमेर से दिल्ली आने के बाद उससे भी जयसिंह की घनिष्टता बढ़ती जा रही थी। अतः यह कहना न्यायोचित प्रतीत होता है कि जयसिंह ने बादशाह की इच्छा-पूर्ति के लिए और सम्भवतः अपना प्रभुत्व बढ़ाने के लिए अभयसिंह को उत्तेजित किया हो। महाराजा अजीतसिंह की मृत्यु के केवल दो ही दिन उपरान्त भूकरका (बीकानेर) के ठाकुर कुशलसिंह ने बीकानेर के राजा सुजानसिंह को एक पत्र लिखा जिसमें अजीतसिंह की हत्या की सूचना दी है। इसमें उसने स्पष्ट लिखा है कि मारवाड़ के लोग जयसिंह को गालियां देते हैं कि इसने ही अभयसिंह से कहकर बख्तसिंह को पत्र लिखवाया तथा महाराजा की हत्या करवाई (प्रतिलिपि रा०पु०बी०)।

जयसिंह की ही भांति भंडारी रघुनाथसिंह ने भी अभयसिंह को प्रेरणा दी थी, इसमें सन्देह नहीं है। अभयसिंह के शासनारम्भ में भंडारियों के विरुद्ध विद्रोह हुआ और अभयसिंह को मजबूर होकर अपने इस अन्तरंग साथी को बन्दी बनाना पड़ा। (वीर भाग २,८४४; ग्लोरीज परिशिष्ट ब ११,१३०-१)। इससे स्पष्ट होता है कि महाराजा की हत्या में भंडारियों ने भी योग दिया था।

अन्त में यह प्रश्न शेष रह जाता है कि बख्तसिंह ने पितृ-हत्या का यह घृणित कार्य क्यों किया? कहा जाता है कि अभयसिंह ने अपने अनुज को नागोर तथा उसके ५५५ गांव, अथवा आधा राज्य तथा नागोर के राजा की पदवी, अथवा नागोर व मेड़ता देना स्वीकार किया था (टॉड भाग १, ५८४; वंश. भाग ४, ३०८३; वार्ता १२६ ब)। परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि अजमेर छोड़ते समय महाराजा ने बादशाह के साथ जो सन्धि की थी, उसके अनुसार उसने नागोर से अपना अधिकार हटाना स्वीकार कर लिया था। फलतः इस समय नागोर पर उसका अधिकार नहीं था। अतः अभयसिंह इसके विषय में कोई वचन देने का अधिकार नहीं रखता था। विलियम इरविन का मत है कि महाराजा की स्वाभाविक मृत्यु होने के बाद बख्तसिंह को स्वाभावतः नागोर मिलता (इरविन भाग २, ११६)। परन्तु जोधपुर राज्य में छोटे भाइयों के लिए ऐसी व्यवस्था करने का कोई नियम था, ऐसा आभास नहीं मिलता जैसाकि श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ ने लिखा है, यदि अभयसिंह के सभी भाइयो को नागोर के बराबर स्थान दिया जाता तो अभयसिंह के लिए जोधपुर के क़िले से बाहर पैर रखने को भी स्थान न बचता (ग्लोरीज, परिशिष्ट ब १०, १२२)। ऐसा प्रतीत होता है कि बादशाह ने अभयसिंह के माध्यम

से बख्तसिंह को नागौर का प्रदेश तथा राजाधिराज की पदवी देना स्वीकार किया था। श्री रेउ ने भी इसी मत को स्वीकार किया है (ग्लोरीज, परिशिष्ट ब १०, १२२)।

पितृ-हत्या के निन्दनीय कार्य के लिए यह पुरस्कार अधिक नहीं था; फिर भी बख्तसिंह ने इसे स्वीकार कर लिया। सम्भवतः इसका कारण यह था कि बख्तसिंह बहुत महत्वाकांक्षी था और उसे यह आशा थी कि नागौर का अधिकार पाकर वह अपनी शक्ति बढ़ा सकेगा और फिर अवसर पाकर जोधपुर पर अधिकार करना कठिन न होगा। वास्तव में उसकी यह आशा सफलीभूत भी हुई और सन् १७५१ ई० में उसने अपने भतीजे रामसिंह को हटाकर जोधपुर पर अधिकार कर लिया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अजीतसिंह की हत्या, बादशाह मुहम्मदशाह की इच्छा, सवाई राजा जयसिंह तथा भंडारी रघुनाथ की प्रेरणा तथा महाराजकुमार अभयसिंह तथा राजकुमार बख्तसिंह के कुकृत्य का परिणाम था।[1]

---

१. अजीतसिंह की मृत्यु के सम्बन्ध में ग्लोरीज़ ऑव् मारवाड़ एण्ड ग्लोरियस राठौरज़ के परिशिष्ट ब १० व ब ११ विशेष उपयोगी हैं।

परिशिष्ट ङ

समय-समय पर अजीतसिंह के अधिकृत परगने

परगने	अधिकार	हाथ से निकलना
सोजत व जैतारण	दिसम्बर, सन् १६७८ ई०	सम्भवतः अगस्त, सन् १६७९ ई.
जोधपुर	सम्भवतः जुलाई, सन् १६७९ ई०	२ सितम्बर सन् १६७९ ई.
मेड़ता व सिवाना	अगस्त, सन् १६७९ ई.	नवम्बर, सन् १६७९ ई.
सिवाना	सन् १६८७ ई.	मार्च, सन् १६८८ ई.
मेड़ता	जून, सन् १६९२ ई.	जुलाई, सन् १६९२ ई.
सिवाना	जून, सन् १६९२ ई.	जनवरी, सन् १६९३ ई.
जालोर व सांचोर	मई, सन् १६९८ ई.	
जोधपुर	१२ मार्च, सन् १७०७ ई.	मार्च-अप्रेल, सन् १७०८ ई.
मेड़ता	मार्च, सन् १७०७ ई.	नव०-दिस०, सन् १७०७ ई.
पाली	मार्च, सन् १७०७ ई.	
सोजत	मई, सन् १७०७ ई.	
सोजत, सिवाना, फलोदी	अप्रेल, सन् १७०८ ई.	
मेड़ता	जून सन् १७०८ ई.	
जोधपुर	४ जुलाई, सन् १७०८ ई.	
सांभर	३ अक्तूबर, सन् १७०८ ई.	
डीडवाना	अक्तूबर, सन् १७०८ ई.	सन् १७२३ ई.
मारोठ	१६ अप्रेल, सन् १७१० ई.	
जोधपुर राज्य	१९ मई, सन् १७१० ई.	
सोरठ की फ़ौजदारी	१० नवम्बर, सन् १७११ ई.	सम्भवतः अधिकार नहीं किया।
बघवाड़ा भिणाय, विजयगढ़	सन् १७१२ ई.	सन् १७२३ ई. में भिणाय हाथ से निकल गया।
रूपनगर व मालपुरा में थाने	सन् १७१२ ई.	
गुजरात की सूबेदारी	१४ नवम्बर, सन् १७१२ ई.	अधिकार नहीं किया।
तोड़ा में थाने	सन् १७१३ ई.	सन् १७२३ ई.
पिसांगण (जोधपुर)	मई, सन् १७१३ ई.	
थट्टा की सूबेदारी	१५ अक्तूबर, सन् १७१३ ई.	अधिकार नहीं किया।
जोधपुर, मेड़ता, सोजत	५ अगस्त, सन् १७१४ ई.	
गुजरात की सूबेदारी	२० अप्रेल, सन् १७१५ ई.	मई, सन् १७१७ ई.

परगने	अधिकार	हाथ से निकलना
मारोठ, परबतसर, केकड़ी व ववाल	सन् १७१६ ई.	सन् १७२३ ई.
अनहलपाटन (गुजरात)	सन् १७१६ ई.	सन् १७२३ ई.
नागोर	सन् १७१६ ई.	सन् १७२३ ई.
जोधपुर राज्य	२३ दिसम्बर, सन् १७१८ ई.	
गुजरात की सूबेदारी	२८ दिसम्बर, सन् १७१८ ई	
गुजरात की सूबेदारी	फ़रवरी, सन् १७१९ ई	
गुजरात की सूबेदारी	५ अक्तूबर, सन् १७१९ ई.	मई, सन् १७२१ ई.
अजमेर की सूबेदारी	२६ अक्तूबर, १७१९ ई.	४ अगस्त, सन् १७२१ ई.
सांभर	अगस्त, सन् १७२० ई.	सन् १७२३ ई.
अजमेर की सूबेदारी	फरवरी, सन् १७२२ ई.	२३ मार्च, सन् १७२३ ई.

परिशिष्ट 'च'

अजीतसिंह को मुगल शासकों द्वारा प्रदत्त मनसब व अन्य उपहार

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
जनवरी, सन् १६८१ ई.	७००० जात ७००० सवार।	दस हजार अशर्फियाँ और जोधपुर का राज्य।	शाहजादा अकबर	अकबर की स्वातन्त्र्य घोषणा पर।	जयपुर अखबारात, औरंगजेब, वर्ष १, २४४-५।
मई, सन् १६९८ ई.	१५०० जात ५०० सवार।		बादशाह औरंगजेब	दुर्गादास द्वारा अजीतसिंह के अपराध क्षमा करने की प्रार्थना पर।	ख्यात भाग २, ९६; मूंदियाड़ २०७; जुनी ७८; दानेश्वर २१४।
,,	—	जालोर व सांचोर की फ़ौजदारी व जागीरदारी।	,,	,,	मीरात ३०२; जुनी ७८; दानेश्वर २१४।
६ नवम्बर, सन् १७०० ई.।	—	ख़िलअत भेजी गई।	,,	अजीतसिंह को दरबार में बुलाने के लिए।	अखबारात, लन्दन संग्रह, औरंगजेब, वर्ष ४४, ३५१ ब।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार ग्रन्थ
१६ नवम्बर, सन् १७०० ई.	—	अजमेर के कोषागार से तीन हजार रुपया देने की आज्ञा।	बादशाह औरंगजेब	अजीतसिंह को दरबार में बुलाने के लिए।	अख़बारात, लन्दन संग्रह, औरंगजेब, वर्ष ३५४ व ३५५ अ।
६ अप्रेल, सन् १७०७ ई.	—	ख़ास-ख़िलअत।	शाहज़ादा मुईज्जुद्दीन	आजम के विरुद्ध अपने पिता शाहआलम के लिए अजीतसिंह की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए।	निशान नं. १२, रा. पु. बी.
१२ मई, सन् १७०७ ई.	७००० जात ७००० सवार।	पूर्व प्रदत्त जागीर।	शाहज़ादा आजम	मुअज्जम के विरुद्ध अजीतसिंह की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हुए।	जयपुर अख़बारात, आजम, वर्ष १. १२०।
१७ फरवरी, सन् १७०८ ई.	—	पचास हज़ार रुपया नक़द व ख़ास ख़िलअत।	बादशाह बहादुरशाह	अजीतसिंह के दरबार में आने पर।	बहादुर, ८४ ब; जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष २, ३।
१८ फरवरी, सन् १७०८ ई.	—	दो सौ रुपया नक़द व चाँदी की जीन सहित घोड़ा।	,,	,,	जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष २, ५; बहादुर ८५ अ।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
२ अक्तूबर, सन् १७०८ ई.	—	राजा की पदवी, ख़िलअत अदवोसी तथा हाथी।	बादशाह बहादुरशाह	—	जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष २, ११०।
१६ मई, सन् १७१० ई.	—	जोधपुर का राज्य दिया गया।	"	—	फ़रमान नं. २०, रा. पु. बी., जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ८१; कामवर ३४८।
१७ जून, सन् १७१० ई.	४००० ज़ात ४००० सवार।	—	"	दरबार में उपस्थित होने पर।	जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष ४, ११-२।
'जून सन् १७१० ई०	—	ख़िलअत बड़ी तलवार जड़ाऊ जमधर, हाथी, ईराक़ी घोड़े।	बादशाह बहादुरशाह	जोधपुर जाने के लिए विदा देते समय।	कामवर ३४८।
१० नवम्बर, सन् १७११ ई.	४००० ज़ात ४००० सवार।	सोरठ की फ़ौजदारी।	"	अजीतसिंह के साश्रोरा पहुँचने पर।	जयपुर अख़बारात, बहादुरशाह, वर्ष ५. ७४९; फ़रमान नं. ५ रा. पु. बी. (तिथिहीन)।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
१८ जुलाई, सन् १७१३ ई.	—	एक जोड़ा कुंडल का मोती व जड़ाऊ पदक।	बादशाह फ़र्रुख़सियर	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, ६।
१ अगस्त, सन् १७१३ ई.	—	ख़ास-खिलअत व कुछ जवाहरात।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, ३८।
३ अगस्त, सन् १७१३ ई.	—	बरसाती-खिलअत।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, ४७-८।
१५ अक्तूबर, सन् १७१३ ई.	—	गुजरात की सूबेदारी।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, १४१।
अक्तूबर, सन् १७१३ ई.	७००० ज़ात ७००० सवार।	—	,,	—	रोज़नामचा १२३।
२० अक्तूबर, सन् १७१३ ई.	—	ख़ास-खिलअत, सिरपेच व बालाबन्द।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, १५१।
१ नवम्बर, सन् १७१३ ई.	—	एक जड़ाऊ पदक, मोतियों का गोशवारा खिलअत, पाँच थान, एक जड़ाऊ तलवार।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुख़सियर, वर्ष २, खण्ड २, १६६।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-स्रोत
५ अगस्त, सन् १७१४ ई.	—	[illegible]-खिलअत	बादशाह फर्रुखसियर	—	जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ३, भाग १, ११।
नव.-दिसम्बर, सन् १७१४ ई.	—	जोधपुर, मेड़ता, व सोजत जागीर में।	"	—	मुतफरिक अखबारात, नं. ८८१, रा. पु. बी.।
१६ मार्च, सन् १७१५ ई.	—	खास-खिलअत	"	—	जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर, वर्ष ४, भाग १, ३७।
२० मार्च, सन् १७१५ ई.	—	"	"	—	जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर वर्ष ४, भाग १, ६६।
११ अप्रैल, सन् १७१५ ई.	—	खिलअत, हाथी, घोड़ा व तलवार	"	—	जयपुर अखबारात, नं. २५९९ रा. पु. बी.।
२० अप्रैल, सन् १७१५ ई.	६००० जात, ५००० सवार २००२ अस्पा और एक हजार सवार गुजरात की सूबेदारी के लिए।	गुजरात की सूबेदारी और बीस लाख दाम इस सूबेदारी के लिए।	"	—	जयपुर अखबारात, फर्रुखसियर वर्ष ४, भाग १, ८५।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएं	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
९ दिसम्बर, सन् १७१५ ई.	—	गुजरात की सूबेदारी का फ़रमान जारी हुआ व खिलअत भेजी गई।	बादशाह फ़र्रुखसियर	—	फ़रमान न. १०, रा. पु. बी.
२४ जनवरी, सन् १७१६ ई.	—	खिलअत व जड़ाऊ सिरपेच।	,,	—	जयपुर अख़बारात फ़र्रुखसियर, वर्ष ४, खण्ड २, २६० ।
६ फरवरी, सन् १७१६ ई.	—	दो बाज व दो साहीबीन।	,,	शिकार के समय	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुखसियर, वर्ष ४, खण्ड २, २७७ ।
सन् १७१६ ई.	—	नागोर की फौजदारी, बहुमूल्य खिलअत, जड़ाऊ सिरपेच।	,,	—	मीरात ३७० ।
५ नवम्बर, सन् १७१६ ई.	७००० जात ७००० सवार डेढ़ हजार दो अस्पा और एक हजार सवार नागोर के लिए।	अहमदाबाद की सूबेदारी जोधपुर व नागोर की जमीन्दारी व पचास लाख दाम और एक करोड़ दाम अहमदाबाद के लिये।	,,	—	जयपुर अख़बारात, फ़र्रुखसियर वर्ष ५, खण्ड १, १६३ ।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
१३ दिसम्बर, सन् १७१८ ई.	—	खिलअत, जड़ाऊ सिरपेच, दो घोड़े।	बादशाह फर्रुखसियर	फर्रुखसियर के अजीतसिंह के घर से लौटते समय।	रोजनामचा २१६-२०; कामवर ४३४।
१८ दिसम्बर, सन् १७१८ ई.	—	वस्त्र जुगा व जड़ाऊ सिरपेच।	"	अजीतसिंह के दरबार में जाने पर।	कामवर ४३५।
२३ दिसम्बर, सन् १७१८ ई.	पूर्व मनसब	जोधपुर का राज्य।	"	—	फरमान नं. ६, रा. पु. बी।
२८ दिसम्बर, सन् १७१८ ई.	—	गुजरात की सूबेदारी, कमरपटका, जड़ाऊ सिरपेच, घोड़ा व हाथी।	"	—	रोजनामचा २२७; कामवर ४३४।
फरवरी, सन् १७१९ ई.	—	गुजरात की सूबेदारी।	बादशाह रफीउद्दरजत।	—	मीरात ३८६; ख़फ़ी ख़ां भाग २, ८१९।

तिथि एवं सन्	मनसब	उपहार की अन्य वस्तुएँ	किसके द्वारा	किस अवसर पर	आधार-ग्रन्थ
२६ अक्टूबर, सन् १७१६ ई.	—	अजमेर की सूबेदारी।	बादशाह मुहम्मदशाह	—	कामवर, ४५५; खफ़ी खाँ भाग २, ८३८, राजरूपक ५१८।
सम्भवतः फरवरी, सन् १७२२ ई.	—	अजमेर की सूबेदारी दूसरी बार मिलना।	"	अजीतसिंह के क्षमा माँगने पर।	शिवदास, ८५ अ।

परिशिष्ट 'छ'

जोधपुर के राजराजेश्वर महाराजा अजीतसिंह (सन् १६७६ ई. से सन् १७२४ ई.)

तिथि-क्रम

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१६७८	२८ नवम्बर	महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु।
,,	१६ दिसम्बर	जसवन्तसिंह की मृत्यु का समाचार जोधपुर पहुँचना।
,,	३१ दिसम्बर	शाही फ़रमान द्वारा सोजत और जैतारण के अतिरिक्त समस्त परगनों पर शाही अधिकार में लेने की सूचना। पुत्र उत्पन्न होने पर समस्त प्रदेश वापस करने का आश्वासन, अटक पार उतारने की दस्तक तथा ख़र्च के लिए बीस हज़ार रुपया मिलना।
१६७९	१ जनवरी	अटक पार करने की दस्तक वापस लिया जाना।
,,	१३ जनवरी	बादशाह का जोधपुर में फ़ौजदार, क़िलेदार, अमीन व कोतवाल नियुक्त करना।
,,	१४ जनवरी	राठौड़ों का पेशावर से प्रस्थान।
,,	२४ जनवरी	औरंगज़ेब का दिल्ली से अजमेर के लिए प्रस्थान।
,,	१५ फरवरी	राठौड़ों का लाहौर पहुँचना।
,,	१९ फरवरी	अजीतसिंह का जन्म।
,,	१९ फरवरी	कुछ घड़ी उपरान्त दलथम्मन का जन्म।
,,	१९ फरवरी	बादशाह का अजमेर पहुँचना।
,,	२६ फरवरी	बादशाह को अजीतसिंह व दलथम्मन के जन्म का समाचार मिलना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१६७९	२७ फरवरी	राठौड़ सरदारों व ख़ानेजहाँ को उक्त समाचार मिलना।
,,	२८ फरवरी	राठौड़ों का लाहौर से प्रस्थान।
,,	२ मार्च	जोधपुर पर शाही अधिकार।
,,	१० मार्च	औरंगजेब का अजमेर से दिल्ली की ओर प्रस्थान।
,,	१८ मार्च	इन्द्रसिंह का दक्षिण से आकर बादशाह से मिलना।
,,	२ अप्रैल	बादशाह का दिल्ली पहुँचना।
,,	२ अप्रैल	जज़िया कर लगाना।
,,	५ अप्रैल	पेशावर वाले राठौड़ सरदारों के दल का दिल्ली पहुँचना।
,,	८ अप्रैल	जोधपुर से आये हुये राठौड़ों का दिल्ली पहुँचना।
,,	१४ अप्रैल	राठौड़ सरदारों का अजीतसिंह को राज्य देने के लिये बादशाह से प्रार्थना करना।
,,	२६ मई	इन्द्रसिंह को जोधपुर का राज्य देना।
,,	सम्भवतः जून	दलथम्भन की मृत्यु।
,,	जुलाई	अजीतसिंह को गुप्त रूप से दिल्ली से निकालना।
,,	१५ जुलाई	रानियों व राजकुमारों को नूरगढ़ बुलाना और इस कार्य के लिए फ़ुलाद ख़ाँ को राठौड़ों के पास भेजना।
,,	१६ जुलाई	दिल्ली में राठौड़-मुग़ल संघर्ष का आरम्भ।
,,	जुलाई	राठौड़ों का जोधपुर पर बलपूर्वक अधिकार।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
	२३ जुलाई	राजकुमार का दुर्गादास व अन्य राठौड़ों के साथ जोधपुर के निकट पहुँचना।
	सम्भवतः अगस्त	सोजत व जैतारण के परगने खालसा किया जाना।
	अगस्त	मेड़ता व सिवाना के परगनों पर राठौड़ों का अधिकार।
	१७ अगस्त	बादशाह का सरबुलन्द खाँ को जोधपुर पर पुनः अधिकार करने के लिए विशाल सेना के साथ नियुक्त करना।
१६७६	२१ अगस्त	पुष्कर में मेड़तिया राजसिंह तथा तहव्वर खाँ के बीच युद्ध।
"	१ सितम्बर	अजीतसिंह का राज्यारोहण।
"	२ सितम्बर	इन्द्रसिंह का जोधपुर के किले में निर्विरोध प्रवेश।
"	३ सितम्बर	औरंगजेब का दिल्ली से अजमेर के लिए प्रस्थान।
"	२५ सितम्बर	बादशाह का अजमेर पहुँचना।
"	सम्भवतः सितम्बर	अजीतसिंह का राणा राजसिंह की शरण में पहुँचना।
"	३० नवम्बर	औरंगजेब का अजमेर से उदयपुर के लिए प्रस्थान।
	सितम्बर, सन् १६७९ ई. से दिसम्बर सन् १६८० ई.	मारवाड़ तथा मेवाड़ में स्थान-स्थान पर उपद्रव।
१६८१	३ जनवरी	शाहजादा अकबर की स्वातंत्र्य घोषणा।
"	१५ जनवरी	तहव्वर खाँ का वध और राजपूतों का अकबर के शिविर से भाग जाना।

सन्	तिथि	विशेष विवरण
१६८१	१६ जनवरी	अकबर का पलायन।
,,	२५ मार्च	इन्द्रसिंह से जोधपुर का राज्याधिकार वापस लेना।
,,	१ जून	अकबर का राठौड़ दुर्गादास के साथ मरहठा राजा शंभाजी के आश्रय में पहुँचना।
,,	१४ जून	राणा राजसिंह तथा बादशाह औरंगज़ेब में सन्धि।
सन् १६८१ ई. से सन् १६८७ ई.	—	मारवाड़ में राठौड़ सरदारों के उपद्रव।
१६८७ ई.	१८ मार्च	अजीतसिंह का गुप्तावस्था से बाहर आना।
,,	८ अगस्त	दुर्गादास का दक्षिण से लौटकर अपने गाँव भीमरलाई पहुँचना।
,,	२० अक्तूबर	अजीतसिंह और दुर्गादास की प्रथम भेंट।
,,	—	इनायत ख़ाँ का अजीतसिंह को सिवाना का अधिकार देना।
१६८७ से १६९२	—	मारवाड़ में राठौड़ सरदारों के उपद्रव।
१६९२	मार्च–अप्रैल	अजीतसिंह का दुर्गादास को भेजकर राणा जयसिंह व उसके पुत्र अमरसिंह का मतभेद दूर करवाना।
१६९२	—	अजीतसिंह का सिवाना पर अधिकार।
,,	९ अक्तूबर	अजीतसिंह का सिवाना से अजमेर जाना।
१६९३	१९ जनवरी	अजमेर के सूबेदार सफी ख़ाँ से मिलना।
,,	—	अजीतसिंह का दुर्गादास को मनाने के लिए भीमरलाई जाना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१६९३	२१ दिसम्बर	दुर्गादास का अजीतसिंह के पास लौटना।
१६९४	..	अजीतसिंह का बिलाड़ा में उपद्रव करना।
१६९४-५	---	शुजात खाँ का अजीतसिंह को गुप्त रूप से चौथ व राहदारी देना स्वीकार करना।
१६९६	२८ जनवरी	अजीतसिंह का बीजापुर में शाही सेना को परास्त करना।
,,	मई—जून	अजीतसिंह का राणा व राजकुमार का मनोमालिन्य दूर करने के लिये स्वयं उदयपुर जाना।
,,	१२ जून	अजीतसिंह का राणा जयसिंह के भाई गजसिंह की पुत्री के साथ विवाह।
,,	२८ जून	देवलिया के शासक प्रतापसिंह की कन्या से विवाह।
,,	—	दुर्गादास का शाहजादा अकबर की पुत्री सफ़ियतुन्निसा को बादशाह के पास भेजना।
१६९६-७	—	बादशाह की दुर्गादास को एक लाख रुपया देने की आज्ञा व मेड़ता परगना देना।
१६९७-८	—	दुर्गादास को धांधुका व कुछ अन्य महल का अधिकार मिलना।
१६९८	मई	दुर्गादास का औरंगजेब से मिलना उसे मनसब व अन्य उपहार तथा मेड़ता, जैतारण व सिवाने के परगने जागीर में मिलना।
,,	,,	अजीतसिंह को मनसब तथा जालोर व सांचोर के परगने जागीर में मिलना।
,,	२ जुलाई	अजीतसिंह का जालोर पर अधिकार।
१६९९	२२ जून	जैसलमेर के राव अमरसिंह की पुत्री से विवाह।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७००	अप्रैल	गुजरात के हलवद नामक स्थान के अधिकारी चन्द्रसेन की कन्या से विवाह।
"	१४ जून	रोहचे के पृथ्वीराज के पुत्र फतेहसिंह की बेटी से विवाह।
१७००–१	–	अजीतसिंह का बार-बार शाही सेवा में बुलाये जाने पर भी दरबार में नहीं जाना।
१७०१	२२ जनवरी	होटलू के चौहान चतुरसिंह की लड़की से विवाह।
१७०१–२	—	देरावर के मालिक भाटीदलशाह की पुत्री से विवाह।
१७०१–२	—	सांचोर के चौहान सहसमल की कन्या से विवाह।
१७०३	—	आजम का दुर्गादास को मारने का असफल प्रयत्न।
१७०३–५	—	अजीतसिंह व दुर्गादास का मारवाड़ में उपद्रव करना।
१७०५	—	अजीतसिंह व दुर्गादास में मनोमालिन्य, दुर्गादास का पुनः शाही मनसब स्वीकार करना।
१७०६	५ जनवरी	अजीतसिंह को मोहकमसिंह के ससैन्य जालोर की ओर आने का समाचार मिलना और उसका जालोर से चले जाना।
१७०६	९ जनवरी	मोहकमसिंह का जालोर पर अधिकार।
"	१५ जनवरी	मोहकमसिंह का जालोर छोड़ देना।
"	—	अजीतसिंह का रायचाँ के चौहान, देवड़ों व राड़-धड़ा के शाही अधिकारियों को लूटना।
"	नवम्बर	देवलबीटी सूराचन्द से पेशकश वसूलना।
१७०७ ई.	२१ फरवरी	औरंगजेब की मृत्यु।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७०७	९ मार्च	सूरचन्द देवलचौटी से जोधपुर के लिये प्रस्थान।
,,	१२ मार्च	जोधपुर पर अधिकार।
,,	२० मार्च	जोधपुर के क़िले में प्रवेश।
,,	मार्च	मेड़ता व पाली पर अधिकार।
,,	मार्च-अप्रैल	बीकानेर पर आक्रमण।
,,	अप्रैल	दुर्गादास का जोधपुर आना।
,,	,,	मुअज्ज़म का अजीतसिंह को सहायता के लिये बुलाना।
,,	मई	दलथम्भन के नाम पर विद्रोह व सोजत पर अधिकार।
,,	१२ मई	आज़म द्वारा मनसब व महाराजा की पदवी मिलना।
,,	११ जून	बहादुरशाह का सिंहासनारोहण।
,,	जुलाई	दुर्गादास को प्रधान का पद सौंपना।
,,	६ अगस्त	अजीतसिंह का बधाई-पत्र व भेंट बहादुरशाह के दरबार में पहुँचाना।
,,	८ अक्तूबर	मेहराब ख़ाँ को जोधपुर का फ़ौजदार नियुक्त करना।
,,	२ नवम्बर	बहादुरशाह का दहरआर बाग से अजमेर के लिये प्रस्थान।
,,	१५ नवम्बर	बादशाह का भुसावर पहुँचना।
,,	२६ नवम्बर	मेहराब ख़ाँ का भुसावर से जोधपुर के लिये विदा होना।

सन्	तिथि	विशेष विवरण
१७०७	नवम्बर-दिसम्बर	मेड़ता पर शाही अधिकार ।
१७०८ ई.	जनवरी	आम्बेर पर शाही अधिकार ।
,,	१० फरवरी	बहादुरशाह का मेड़ता पहुँचना और खानेजमां का अजीतसिंह को लाने के लिये जोधपुर जाना ।
,,	१२ फरवरी	अजीतसिंह का मेड़ता आना ।
,,	१३ फरवरी	बहादुरशाह से मिलना ।
	१७-१८-२२, २९ फरवरी व ६ मार्च	खिलअतें व इनाम मिलना ।
,,	१२ मार्च	बादशाह के साथ मेड़ता से अजमेर के लिये प्रस्थान ।
,,	१४ मार्च	अजमेर पहुँचना ।
,,	२३ मार्च	बादशाह के साथ दक्षिण के लिये प्रस्थान ।
,,	अप्रैल	जोधपुर में मेहराब खाँ तथा मेड़ता में मखसूस खाँ को फ़ौजदार नियुक्त करना ।
,,	११ अप्रैल	मनसब, सोजत, सिवाना व फलोदी के परगने तथा अलम व नक्कारा मिलना ।
,,	१४ अप्रैल	अजीतसिंह का मन्दसौर में दुर्गादास व अन्य सरदारों के साथ परामर्श करना ।
,,	१५ अप्रैल	अजीतसिंह का जयसिंह से मिलना ।
,,	२० अप्रैल	अजीतसिंह व जयसिंह का शाही शिविर से भाग जाना ।
,,	२ मई	अजीतसिंह का राणा अमरसिंह और जयसिंह के साथ उदयपुर पहुँचना ।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७०८	मई	अजीतसिंह, अमरसिंह व जयसिंह का संगठन स्थापित होना।
,,	जून	मेड़ता पर अधिकार करना।
,,	जून	जोधपुर, जयपुर व उदयपुर की सेनाओं का आम्बेर हिण्डौन व बयाना पर अधिकार।
,,	४ जुलाई	जोधपुर पर पुनराधिकार।
,,	२६ जुलाई	अजीतसिंह की पुत्री सूरजकुंवर की जयसिंह के साथ सगाई।
,,	अगस्त के अन्त में	अजीतसिंह का जयसिंह व दुर्गादास के साथ अजमेर की ओर प्रस्थान।
,,	१६ सितम्बर	मेड़ता पहुँचना।
,,	२६ सितम्बर	मनसब व एक लाख दाम मिलना।
,,	३० सितम्बर	सांभर के फ़ौजदार अलीमहमद को परास्त करना।
,,	२ अक्तूबर	राजा की पदवी व खिलअत आदि मिलना।
,,	३ अक्तूबर	सांभर का युद्ध व अधिकार।
,,	अक्तूबर	डीडवाना पर अधिकार।
,,		अजीतसिंह का जोधपुर जाना।
,,	२५ नवम्बर	नागोर की ओर प्रस्थान।
,,	—	नागोर में इन्द्रसिंह का समर्पण स्वीकार करना।
१७०९ ई.	फरवरी	अजीतसिंह का ससैन्य अजमेर की ओर प्रस्थान
,,	१६ फरवरी	अजमेर पर आक्रमण।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७०९	११ मार्च	देवलिया की राजकुमारी के साथ विवाह।
,,	१९ मार्च	जोधपुर पहुँचना।
,,	सम्भवत: अप्रैल	असद खाँ द्वारा सांभर व डीडवाना से अधिकार हटाने तथा काबुल में नियुक्ति स्वीकार करने की शर्त पर वतन देना स्वीकार करना।
,,	सितम्बर	गाज़ीउद्दीन फीरोज़ जंग का अजीतसिंह से मैत्री करने का प्रयत्न।
,	सम्भवत: नवम्बर	नागोर पर आक्रमण।
	,,	रामपुरा के कई गांव लूटना।
१७१० ई.	१६ अप्रैल	मारोठ पर अधिकार।
,,	२८ जुलाई	देवगाँव के अधिकारी नाहर खाँ से पेशकश वसूलना।
,,	अप्रैल	अजीतसिंह के वकील का दरबार में आना।
,,	९ व २३ अप्रैल	अजीतसिंह की अर्जदाश्त बादशाह के सम्मुख पहुँचाना।
,,	१४ मार्च	नाहर खाँ को अजीतसिंह व जयसिंह को लाने के लिये सांभर भेजना।
,,	१७ मई	महावत खाँ को अजीतसिंह व जयसिंह को दरबार में लाने के लिए भेजना।
,,	मई के तीसरे सप्ताह में	बहादुरशाह का अजीतसिंह व जयसिंह के पास दूत भेजकर वतन देने का फ़रमान भेजना।
,,	मई के अन्त में	सांभर से बहादुरशाह से भेंट करने के लिए प्रस्थान।
,,	११ जून	अजीसिंह का बादशाह से मिलना।
,,	१७ जून	मनसब और इनाम मिलना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१२	२४ मई	मनसब व महाराजा की पदवी मिलना।
,,	२८ मई	अजीतसिंह की बधाई की अर्जदाश्त व भेंट व गुजरात के लिए प्रार्थना-पत्र दरबार में पहुँचना।
,,	१४ नवम्बर	मनसब, गुजरात की सूबेदारी व अन्य पुरस्कार मिलना।
,,	नवम्बर के अन्त में	जोधपुर से गुजरात के लिये प्रस्थान।
,,	३ दिसम्बर	जहाँदारशाह का अजीतसिंह को सहायता के लिये बुलाना।
,,	दिसम्बर	अजीतसिंह का विजयसिंह के नेतृत्व में सेना भेजना।
१७१३ ई.	९ जनवरी	फ़र्रुख़सियर का सिंहासनारोहण।
,,	१८ जनवरी	अजीतसिंह का बधाई-पत्र दरबार में पहुँचना।
,,	२६ जनवरी, ५ फरवरी, ९फरवरी	अजीतसिंह द्वारा भेजे गये अर्जदाश्त, व भिन्न भेंट।
,,	२३ अप्रैल	दरबार में मनसब मिलना।
,,	१८ अप्रैल, ११ मई, १८ जुलाई १ अगस्त, ५ अगस्त	अजीतसिंह को विभिन्न पुरस्कार मिलना।
,,	मई	अजीतसिंह का पिसांगण पर अधिकार।
,,	अगस्त	बार-बार बुलाये जाने पर भी अजीतसिंह का शाही सेना में न जाना।
,,	अगस्त	नागौर के राव इन्द्रसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को मरवाना।
	—	तोड़ा में थाने बनाना।
	१५ अक्तूबर	मनसब व थट्टा की सूबेदारी मिलना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१३	२० अक्टूबर व १ नवम्बर	अजीतसिंह के लिये विभिन्न पुरस्कार भेजना।
,,	६ दिसम्बर	हुसैनअली खां को जोधपुर पर आक्रमण करने के लिये दरबार से विदा किया गया।
,,	मार्च-अप्रैल	हुसैनअली का अजमेर पहुँचना।
,,	—	हुसैनअली का मेड़ता पहुँचकर थाना स्थापित करना।
१७१४ ई.	२६ अप्रैल	महाराज कुमार अभयसिंह का हुसैनअली से मिलकर सन्धि करना।
,,	१४ मई	अजीतसिंह का अपनी सेना को थट्टा की ओर भेजना।
,,	२१ मई	हुसैनअली का वापस अजमेर पहुँचना।
,,	३ जून	अजीतसिंह का जोधपुर से थट्टा के लिये प्रस्थान।
,,	६ जुलाई	अभयसिंह का हुसैनअली के साथ दरबार में जाना।
,,	६ जुलाई व १ अगस्त	अभयसिंह को खिलअत मिलना।
,,	५ अगस्त	अजीतसिंह के लिए बरसाती खिलअत भेजा जाना।
,,	नवम्बर–दिसम्बर	अजीतसिंह को जोधपुर, मेड़ता व सोजत जागीर में मिलना।
१७१५	१६ मार्च, २० मार्च ११ अप्रैल	अजीतसिंह के लिये उपहार भेजा जाना।
,,	२० अप्रैल	मनसब व गुजरात की सूबेदारी मिलना।
,,	१६ अगस्त	अजीतसिंह की पुत्री इन्द्रकुंवर का फर्रुखसियर के साथ निकाह।

सन्	तिथि	विशेष घटना
१७१५	७ दिसम्बर	इन्द्रकुंवर व फर्रुखसियर का हिन्दू रीति से विवाह।
१७१६	—	मारोठ परबतसर, केकड़ी व सवाना का अधिकार मिलना।
,,	सम्भवत: आरम्भ में	अजीतसिंह का जोधपुर से गुजरात की ओर प्रस्थान।
,,	—	आबू पर्वत के निकट मानसिंह का समर्पण करना।
,,	—	अनहिलपाटन पर अधिकार।
,,	—	पालनपुर, वावी तोमीवाला, मानगढ़ के अधिका-रियों पर आधिपत्य स्थापित करना व धन वसूलना।
,,	२४ जनवरी व ६ फरवरी	अजीतसिंह के लिये दरबार से इनाम भेजा जाना।
,,	२२ फरवरी	अहमदाबाद के निकट शाहीबाग में पहुँचना।
,,	—	नागोर की फ़ौजदारी मिलना।
,,	२३ जून	जोधपुर की सेना का नागोर को घेरना।
,,	३० जून	नागोर पर अधिकार।
,,	—	इन्द्रसिंह के पुत्र मोहनसिंह का वध करवाना।
,,	५ नवम्बर	मनसब अहमदाबाद की सूबेदारी जोधपुर व नागोर की फ़ौजदारी मिलना।
१७१७	१३ जनवरी	फ़र्रुख़सियर का अजीतसिंह को दिल्ली बुलाना।
,,	आरम्भ में	नवानगर के जाम तमाईची से पेशकश वसूलना।
,,	मार्च	द्वारिका की ओर जगत शिरोमणी के दर्शन के के लिये जाना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१७	—	मार्ग में स्थान-स्थान पर पेशकश वसूलना।
,,	मई	अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटाया जाना।
,,	जुलाई	अजीतसिंह का जोधपुर पहुँचना।
,,	६ नवम्बर	जोधपुर से दिल्ली के लिये प्रस्थान।
१७१८	अगस्त के मध्य	अजीतसिंह का दिल्ली के निकट पहुँचना।
,,	२० अगस्त	अजीतसिंह से इतिकाद खाँ का मिलना और बादशाह के पास चलने का अनुरोध करना।
१७१८	२१ अगस्त	फर्रुखसियर से भेंट और मनसब, राजराजेश्वर की पदवी व उपहार मिलना।
,,	८ सितम्बर	अजीतसिंह का अब्दुल्ला खाँ के घर जाना।
,,	११ सितम्बर	अजीतसिंह का दरबार में जाना।
,,	—	अजीतसिंह को क़ैद करने का फर्रुखसियर का असफल प्रयत्न।
,,	१४ दिसम्बर	अजीतसिंह का खानेदौरां के घर जाना।
,,	१८ नवम्बर	अजीतसिंह का दरबार में जाना।
,,	८ दिसम्बर	अजीतसिंह के सैनिकों का बीका हजारी के सैनिकों से युद्ध।
,,	९ दिसम्बर	अजीतसिंह पुनः दरबार में गया।
,,	१३ दिसम्बर	फर्रुखसियर का अजीतसिंह के घर जाना।
,,	२३ दिसम्बर	पूर्व मनसब व राज्य मिलना।
,,	२८ दिसम्बर	गुजरात की सूबेदारी व उपहार मिलना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१९	१० फरवरी	अजीतसिंह का हुसैनअली खां से भेंट करना।
,,	१४ फरवरी	अजीतसिंह और अब्दुल्ला खां का महल व तोप-खाने पर अधिकार करना।
,,	—	बूंदी के राव बुधसिंह के शिविर पर आक्रमण।
,,	१७ फरवरी	सैयदों और अजीतसिंह का शाही अधिकारियों को हटाकर अपने अधिकारियों को नियुक्त करना।
,,	१८ फरवरी	रफीउद्दरजत का सिंहासनारोहण।
,,	—	अजीतसिंह के अनुरोध पर जजिया तथा तीर्थों पर से कर हटाया जाना।
,,	—	अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी मिलना।
,,	२६ अप्रैल	जोधपुर प्रस्थान करने के लिये विदा किया जाना।
,,	२७ मई	रफ़ीउद्दौला का सिंहासनारोहण।
,,	२८ मई व ११ जून	अजीतसिंह को उपहार मिलना।
,,	९ जुलाई	इन्द्रकुंवर का अपनी सम्पत्ति सहित पिता के पास लौटना।
,,	जुलाई	अजीतसिंह का बादशाह के साथ आगरे की ओर जाना।
,,	२५ जुलाई	अजीतसिंह का बादशाह की अनुमति लेकर मथुरा जाना।
,,	१६ अगस्त	अजीतसिंह का मथुरा से लौटकर शाही सेवा में उपस्थित होना।
,,	१८ सितम्बर	मुहम्मदशाह का सिंहासनारोहण।
,,	५ अक्तूबर	अहमदाबाद की सूबेदारी, अन्य उपहार देकर जोध-पुर जाने कि अनुमति मिलना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७१९	अक्तूबर	अजीतसिंह का जयसिंह से मिलना।
,,	२६ अक्तूबर	अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी मिलना।
,,	—	जयसिंह से पुनः भेंट।
,,	—	मनोहरपुर में गौड़ कन्या से विवाह।
१७२०	अप्रेल	भंडारी अनूपसिंह को अपना नायब नियुक्त करके अहमदाबाद भेजना।
,,	सम्भवतः अप्रेल	भंडारी विजयराज को अपना नायब नियुक्त करके अजमेर भेजना।
,,	१९ मई	पुत्री सूरज कुंवर का जयसिंह से विवाह करना।
१७२१	मई	अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी से हटाना।
,,	४ अगस्त	अजीतसिंह को अजमेर की सूबेदारी से हटाना।
,,	—	अजीतसिंह का ससैन्य अजमेर जाना।
,,	—	सांभर पर अधिकार।
,,	—	नारनौल, अलवर, तिजारा, शाहजहांपुर को लूटना।
१७२२	सम्भवतः जनवरी	अजीतसिंह का बादशाह से सन्धि करने का निश्चय।
,,	सम्भवतः फरवरी	अजीतसिंह को पुनः अजमेर का सूबा मिलना।
,,	२७ दिसम्बर	नाहर खाँ का वध करवाना।
१७२३	२३ मार्च	अजमेर की सूबेदारी से हटाया जाना।
,,	मई	अजीतसिंह का अजमेर से मेड़ता चले जाना।
,,	७ जून	शाही सेना का गढ़ पुतली घेरना।

सन्	तिथि	विशेष-विवरण
१७२३	—	अजीतसिंह का बादशाह से सन्धि करना।
"	नवम्बर	जोधपुर वापस पहुँचना।
१७२४	२३ जून	अजीतसिंह की मृत्यु।

१८. फ़ुतूहात-ए-आलमगीरी : ईश्वरदास नागर, मूल, श्री रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

१९. बहादुरशाहनामा : नियामत अली ख़ाँ, माइक्रोफ़िल्म, श्री रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

२०. बालमुकुन्दनामा : सं. शेख़ अब्दुर्रशीद मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ १९५७।

२१. मआसिर-उल-उमरा (२ भाग) : शाहनवाज़ ख़ाँ, अनु. वेणीप्रसाद व बेवरिज, एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल, कलकत्ता, क्रमशः १९११ व १९५२।

२२. मआसिर-उल-उमरा (भाग १ व २) : शाहनवाज़ ख़ाँ, अनु. ब्रजरत्न दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, क्रमशः १९३१-२ व १९३८-९।

२३. मआसीर-ए-आलमगीरी : साक़ी मुस्ताद ख़ाँ, अनु. सर जदुनाथ सरकार, रायल एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल, कलकत्ता, १९४७।

२४. मीरात-उल-वारिदात : मुहम्मद शफ़ी वारिद तेहरानी, मूल, श्री रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

२५. मीरात-ए-अहमदी (२ भाग) : अली मुहम्मद ख़ाँ, अनु. एम. एफ. लोखान्डवाला ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९६५।

२६. मीरात-ए-अहमदी (भाग १) : अली मुहम्मद ख़ाँ, मूल, इलाहाबाद विश्वविद्यालय लाइब्रेरी।

२७. मुनव्वर-उल-कलाम : शिवदास लखनवी, मूल, श्री रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

२८. मुन्तखब-उल-लुबाब : मुहम्मद हाशिम ख़फ़ी ख़ाँ, मूल. एशियाटिक सोसाइटी आव् बंगाल, कलकत्ता, १८७४।

२९. रोज़नामचा : मिर्ज़ा मुहम्मद, मूल, श्री रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ

३०. वाक़या सरकार अजमेर वा रणथम्भोर : मूल, श्री रघुवीर लाइब्रेरी सीतामऊ।

३१. सीयर-उल-मुताख़रीन : सैयद ग़ुलाम हुसैन ख़ाँ, अनु. नोटा मानस, आर. कैम्ब्रे एण्ड कम्पनी।

(ख) प्राथमिक राजस्थानी व हिन्दी ग्रन्थ

१. अजितविलास : प्रतिलिपि, रा. शो. सं. चौ० जोधपुर।

२. अजीतसिंघ जी री तवारीख़ : फ़ौजचन्द, प्रतिलिपि, रा. पु. बी.।

३. अजीतसिंघ री विखा रे दोहे : अजीतसिंह, प्रतिलिपि, सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर।

४. अजयविलास : कवि दुर्गादत्त प्रतिलिपि, पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर।

५. हकीकत बही नं० १ : जोधपुर पुरालेखागार, जोधपुर।

६. दुर्गेशविलास : कवि चन्द, प्रतिलिपि, रा. पु. वी.।

७. मारवाड़ री ख्यात (जसवंतसिंह) : प्रतिलिपि, रा. पु. वी.।

८. ख्यात-ग्रन्थ : प्रतिलिपि, रा. शो. सं. चौ० जोधपुर।

९. गुटका संवत् १७८० से (१७८८ तक) : प्रतिलिपि, रा. शो. सं. चौ० जोधपुर।

१०. गुणसार-ग्रन्थ : अजीतसिंह, प्रतिलिपि, पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर।

११. चतुरकुल-चरित्र : चतुरसिंह, राजपूताना सेन्ट्रल प्रेस, अजमेर, १९०७।

१२. छत्रपति शाहू को अजीतसिंह का एक पत्र : प्रकाशक—चन्द्रदत्त भट्ट, सभा भवन, चांदपोल जोधपुर।

१३. जयपुर रिकार्ड्स, हिन्दी, (खण्ड १, ३, ४, ५, ८ व ९) : प्रतिलिपि, श्री रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

१४. जसवंतसिंह री वार्ता व अजीतसिंह री वार्ता : प्रतिलिपि, रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर।

१५. जोधपुर राज्य की ख्यात (२ भाग) : प्रतिलिपि, श्री रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

१६. जोधपुर रै राठौड़ा री ख्यात : प्रतिलिपि, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर।

१७. जन्मपत्री (अजीतसिंह) : रा. शो. सं. चौ० जोधपुर से प्राप्त एक पत्र।

१८. दवावैत महाराजा अजीतसिंह जी री : द्वारकादास दधवाड़िया, प्रतिलिपि, रा. पु. वी.।

१९. दस्तूर री बही : प्रतिलिपि, रा. शो. सं. चौ० जोधपुर।

२०. पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ : प्रतिलिपि, श्री रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ।

२१. पुस्तक प्रकाश री जूनी बही में लिखियो तीन री बीगत : प्रतिलिपि, रा. पु. वी.।

२२. बांकीदास री ख्यात : बांकीदास, पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर १९५६।

२३. भाव-विरही : अजीतसिंह, प्रतिलिपि, पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर, (गुणसार ग्रन्थ में ही प्राप्त कुछ पद्य)।

२४. मुरारिदान री ख्यात : कविराजा मुरारिदान, प्रतिलिपि, रा. प्रा. वि प्र. जोधपुर।

२५. मूंदियाड़ री ख्यात : प्रतिलिपि, रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर।

२६. राजरूपक : वीरभाण रतनू, सं. रामकर्ण आसोपा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९४१।

२७. राजविलास : मानकवि, सं. मोतीलाल मेनारिया, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, १९५८।

२८. राठौड़ दानेश्वर ग्रन्थ मुक्तावली : प्रतिलिपि, रा. पु. बी.।

२९. राठौड़ा री ख्यात : जोधपुर के श्री बालमुकुन्द खीची से प्राप्य प्रति।

३०. वंश-भास्कर (भाग ३ व ४) : सूर्यमल्ल मिश्र

३१. वीर-विनोद (भाग २) : कविराजा श्यामलदास, राज्य यंत्रालय, उदयपुर, १८८६।

३२. ब्याव री वही नं० १ : प्रतिलिपि, रा. पु. बी.।

३३. सूरजप्रकाश : करणीदान, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६१।

(ग) फ़रमान, निशान, पत्र व वकील रिपोर्ट्स

(राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर से प्राप्त)

१. ख़तूत अहलकारान
२. ख़रीता उदयपुर
३. ख़रीता जयपुर रिकार्ड्स
४. फ़रमान व निशान
५. फ़ारसी पत्र
६ मुतफ़र्रिक अहलकारान
७ मुतफ़र्रिक अहलकारान, तिथिहीन
८. मुतफ़र्रिक महाराजगान
९. मुतफ़र्रिक महाराजगान, तिथिहीन
१०. राजस्थानी पत्र
११. वकील रिपोर्ट्स, फ़ारसी
१२. वकील रिपोर्ट्स, राजस्थानी

(घ) प्राथमिक उर्दू, अंग्रेजी एवं संस्कृत ग्रन्थ

१. अजितचरित्र : बालकृष्ण दीक्षित, प्रतिलिपि, पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर।

२. अजीतोदय : भट्ट जगजीवन, संस्कृत से राजस्थानी भाषा में अनूदित, प्रतिलिपि, रा. पु. बी।

भाग ५, खण्ड १)

१२. बुन्देलखण्ड केसरी महाराजा छत्रसाल बुन्देला : भगवानदास गुप्त, शिवलाल अग्रवाल, आगरा १९५८।

१३. भारत के प्राचीन राजवंश (भाग ३) : विश्वेश्वरनाथ रेउ, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९२५।

१४. भारतीय चित्रकला : वाचस्पति गैरोला, मित्र प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६३।

१५. मारवाड़ का इतिहास (२ भाग) : विश्वेश्वरनाथ रेउ, आर्कियालाजीकल डिपार्टमेंट जोधपुर, १९३८।

१६. मारवाड़ का मूल इतिहास : रामकर्ण आसोपा, स्व प्रकाशित, जोधपुर, १८७१

१७. मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास : रामकर्ण आसोपा, दधिमति नामक पत्रिका में प्रकाशित, जोधपुर, सम्भवतः १९३३।

१८. मारवाड़ राज्य का इतिहास : जगदीशसिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मन्दिर जोधपुर, १९२५।

१९. मिश्रबन्धु-विनोद (चार भाग) : मिश्रबन्धु, प्रथम व तृतीय ग्रन्थ प्रसारक, खंडवा, १९१३; द्वितीय व चतुर्थ—गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, क्रमशः १९२७, १९३४।

२०. रतलाम का प्रथम राज्य : रघुबीरसिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९५६।

२१. राजपूताने का इतिहास (भाग १) : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, स्वयं प्रकाशित, अजमेर, १९२६।

२२. राजपूताने का इतिहास (२ भाग) : जगदीशसिंह गहलोत, हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, क्रमशः १९३७ व १९६०।

२३. राजपूताने में हिन्दी पुस्तकों की खोज और उनकी सूची : मुंशी देवीप्रसाद, १९११।

२४. राजस्थान का पिंगल साहित्य : मोतीलाल मेनारिया, हितैषी पुस्तक भंडार, उदयपुर, १९५२।

२५. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (४ भाग) : शोध-संस्थान, उदयपुर, क्रमशः १९४२, १९४७, १९५२ व १९५४।

२६. राजस्थानी-चित्रकला : रामगोपाल विजयवर्गीय विजयवर्गीय कलामंदिर, जयपुर, १९५३।

२७. राजस्थानी भाषा और साहित्य : मोतीलाल मेनारिया, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९५१।

रिकल (जोधपुर व बीकानेर)

८. थर्टी डिसाइसिव बैटल्स आव् जयपुर : ठाकुर नरेन्द्रसिंह, १९३९।

९. पार्टीज एण्ड पालिटिक्स एट दि मुग़ल कोर्ट : सतीशचन्द्र, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, १९५९।

१०. प्राविन्शियल गवर्नमेंट आव् दि मुग़ल्स : परमात्मासरन, किताबिस्तान, इलाहाबाद, १९४१।

११. फ़र्स्ट निज़ाम : युसुफ़ हुसैन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, १९६३।

१२. मारवाड़ एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स : वी० एस० भार्गव, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, १९६६।

१३. मुग़ल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन : श्रीराम शर्मा, हिन्द किताब्स लिमिटेड, बम्बई, १९५१।

१४. मुग़ल नोबिल्टी अंडर औरंगज़ेब : अतहर अली, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, १९६६।

१५. मेवाड एण्ड दि मुग़ल एम्परर्स : गोपीनाथ शर्मा, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० लि०, आगरा, १९५४।

१६. राठौड़ दुर्गादास : विश्वेश्वर नाथ रेउ, आर्कियालाजीकल डिपार्टमेन्ट, जोधपुर, १९४८।

१७. रासमाला (भाग २) : फ़ोर्ब्स, आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १९२४।

१८. लेटर मुगल्स (२-भाग : विलियम इरविन, एम० सी० सरकार एण्ड सन्स, कलकत्ता।

१९. वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स : कर्नल आर्किबाल्ड एडम्स, १९००।

२०. सर्वे रिपोर्ट्स १९००–१९४० (२१ भाग) : प्रदेश सरकार के लिए, नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

२१. सैन्ट्रल स्ट्रक्चर आव् दि मुग़ल एम्पायर : इब्न हसन, आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९३६।

२२ स्टडीज इन मिडीवल इण्डियन हिस्ट्री : श्री राम शर्मा, स्वप्रकाशित, १९५६।

२३. हिस्ट्री आव् इण्डिया (भाग ७ व ८) : इलियट एण्ड डाउसन, ट्रूबनर एण्ड कं०, लन्दन, १८७७।

कुछ विशेष आधार ग्रन्थों पर टिप्पणियाँ

(क) राजस्थानी ग्रन्थ—

अजितचरित्र :—

संस्कृत भाषा में लिखे गये इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि पुस्तक-प्रकाश जोधपुर में प्राप्य है। इसकी रचना अजीतसिंह के समय में ही बालकृष्ण दीक्षित ने की थी। अजितचरित्र दस सर्गों की रचना है जिसमें से प्रथम छः सर्गों में अजीतसिंह के पूर्वजों का वर्णन है। पिछले चार सर्गों में अजीतसिंह के जीवन के प्रारम्भिक बत्तीस वर्ष की कुछ घटनाओं का वर्णन है। यह वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है।

२. अजितविलास :—

राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर में एक बृहद् ग्रन्थ है, जिसमें धर्म, भूगोल तथा इतिहास आदि विषयक विवरण है और जोधपुर के राठौड़ शासकों का राव सीहा से राजा मानसिंह तक का इतिहास वर्णित है। इसी के अन्तर्गत पृ० १९९ से २४७ तक "अजितविलास" नामक रचना है जिसमें अजीतसिंह के सम्पूर्ण जीवनकाल का विस्तृत-वर्णन है। इस रचना में एक घटना के उल्लेख के उपरान्त बहुधा उससे सम्बन्धित कवित्त अथवा, दोहा लिखा गया है। अजितविलास के लेखक अथवा रचना काल के विषय में निश्चित उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु अजितोदय, राजरूपक व सूरजप्रकाश आदि समसामयिक ग्रन्थों की भाँति इसमें भी बख़्तसिंह द्वारा अजीतसिंह की हत्या किये जाने का उल्लेख नहीं है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह रचना अजीतसिंह के जीवनकाल की रही होगी। सम्पूर्ण विवरण क्रमबद्ध है तथा स्थान स्थान पर तिथियों का भी उल्लेख किया गया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है। सन् १६९३ ई. में अजीतसिंह के अजमेर जाने तथा अजमेर के सूबेदार सफ़ी खाँ से बातचीत करने का सबसे अधिक विस्तृत वर्णन इसी ग्रन्थ में मिलता है।

३. अजीतसिंघ री तवारीख़ :—

यह तवारीख़ भण्डारी फ़ौजचन्द द्वारा लिखी गई है, रचना किस समय की है, यह कहना कठिन है यह केवल ४७ पृष्ठों की रचना है जिसमें अजीतसिंह के जन्म से लेकर अगले आठ-नौ वर्षों का इतिहास वर्णित है। इसमें से भी सन् १६७८-१६८१ ई. तक की घटनाएँ संक्षेप में लिखी गई हैं। पिछले छः वर्षों (सन १६८१-७ ई.) में होने वाले राठौड़ों के संघर्ष का लेखक ने विस्तृत वर्णन किया है। इस काल की घटनाओं के

लिये ही इस ग्रन्थ का उपयोग किया गया है। इसकी प्रतिलिपि राजकीय पुरालेखा-गार, बीकानेर में बस्ता नं० ४० में प्राप्य है।

५. अजितोदय :—

अजीतसिंह के आश्रित कवि भट्ट जगजीवन द्वारा संस्कृत भाषा में रचित इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर में प्राप्य है। राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर बस्ता नं. ४३ में इस ग्रन्थ का राजस्थानी भाषा में अनुवाद प्राप्य है। उसी का उपयोग इस शोध-ग्रन्थ में किया गया है। यह इकतीस सर्गों का बृहद् ग्रन्थ है, जिसमें अजीतसिंह के सम्पूर्ण जीवन का अत्यन्त विस्तृत विवरण मिलता है। यद्यपि राजकीय आश्रय में लिखे जाने के कारण ग्रन्थ में अनावश्यक प्रशंसा तथा कहीं-कहीं महत्त्वपूर्ण विवरण मिलता है, फिर भी समकालीन ग्रन्थ होने के नाते इसका विशेष महत्त्व है।

६. जूनी बही :—

यह बही पुस्तक-प्रकाश, जोधपुर की एक पुरानी बही से की गई नकल है। इसकी प्रतिलिपि राजकीय पुरालेखागार, बीकानेर के बस्ता नं. ४३ में प्राप्य है। इसमें अनेक छुट-पुट घटनाओं के उल्लेख के अतिरिक्त जोधपुर के राठौड़ शासकों का भी इतिहास वर्णित है जिसके अन्तर्गत महाराजा अजीतसिंह के जीवनकाल की लगभग सभी घटनाओं का क्रमबद्ध वर्णन है। इसका महत्त्व इस दृष्टि से है कि इसकी घटनाएँ जोधपुर राज्य की ख्यात से पूर्णतया मिलती हैं। अतएव ख्यात की भांति इसका भी ऐतिहासिक महत्त्व है। जैसलमेर के रावल अमरसिंह द्वारा अपनी लड़की के विवाह के लिये अजीतसिंह को भेजे गये टीके का विस्तृत विवरण इस बही में मिलता है।

७. जोधपुर राज्य की ख्यात :—

इस ख्यात की प्रतिलिपि श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ में प्राप्य है। इसके प्रथम भाग में राव सीहा से महाराजा जसवन्तसिंह तक, तथा दूसरे भाग में महाराजा अजीतसिंह से महाराजा मानसिंह तक का इतिहास वर्णित है। रचयिता के विषय में कुछ उपलब्ध नहीं हो सका। अजीतसिंह के जीवन की समस्त घटनाओं का विस्तृत एवं क्रमबद्ध विवरण इस ख्यात में मिलता है। सन् १७०७ ई. में बहादुरशाह द्वारा दिये गये परगनों के नाम, इन्द्रकुँवर का विवाह, अजीतसिंह की हत्या आदि कई ऐसे स्थल हैं, जिनका विस्तृत वर्णन केवल इसी ख्यात में उपलब्ध है। चूँकि इस ख्यात में वर्णित तथ्यों की पुष्टि फारसी ग्रन्थों से भी होती है, अतः इस शोध-प्रबन्ध में इसका उपयोग स्वतंत्रतापूर्वक किया गया है।

८. दस्तूर-बही

३६१ पृष्ठ की यह बही राजस्थान शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर में प्राप्य है। इसकी प्रतिलिपि सन् १८६२ ई. की है। इस बही में जोधपुर राज्य में मनाये

जाने वाले उत्सवों का विस्तृत वर्णन मिलता है। जोधपुर की सामाजिक एवं धार्मिक दशा के लिये यह विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त महाराजा गजसिंह से लेकर महाराजा तख्तसिंह तक के शासनकाल की विभिन्न घटनाओं का यत्र-तत्र उल्लेख भी इसमें मिलता है। इस शोध प्रबन्ध की दृष्टि से इस बही में इन्द्रसिंह के शासन का तथा अजीतसिंह, उसकी रानियों एवं सरदारों द्वारा निर्मित स्थानों का वर्णन प्राप्य है। जोधपुर पर मुग़ल शासन के दिनों में तोड़े जाने वाले मन्दिरों के नाम केवल इसी बही में मिलते हैं।

८. पंचोली हस्तलिखित ग्रन्थ :—

श्री रघुवीर लाईब्रेरी, सीतामऊ में इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि है, जिसमें कुल १७४ पत्र हैं। इस ग्रन्थ का न तो समुचित रूप से आरम्भ किया गया है और न अन्त ही है। ग्रन्थकार अथवा प्रतिलिपिकार के विषय में भी कुछ उल्लेख नहीं मिलता। इसमें सन् १६५७–७६ ई. तक की घटनाओं का वर्णन है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की दृष्टि से यह ग्रन्थ केवल द्वितीय अध्याय के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है। राठौड़ों की पेशावर से दिल्ली तक की यात्रा का दिन-प्रतिदिन का विवरण इसमें मिलता है। इसी यात्रा के बीच प्रसंगवश जोधपुर में होने वाले राठौड़ों के विरोध तथा घटनाओं का भी संकेत किया गया है। इस विवरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवतः लेखक स्वयं भी इस दल के साथ यात्रा कर रहा था।

९. राजरूपक :—

इस बृहद् ग्रन्थ की रचना महाराजा अभयसिंह के समय में कवि वीरभाण ने की थी। यह ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित कर दिया गया है। इस ग्रन्थ में अजीतसिंह के राजत्व काल का वर्णन बहुत विस्तार से किया गया है। चूँकि राजरूपक अभयसिंह के लिये लिखा गया था, अतः इसका वर्णन कहीं–कहीं पक्षपात पूर्ण हो गया है। युद्धों में राठौड़ सरदारों के वीरत्व का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है, तथा अजीतसिंह की हत्या जैसी घटनाओं का उल्लेख नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है। कवि ने घटनाओं की तिथि, मास व वर्ष का ठीक-ठीक उल्लेख किया है। बहुधा दिन का भी उल्लेख मिलता है। सम्पूर्ण विवरण क्रमबद्ध है। अतः शोध-प्रबन्ध में यह विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। सन् १६८१ ई. से सन् १६८७ ई. तक की अवधि में राठौड़ सरदारों के उपद्रवों का सबसे अधिक विस्तृत विवरण राजरूपक में मिलता है।

१०. राजविलास :—

इसकी रचना राणा राजसिंह के समय में मानकवि ने की थी। इस शोध-प्रबन्ध की दृष्टि से इस ग्रन्थ का महत्त्व इसलिये है कि इसमें राठौड़ों व

रिपोर्ट्स, अर्जदाश्त तथा पत्रों का वृहद् संग्रह है। इनमें महाराजा अजीतसिंह तथा अन्य राजाओं, विशेष रूप से जयसिंह के पारस्परिक पत्र-व्यवहार, उनके द्वारा बादशाह तथा शाही अधिकारियों द्वारा उन्हें लिखे गये पत्र, राजाओं के वकीलों द्वारा भेजी गई सूचनाएँ, अथवा राजाओं द्वारा वकीलों को भेजे गये आदेशों का विवरण मिलता है। इन विभिन्न पत्रों से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करने में बहुत सहायता मिलती है। अजीतसिंह तथा सवाई जयसिंह के पारस्परिक सम्बन्ध मुख्यतया इसी सामग्री के आधार पर निश्चित किये जा सके हैं।

३. फुतूहात-ए-आलमगीरी :—

इस ग्रन्थ की रचना ईश्वरदास नागर ने की थी। इसमें राठौड़ों एवं शाही सैनिकों के संघर्ष का विवरण मिलता है। परन्तु इस ग्रन्थ का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वह अंश है जिसमें लेखक ने दुर्गादास द्वारा औरंगजेब के पौत्र व पौत्री को लौटाये जाने का वर्णन किया है। ईश्वरदास नागर ने इस कार्य में स्वयं सक्रिय भाग लिया था और उसी के प्रयत्न से दुर्गादास ने अकबर के बच्चों को बादशाह के पास भेजना स्वीकार किया था। फलतः इस घटना के लिये यह ग्रन्थ विशेष रूप से प्रामाणिक है। श्री रघुबीर लाइब्रेरी, सीतामऊ में प्राप्य प्रति का उपयोग किया गया है।

४. मीरात-उल-वारिदात :—

मुहम्मद शफ़ी वारिद तेहरानी द्वारा लिखित यह एक वृहद् ग्रन्थ है, जिसमें दो भागों में बाबर से लेकर मुहम्मदशाह तक का इतिहास वर्णित है। यथाप्रसंग अजीतसिंह का उल्लेख इसमें मिलता है, परन्तु इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व सांभर-युद्ध के वर्णन के लिये है। अक्तूबर, सन् १७०८ ई. में हुये इस युद्ध का विस्तृत वर्णन केवल इसी ग्रन्थ में प्राप्य है।

५. मीरात-ए-अहमदी :—

अली मुहम्मद ख़ाँ द्वारा लिखित यह ग्रन्थ गुजरात सूबे के इतिहास के लिये विशेष उपयोगी है। अजीतसिंह की गुजरात में दोनों सूबेदारियों का विस्तृत वर्णन केवल इसी ग्रन्थ में मिलता है। फलतः इस काल के लिये शोध-प्रबन्ध में मीरात-ए-अहमदी का समुचित प्रयोग किया गया है।

१६. रोजनामचा :—

श्री रघुवीर लाइब्रेरी. सीतामऊ में प्राप्य इस ग्रन्थ का लेखक मिर्ज़ा मुहम्मद फ़र्रुखसियर के समय में उपस्थित था। उसने अपने ग्रन्थ में बहादुरशाह, जहाँदारशाह तथा फर्रुख़सियर के शासन-काल का वर्णन किया है। फ़र्रुख़सियर के समय की घटनाओं के लिये इस ग्रन्थ की विशेष उपयोगिता है। बादशाह तथा इन्द्रकुंवर के विवाह में लेखक ने स्वय भाग लिया था, अतः इस विवाह का आँखें

ऐसा हाल इसी रोजनामचा में मिलता है। अजीतसिंह के दिल्ली दरबार में उपस्थित होने, उसकी सैयदों से मित्रता बढ़ने तथा फर्रुखसियर को सिंहासन से हटाने का सर्वाधिक प्रामाणिक विवरण इस ग्रन्थ में प्राप्य है।

१०. वाक़या सरकार अजमेर वा रणथम्भोर

इस ग्रन्थ में अजमेर के तत्कालीन वाक़यानवीस द्वारा सन् १६७८ से १६८० ई. तक के बीच रणथम्भोर व अजमेर से भेजी गई सूचनाओं का संग्रह है। जसवन्तसिंह की मृत्यु के पश्चात् जोधपुर की स्थिति, रानी हाड़ी व राठोड़ सरदारों की गतिविधियों का सर्वाधिक विस्तृत वर्णन इसी ग्रन्थ में मिलता है। इसमे कई सूचनाएँ है जिनका अन्यत्र कहीं उल्लेख नही है। जैसे अजीतसिंह को दिल्ली से निकाल कर जोधपुर पर लाने के उपरान्त राठोड़ सरदारो ने उसका राज्याभिषेक किया था; इसका उल्लेख एकमात्र इसी ग्रन्थ में है। श्री रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ में प्राप्य प्रति का उपयोग किया गया है।
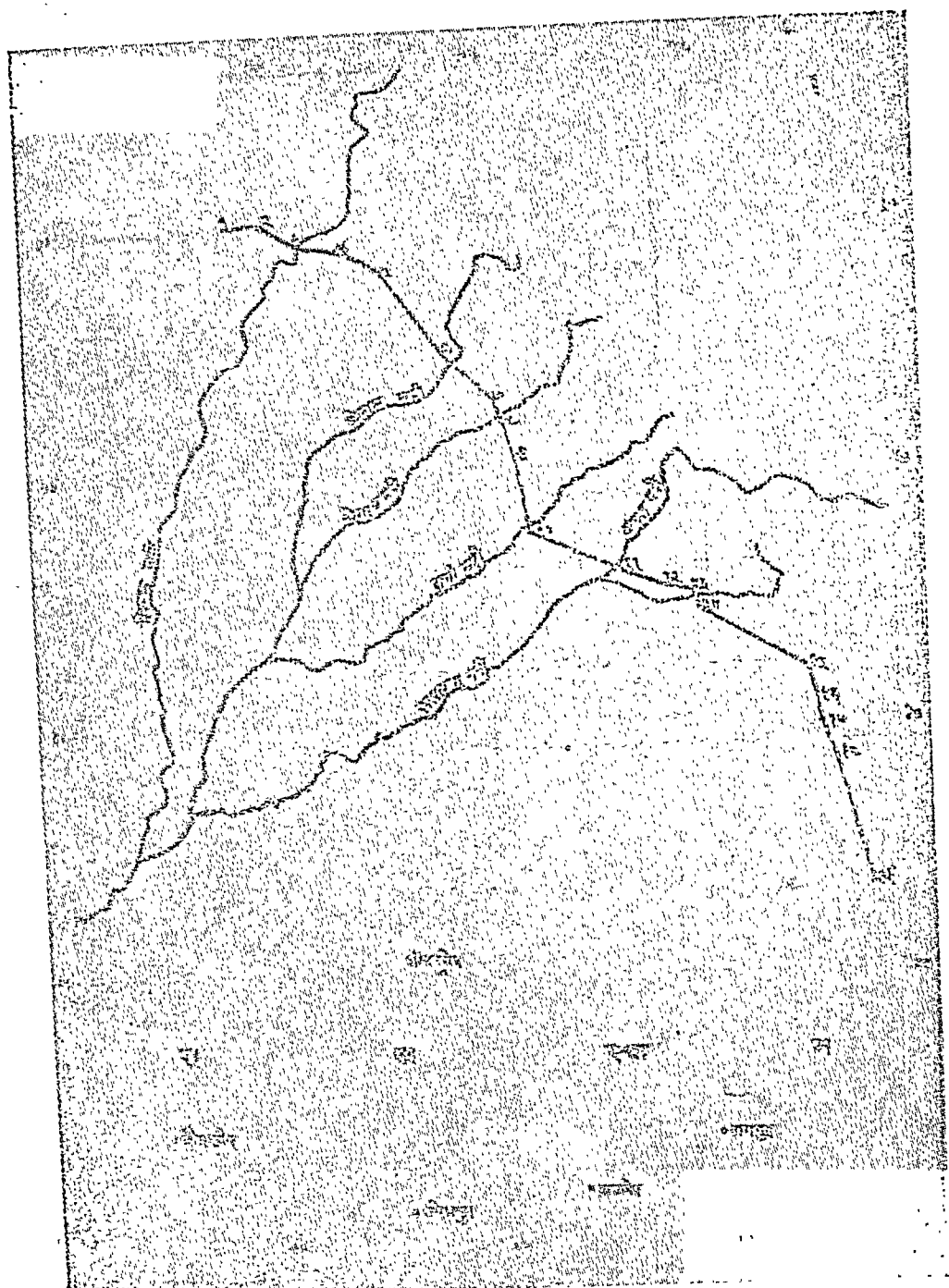
मानचित्र 'क'

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त राठौड़ सरदारों की पेशावर से दिल्ली तक की यात्रा के मुख्य पड़ाव।

मानचित्र 'क'

महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के उपरान्त राठौड़ सरदारों की पेशावर से दिल्ली तक की यात्रा के मुख्य पड़ाव

(१४ जनवरी, सन् १६७९ ई० से ५ अप्रेल, सन् १६७९ ई०)

संकेत :—

पेशावर	लाहौर
नौशहरा	सुलतानपुर
अटक	नूरमहल
हसनअब्दाल	फिलौर
रावलपिण्डी	लुधियाना
रोहितासगढ़	अम्बाला
गुजरात	शाहाबाद
	थानेश्वर
वज़ीराबाद	कर्वालि
एमिनाबाद	दिल्ली

मानचित्र 'ख'

महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु के समय उसके अधिकृत परगने

(सन् १६७८ ई०)

संकेत :—

जसवन्तसिंह के अधिकृत प्रदेश

विशेष-विवरण :—

जोधपुर-राज्य की सीमा के वाहर महाराजा जसवन्तसिंह के अधिकार में हिण्डौन, मलारना, मरूका, वदनोर, तानापुर, रोहतक, थिराद, राधणपुर, चकला-हिसार, पितलाद, धन्धूका, जाज़पुर नामक परगने भी थे।

मानचित्र 'ग'

शाहआलम बहादुरशाह के सिंहासनारोहण के समय अजीतसिंह के अधिकृत परगने

(सन् १७०७ ई०)

संकेत :—

अजीतसिंह के अधिकृत प्रदेश

विशेष-विवरण —

अजीतसिंह को जालोर व सांचोर के परगने मई, सन् १६९८ ई० में बादशाह औरंगजेब ने दिये थे। जोधपुर पर उसने १२ मार्च, सन् १७०७ ई० को जाफ़र कुली को हराकर अधिकार किया था। इसी महीने उसने अपनी सेनाएं भेजकर मेड़ता व पाली पर और मई के महीने सोजत में अपने कुछ विरोधी सरदारों को हराकर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

मानचित्र 'घ'

सन् १७१९-२० ई० में राजराजेश्वर अजीतसिंह के अधिकृत परगने

संकेत :—

अजीतसिंह के अधिकृत प्रदेश

फलोदी व पोकरण के बीच की यह सीमा अनुमानित है।

विशेष विवरण—

जोधपुर-राज्य की सीमा के बाहर अजीतसिंह के अधिकार में मारोठ, बधवाड़ा, भिणाय, विजयगढ़, अनहिलपाटन (गुजरात), केकड़ी तथा ववाल नामक परगने थे और रूपनगर, मालपुरा व टोड़ा में भी उसके थाने थे। इसके साथ ही इस समय वह गुजरात व अजमेर का सूबेदार था।

मानचित्र 'ङ'

महाराजा अजीतसिंह की मृत्यु के समय उसके अधिकृत परगने

संकेत :—

अजीतसिंह के अधिकृत परगने

मेड़ता परगने का यह स्थान (हरसोर) अजीतसिंह

के अधिकार में नहीं था।

फलोदी व पोकरण के बीच की सीमा अनुमानित है।

विशेष विवरण :—

जोधपुर राज्य की सीमा से बाहर अजीतसिंह के अधिकार में बघवाड़ा, विजयगढ़ नामक स्थान थे तथा रूपनगर व मालपुरा में भी उसके थाने थे।

शुद्धि-पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४	११	कसाल	करनाल
२५	नीचे से ५	यह	भट्ट
३३	अन्तिम	वाकया १६२	(अनावश्यक है)
३५	नीचे से १२	पृ०	पृ. २३-४
४१	नीचे से २१	देखिये	देखिये २५
४२	नीचे से १२	दि. ६७	द्वि. ६०
५८	अन्तिम	अनिश्चित	अनिर्णीत
७६	नीचे से ८	सिध	युद्ध
८०	नीचे से ११	दीनद	दीनदार
१०१	नीचे से १७	सोकलसर	मोकलसर
१०३	७	सामन्नसिंह	सामन्तसिंह
१०३	नीचे से २	*१८	२१८
१०४	नीचे से ५	मूंवियाड़	मूंदियाड़
१०४	नीचे से ४	७*	७२
१०६	नीचे से ४	हरिनास	हरीदास
१०७	२०	सियाना	सिवाना
१११	नीचे से १५	तमीरात	मीरात
१२७	नीचे से ११	भारती	फ़ारसी
१२९	४	७२	७१
१४०	पाद टिप्पणी का अन्तिम अनुच्छेद अनावश्यक है।		
१४३	१	ने जयसिंह को	को जयसिंह ने
१४५	२५	पूतों	दूतों
१४६	३	३	३६
१४६	पाद टिप्पणी ३८ का अनुच्छेद २ अनावश्यक है।		
१४९	अन्तिम	१३	रेउ
१५१	नीचे से १५	खरीफ	खफ़ी
१५२	नीचे से ८	खरीफ	खफ़ी

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६०	नीचे से ५	जनी	जुनी
१६०	नीचे से ४	३	रेउ
१६१	नीचे से १५	ने लिखा है कि अजीतसिंह को पूर्ण	इरविन (भाग १, ७१) व सतीशचन्द (३५) ने लिखा है कि अजीतसिंह को पूर्व
१६६	नीचे से ८	माधव	माघ
१७२	नीचे से ८	कुदसतुल्लमा	कुदरुतुल्ला
२७१	१६	१	१५
२७१	नीचे से १०	तेम	पेम
२७१	नीचे से २	विरवा	लिखा
२८३	नीचे से ४	१।	२
२८५	नीचे से १४	३५४–६	२३०–१
२८५	नीचे से १०	१७, ३३ व ३५४	१४, २५ व २३०
२८६	नीचे से ५	राजस्थान	राजस्थाना (अप्रकाशित लेख)
३२५	३	२ मार्च	मार्च
३३३	४ पर जोड़ें—१५ अगस्त कामबख्श पर विजय पाने के उपलक्ष में अजीतसिंह की भेंट बादशाह के पास पहुँचना		
३३५	६ फरवरी के बाद जोड़ें—२३ अप्रेल दरबार में मिलना		
३३५	—	२३ अप्रेल	२५ फरवरी
३३८	—	१४ दिसम्बर	१४ सितम्बर
३४५	४	रतनू	रतन्
३४५	१०	मिश्र	मिश्र प्रताप प्रेस जोधपुर १८६६
४४६	१	अन्जुमन,	अन्जुमन, औरंगजेब,
३६०	हैडिंग	राजराजेश्वर	राजराजेश्वर महाराजा